फर्श वर्ण रस गंध अरु, शब्दहि पुद्गल मान ।
वे इन्द्रिय पन विषय को, युगपत गहे न जान ५६

अर्थ—पांच इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस,वर्ण, और शब्द पुद्गल द्रव्य हैं। इन्द्रियें इन को भी एक समय में एक साथ ग्रहण नहीं कर सकती हैं ॥ ५६ ॥

आगे—इन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा निश्चय करते हैं।

परदव्वं ते अक्खा, णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिदा ।
उवलद्धं तेहि कहं, पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥ ५७ ॥

वे इन्द्रिय पर द्रव्य हैं, जीव स्वभाव न कोय ।
उन से जो जाना हुआ, सत्यारथ किमि होय ५७।

अर्थ—वेपांचों इन्द्रिय पर द्रव्य हैं क्योंकि वे आत्मा के स्वरूप नहीं हैं इसलिये उन इन्द्रियों के द्वारा जानी हुई वस्तु किसतरह आत्मा को प्रत्यक्ष हो सकता है ? अर्थात नहीं होसक्ता ॥ ५७ ॥

आगे—परोक्ष प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण दिखाते हैं।

जं परदो विण्णाणं, तं तु परोक्खंत्ति भणिदमत्थेसु ।
जदि केवलेण णादं, हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥ ५८ ॥

जो पदार्थ पर से लखे, उसे परोक्ष पिछान ।
जो केवल निज से लखे, उसे प्रगट ही मान५८॥

अर्थ—जो ज्ञान पर की सहायता से ज्ञेय पदार्थों का होता है उसको परोक्ष कहा गया है परन्तु जो मात्र केवल जीव के द्वारा ही ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है ॥ ५८ ॥

आगे– अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान निश्चय सुख है और अभेद है।

वस्तु स्वरूप पर ही विश्वास ... हैं। अतः उनको निश्चयनय का उपदेश करने के पूर्व क्रमशः उनकी प्रवृत्ति असत् व्यवहार से विमुख करने के लिये उन्हें सत् व्यवहार का उपदेश दिया है। जैसे जिन वचनों का सुनना, जिन गुरु की भक्ति करना, जिन दर्शन पूजन स्वाध्याय तथा अभक्ष और व्यसनादि का त्याग।

तदुपरांत अणुव्रत, महाव्रत समिति गुप्ति आदि का तथा पंच परमेष्टी का ध्यान रूप व्यवहार का उपदेश कहा है।

आकाश कुसुम की भांति व्यवहार नय पूर्णतया असत्य ही हो ऐसा नहीं है। वरन् उसमें उतना ही सत्यांश है जितना किसी के पास धनुष देख कर उसे धनुषधारी कहने में। व्यवहार नय **निश्चयनय** की प्राप्ति का साधन मात्र है। जिस प्रकार किसान बीज बोने के लिये पहले जमीन की सफाई करता है और फिर हल चलाकर उसे बीज बोने योग्य बनाता है। उसी प्रकार व्यवहार नय आत्मा रूपी जमीन की शुभोपयोग द्वारा शुद्धता कर उसे निश्चयनय के ग्रहण करने योग्य बनाता है। व्यवहार नय का पालन करते हुए निश्चय को सर्वथा भूलकर उसी में मग्न हो जाना ही **मिथ्यात्व** कहलाता है। इसीलिये कहा गया है कि संसारी जीवों को व्यवहार नय का साधन करते हुए साध्य रूप निश्चय नय को न भूलना चाहियेॐ। निश्चय नय को ही पूर्ण लक्ष्य मान कर उसी की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये। क्योंकि शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा की प्राप्ति एक मात्र निश्चय नय द्वारा ही हो सकती है।

ॐ जिस प्रकार मार्ग चलता हुआ पुरुष दो दृष्टियां रखता है एक तो अपने पैरों की ओर और दूसरी नियत स्थान की ओर यदि पैरों की ओर दृष्टि न रखे तो ठोकर अवश्य खायगा और यदि नियत स्थान की ओर दृष्टि न रखें तो अन्य स्थान पर अवश्य चला जायगा। इस न्याय से संसारी जीवों को निश्चय और व्यवहार दोनों पर ही दृष्टि रखनी चाहिये।

जादं सयं समत्तं, णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं।
रहिदं तु उग्गहादिहि, सुहत्ति एयंतियं भणिदं ॥५९॥

स्वयं हुआ सब द्रव्य, में निर्मल केवलज्ञान।
रहित अवग्रह आदि से, निश्चय सुःख निधान ५९

अर्थ—जो ज्ञान स्वयं पैदा हुआ है, वह पूर्ण है अनंत पदार्थों में फैला हुआ है, निर्मल है, तथा अवग्रह आदि के क्रम से रहित नियम से सुख रूप है ऐसा कहा गया है ॥ ५९ ॥

आगे—केवल ज्ञानी को खेद हो सकता होगा इस तर्क का निषेध करते हैं।

जं केवलत्ति णाणं, तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो, जम्हा घादी स्वयं जादा ॥६०॥

जो केवल पद ज्ञान का, वही सुःख परिणाम।
खेद बिना उसको कहा, रहे न घाती राम॥६०॥

अर्थ—जो केवल ज्ञान है वही सुख है तथा वही आत्मा का स्वाभाविक परिणाम है क्योंकि घातिया कर्म नष्ट होगए हैं इसलिये उस केवलज्ञान के अंदर खेद नहीं कहा गया है ॥ ६० ॥

आगे—फिर भी केवलज्ञान के स्वरूप को दिखाते हैं।

णाणं अत्थंतगदं, लोगालोगेसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं, इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं। ६१ ॥

द्रव्य पारगत ज्ञान है, दर्शन लोका लोक।
सब अनिष्ट का नाश है, खुला इष्ट का थोक ६१।

अर्थ—केवल ज्ञान होने पर ज्ञान सब पदार्थों के पार को प्राप्त होगया तथा केवल दर्शन अलोक और लोक में फैल गया। जो अनिष्ट

यहां निर्वाण लाड्डू चढाया जाता है। अभी लगभग दो वर्ष पूर्व यहां की खुदाई में एक विशाल मन्दिर निकला था। जो प्राचीन जैन कला का एक सुन्दर नमूना है और आजकल पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। यह मन्दिर एक दर्शनीय स्थान है।

भेलसा से लगभग ४० मील पर बड़ोह नामक ग्राम में भी एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर बहुत ही कला पूर्ण तथा सुन्दर है और दर्शनीय है।

उदयगिरी पर्वत यहाँ का विशेष सुन्दर और महत्व पूर्ण स्थान है जो यहाँ से केवल तीन मील दूर है। यहां सम्राट चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित बहुत ही सुन्दर २ गुफायें हैं और जिनमें अत्यन्त भव्य एवं कला पूर्ण मूर्तियां विराजमान हैं जो शिला लेखों से युक्त हैं। वैत्रवती और वेश्य-नदी से चारों ओर घिरा हुआ यह पर्वत प्राकृतिक सुन्दरता में अद्वि-तीय प्रतीत होता है। यहां से लगभग २८ मील दूर ग्यारसपुर ग्राम में कई जैन प्राचीन मूर्तियाँ तथा मन्दिर हैं जो पुरातत्व विभाग के आधीन हैं यहाँ पत्थर पर चित्र इतने बारीक और सुन्दर बनाये गये हैं कि देखते ही आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है। कला की दृष्टि से इन मन्दिरों की तुलना साँची और अजन्ता जैसे स्थानों से की जा सकती है मूर्तियां इतनी भव्य तथा कला पूर्ण हैं कि दर्शन करते ही हृदय गद् २ हो जाता है और बार बार दर्शन करने पर भी तृप्ति नहीं होती।

अतः आशा है कि पाठक गण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व पूर्ण एवं प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त इस नगरी के एक बार अवश्य ही दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक बनायेंगे।

भेलसा
ता०-१-८-५०

विनीतः—
नन्दकिशोर वकील
(श्री दिगम्बर जैन समाज)

दिव्य ध्वनि
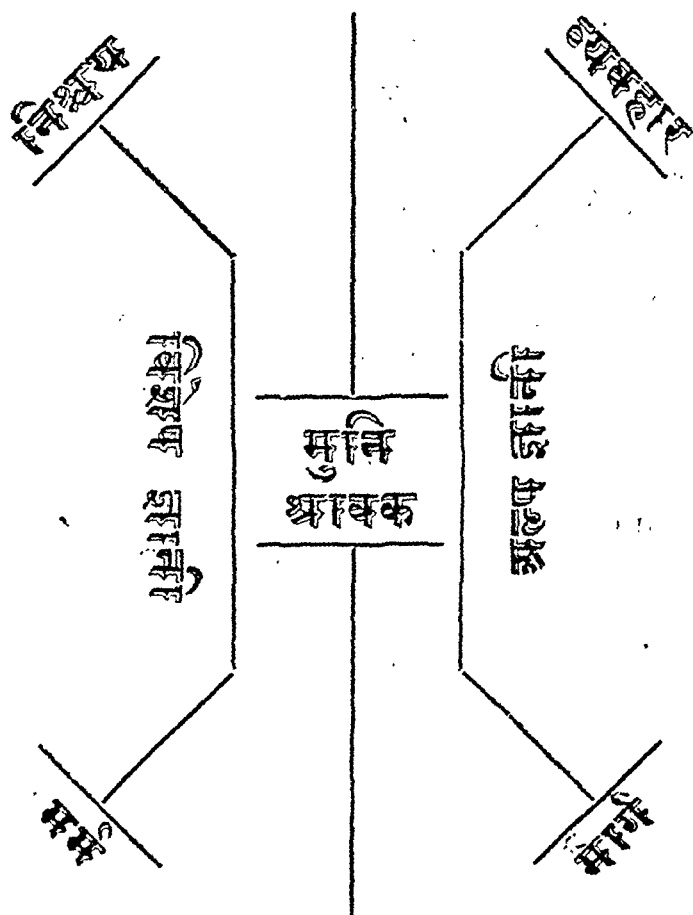
वीतराग की सेन को, रागी समझे कौन ।
समझे तो रागी नहीं, वीतराग है तौन ॥

क्षुल्लक अवस्था में रहने के पश्चात् सं० २००७ में भोपाल में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर तप कल्याणक के दिन विशाल जन समुदाय की हर्ष ध्वनि के बीच आपने मुनिव्रत धारण किया। सांसारिक सुखों के समस्त साधनों के होते हुए भी, पारिवारिक एवं आर्थिक दृष्टि से सपन्न होते हुए, उनको ठुकरा कर आपने वर्तमान काल में एक महान् आदर्श उपस्थित किया है।

अध्ययन की ओर आरभ से ही आपकी विशेष रुचि थी। विद्यालय छोड़ने के बाद भी आपने धार्मिक अध्ययन जारी रखा और समयसार, प्रवचनसार, जैसे महान् ग्रन्थों का अध्ययन किया। आध्यात्म वाणी जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना आपके इसी अध्ययन और मनन का परिणाम है। संयम के साथ आध्यात्म विषय का इतना ज्ञान आपकी एक महान् विशेषता है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषय का अपूर्व ज्ञान होने के साथ २ आपका स्वभाव भी अत्यन्त शान्त, सरल एवं गम्भीर है। भाषण शैली अत्यन्त मधुर एवं प्रभावशाली है। आपका व्यक्तित्व इतना महान् है कि दर्शन करते ही हृदय में अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है। इससे पूर्व आपने लगभग २००-२५० आध्यात्मिक एवं महत्व पूर्ण दोहों की रचना की है जिसमें अनेक जटिल विषयों का निर्णय किया है जो अभी तक अप्रकाशित है।

आप कभी भी अपने श्रोताओं को किसी व्रत को ग्रहण करने अथवा कुछ दान करने के लिये विवश नहीं करते। किन्तु आपका उपदेश इतना हृदयस्पर्शी होता है कि श्रोतागण स्वयमेव ही शक्ति अनुसार व्रत ग्रहण किये विना नहीं रहते। आप लौकिक, धार्मिक एवं सामाजिक झंझटों से सर्वथा विमुख रहते हैं आपका अधिकांश समय अध्ययन और मनन में ही व्यतीत होता है। समाज को आप जैसे मुनिराज पर महान गर्व है।

शिताबराय लखमीचंद जैन,
भेलसा.

स्वयं बोधित, परम अध्यात्म योगी

❀ श्री १०८ निर्ग्रन्थ मुनि वीर सागरजी महाराज ❀

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
९०	६	दव्वं	परदव्वं
९३	१७	अगामी	आगामी
९५	५	दव्वसु	दव्वेसु
९५	६	मज्झे	मज्झेजहा
९५	८	कद्दमज्झे	कद्दममज्झे
९६	६	अरण	अरणा
९६	८	केर	करे
९६	१०	कोनकरे	पलटे को
९९	८	दिट्ठो मुण	दिट्ठी मुणे
१०२	३	रेण	रेणु
१०२	८	पच्चगो	पच्चयगो
१०४	२	रेण	रेणु
१०६	७	अउक्खयेण जीवाणं	आउक्खयेण-जीवाणं
१०९	१	हर्वति	हवंति
११२	११	पुरणं	पुरणं
११३	४	सेण	रोण
११६	८	दिखवाते	दिखलाते
११८	१३	परिणामई	परिणमइ
१२८	१०	जा	जो
१३४	५	मत्थाणि	सत्थाणि
१४०	१६	असंजयं	असंजमं
१४१	१६	अत्थं	अप्पयं
१४४	८	आचाय	आचार्य
१४५	१	पज्जेहिं	पज्जयेहिं
१४५	१२	इव	वह
१४७	१४	दुखीनिरन्तर	तन्मयउसमें
१४९	५	निच्छयणवस्स	णिच्छयणयस्स
१५४	१९	त्रिणिग्गइहिउं	विणिग्गहिउं
१५५	१	मंति रसय	रसय मंति
१६१	८	धम्मं	कम्मं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६३	११	मग्गोऽत्ति	मग्गोअत्ति
६४	२१	भामां	भामं
६५	१४	सपत्त्थं	सपयत्थं

(प्रवचनसार) ३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६	८	ईहापूर्वक	ईर्षा पूर्वक
१८	७	महावेण	सहावेण
२०	२०	णत्थि	अत्थि
२३	१०	स्वयं	सयं
३२	१६	विज्ञयेसु	विसएसु
४३	२१	आस्ति	अत्थि
५६	१	जीविदोहिं	हिजीविदो
५७	१३	भवोय	भवीय
६६	६	आामा	आतमा
६६	१६	पप्प	पप्पा
७०	२०	मे	से
७७	१५	समुच्चित	समचित
८३	१	मर	मरो
८७	१७	अनोदर	ऊनोदर
६१	३	कर	करे
६१	३	यर्थाय	यथार्थ
१०३	१२	सयम	संयम

(नियमसार) ४

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२	१०	विकरीय	विवरीय
३	१६	विराग्ग	विरइ
६	६	वव्विवरीया	तव्विवरीया
११	१६	निश्च	निश्चय
१५	१८	मग	जरा
१५	२०	निम्मूढो	×
५१	१	घरिनिजमेसम	छेदसमर्थक
५३	१	दु	तस्स दु
५७	२०	अलोचना	आलोचना

ॐ अध्यातमवाणी का सार ॐ

(वीर वचन)

शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से संसार स्वयं [1]उपजता है और स्वयं विनसता है इस नय से मोक्ष व मोक्ष-मार्ग की उत्पत्ति अपने अपने स्वसंवेदन से ज्ञान से होती है। किन्तु व्यवहार नय की दृष्टि से मोक्ष व मोक्ष-मार्ग का उपदेश तीर्थंकर की दिव्यध्वनि (अविरल शब्द) द्वारा होता है जिसकी अक्षरात्मक द्वादशांग रचना श्री गणधरदेव करते हैं। ढाई द्वीप में भोगभूमियों को छोड़कर १७० कर्मभूमियों में मोक्ष व मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होती है। जिसमें से विदेह के १६० क्षेत्रों में तो कम से कम २० तीर्थंकर शाश्वत ही रहते हैं जिनके द्वारा मोक्षमार्ग का उपदेश होता है। शेष भरत और एरावत के १० क्षेत्रों में कालानुसार मोक्ष व मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति होती है। इस हुँडावसर्पिणी काल में मोक्षमार्ग का उपदेश **भगवान ऋषभदेव** से प्रारंभ होकर क्रमशः **भगवान महावीर** पर्यंत होता रहा, जिसकी अक्षरात्मक द्वादशांग रूप व्याख्या उनके गणधर करते रहे। तदुपरांत केवली, श्रुतकेवली और अङ्गधारियों द्वारा मोक्षमार्ग का उपदेश होता रहा। यहाँ तक तो यह उपदेश केवल मौखिक ही रहा। लिपिबद्ध पुस्तकाकार रचना बिल्कुल नही हुई। प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध **आगम** (व्यवहार) की रचना श्री **धरसेनाचार्यजी** द्वारा और 'आध्यात्म' (निश्चय) की रचना श्री **कुंदकुंदाचार्यजी** द्वारा हुई। आगम **आध्यात्म** के ग्रन्थों की संस्कृत व हिन्दी टीकायें व ग्रन्थ रचनायें आचार्यों व पण्डितों द्वारा हुई। उनका स्वाध्याय करने के पश्चात मेरे हृदय में

---

१ अल्प ज्ञानी पर पर्याय को देख कर कर्तापन का भ्रम करते हैं। जैसे वे त्रिशूल (आयुध) का कर्ता तो लुहार को मानते हैं। किन्तु शूल (कांटा) की उत्पत्ति स्वयमेव ही मानते है यद्यपि वह भी जल भूमि आदि साधनों द्वारा ही उत्पन्न होता है। यदि व्यवहार से दोनों जगह कर्ता कहा जाय तो कोई दोष नहीं है किन्तु निश्चय की दृष्टि से त्रिशूल और शूल दोनों ही अपने काल क्षेत्र के अनुसार स्वयं उत्पन्न होते हैं इस कारण कर्ता मानना मिथ्यात्व है। विशेष खुलासा आगे मर्मसार में लिखेंगे।

ज्ञायक भाव प्रमत्त नहि, अप्रमत्त भी नाहि।
इससे शुद्ध कहें उसे, सो वह दूजा नाहि ॥ ६ ॥

अर्थ—जो ज्ञायक भाव है वह प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है इस तरह उसे शुद्ध कहते हैं और जो ज्ञायक भाव कर जान लिया वह वही है अन्य कोई दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

आगे—ज्ञायक भाव दर्शन ज्ञान चारित्र भी नहीं है ऐसा कहते हैं।

ववहारेणु वदिस्सइ, णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ ७ ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र ये, कहे हेतु व्यवहार।
निश्चय से तीनों नहीं, ज्ञायक शुद्ध निहार ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्ञानी के चारित्र दर्शन ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार कर कहे जाते हैं, निश्चय कर ज्ञान भी नहीं है चारित्र भी नहीं है और दशन भी नहीं है। ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है इसलिये, शुद्ध कहा गया है ॥ ७ ॥

आगे—व्यवहार (भेद) कहने का आशय दिखाते हैं।

जह णवि सक्क मणज्जो, अणज्ज भासं विणाउ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा, पर मत्थु वए सण मसक्कं ॥ ८ ॥

ज्यों मलेच्छ भाषा विना, मलेच्छ समझे नाहि।
व्यवहारी व्यवहार विन, त्यों परमारथ नाहि ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे म्लेच्छ जनों को म्लेच्छ भाषा के विना कुछ भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने को कोई पुरुष समर्थ नहीं हो सकता उसी

अध्यात्म के मूल ग्रन्थों का दैनिक पाठ करने की इच्छा जागृत हुई। अधिक खोजने पर भी मुझे ऐसी संक्षिप्त हिन्दी टीका प्राप्त न हो सकी जिसके द्वारा मैं अपने दैनिक पाठ की इच्छा की पूर्ति कर सकता। अतः मैंने अपने पाठ की सुविधा की दृष्टि से मूल ग्रन्थों और उनकी टीकाओं का अध्ययन कर मूल प्राकृत गाथाओं का हिन्दी दोहों में अनुवाद किया[1]।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'अध्यात्मवाणी' में शुद्ध अध्यात्म विषय की चर्चा की गई है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है? निश्चय नय की दृष्टि से इसी प्रश्न की व्याख्या इस पुस्तक का विषय है। निश्चयनय के अनुसार आत्मा का शुद्ध स्वरूप बंधरहित, अन्य रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, संयोग रहित जानने देखने वाला[2] सिद्ध समान अरूपी है। और दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप शुद्ध आत्मा का ध्यान उसकी प्राप्ति का उपाय है। व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा का स्वरूप बंधसहित, अन्य सहित, चलाचलता सहित, विशेष सहित संयोग सहित अज्ञानी संसारी है[३]। निश्चयनय वस्तु के मूलस्वरूप की अर्थात भिन्न २ वस्तुओं की भिन्न २ ही विवेचना करता है दूसरे शब्दों में यह पुद्गल आदि समस्त पर द्रव्यों से रहित आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप का

---

१ जैसे श्रेयांस राजा को ऊपर हाथ करने में तो हर्ष हुआ कि आज मैं दातार हुआ किन्तु मेरे भगवान जैसे नीचे हाथ नहीं है यह विषाद हुआ तैस इस कार्य में हमारा सार्थक समय गया यह तो हर्ष हुआ और विषाद यह हुआ कि लोग धर्म शब्द को शब्द कोष में ही रखना नहीं चाहते फिर पढ़ेगा कौन।

२ सिद्ध निश्चय व्यवहार से शुद्ध है किन्तु संसारी व्यवहार से अशुद्ध है।

३ निश्चय और व्यवहार दोनों ही जब एक पुरुष द्वारा कहे गए हैं तब परस्पर विरोध कैसा? जैसे किसी पीलिया रोग वालेने किसी नेत्रवानसेपूछा कि अमुक मकान का रंग कैसा है तब उसने कहा मकान तो सफेद है किन्तु तुम्हें रोग के कारण पीला दिखाई देता है इसी प्रकार सर्वज्ञ देव का कथन निश्चय और व्यवहार रूप दो प्रकार समझना चाहिये।

ज्ञान कराता है। अतः निश्चय-नय ही पूर्ण सत्य है और ग्रहण करने योग्य है। व्यवहार नय वस्तु के मूल-स्वरूप की व्याख्या नहीं करता। वह अनेक वस्तुओं की संयोगावस्था का वर्णन करता है। दूसरे शब्दों में यह पुद्गल आदि परद्रव्यों से युक्त आत्मा के अशुद्ध स्वरूप का ज्ञान कराता है, अतः असत्य है और उत्तरोत्तर छोड़ने योग्य है।

जिनेद्रदेव का उपदेश —पात्र[1] भेद प्रभेद से अनेक प्रकार हुआ है। निश्चयनय का उपदेश केवल विशेष ज्ञानियों के लिये ही कहा गया है। समस्त पर द्रव्यों से भिन्न आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरुप का जो अनुभव[2] करते हैं ऐसे व्यवहारपूर्ण विशेष ज्ञानी जीवों को ही निश्चय नय का उपदेश सार्थक एवं ग्रहण करने योग्य कहा गया है। वहाँ व्यवहार का सर्वथा निषेध[3] किया है। किन्तु जिन्हें अभी तक शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा का ज्ञान[4] नहीं हुआ है, और जो पुद्गल आदि परद्रव्यों से युक्त अशुद्धआत्मा को आत्मा का स्वरूप मान रहे हैं ऐसे संसारी अल्पज्ञानी जीवों को व्यहारनय का उपदेश आगमानुसार सार्थक एवं ग्रहण करने योग्य कहा है।

संसारी अल्पज्ञानी जीव इन्द्रियों द्वारा दृष्टि गोचर होने वाले

---

१ हिंसक को दया का और दयावान को विवेक पूर्वक दया का और विवेक पूर्वक दयावान को निष्क्रियता (ध्यान) का उपदेश दिया है। प्रायः अन्य मतों का उपदेश दया तक ही सीमित है। किन्तु जैन धर्म का प्रारंभ केवल दया से न होकर विवेक पूर्वक दया से होता है।

२ जैसे स्वप्नावस्था से जाग्रत मनुष्य स्वप्न में देखे हुए अपने विभिन्न स्वरूपों को मिथ्या मानता है उसी प्रकार मोहनीय कर्म का उपशम होने पर इस जीव के अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप की अनुभूति होती है तब संपूर्ण सांसारिक गत अवस्थाओं को स्वप्नवत् मिथ्या मानता है।

३ समयसार गाथा २७२

४ नव तत्व, निमित्तउपादान, वेद्य वेदक, व्याप्यव्यापक, कर्ताकर्म, चेत्य चेतक को एक प्रदेशी न जाने। इसका विशेष आगे मर्मसार में लिखेंगे।

जिनमत में राज मार्ग के अनुसार आत्म-प्राप्ति का मार्ग इस प्रकार है। जो जीव मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य तथा व्यसन आदि का त्याग कर अणुव्रत धारण कर क्रमशः शुभोपयोग धारण करता हुआ व्यवहार पूर्ण पंच महाव्रत धारी मुनि होकर जब निश्चय नय अर्थात् शुद्धोपयोग को धारण करता है और सर्व इच्छाओं से मुक्त होता है उसी समय वह अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। संक्षेप में आत्म-प्राप्ति का मार्ग त्याग से प्रारंभ होकर त्याग में ही पूर्ण होता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि आत्म-प्राप्ति का यह मार्ग तो बहुत कठिन है। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो वास्तव में यह मार्ग कठिन नहीं है, अपितु बहुत सरल है क्योंकि इस मार्ग में हमें किसी प्रकार के वाह्य अथवा आँतरिक साधन जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके विपरीत कठिन तो नरक, स्वर्ग आदि संसार का मार्ग है जिसमें अंतरंग संक्लेश अथवा विशुद्ध भाव करना पड़ते हैं और बहिरंग इन्द्रियादिक अस्त्र शस्त्रादि अनेक हिंसा दया के साधन जुटाने में कठिन परिश्रम करना पड़ता है। अज्ञान के कारण यह जीव कठिन मार्ग को तो आसान और आसान मार्ग को कठिन मानकर संसार परिभ्रमण के चक्र में फसा हुआ है।

'अध्यात्म-वाणी' में आचार्य श्री ने शुद्ध आत्म स्वरूप का निश्चय नय की दृष्टि से प्रतिपादन किया है। मुनिव्रत धारण करते हुये भी जो मुनि अभी तक वास्तविक परमार्थ को भूल कर केवल व्यवहार को ही अपनाये हुए हैं एसे मुनियों को निश्चय नय के उपदेश द्वारा वास्तविक परमार्थ की ओर प्रवृत करना उन्हें शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा की प्रतीति कराना ही आचार्य श्री का मुख्य अभिप्राय था। अतः निर्विवाद रूप से यह पुस्तक केवल व्यवहार पूर्ण मुनियों के ही अध्ययन एवं मनन की वस्तु हैं। किन्तु जो संसारी जीव अभी व्यवहार में ही अपूर्ण है उन्हें इस पुस्तक का अध्ययन बहुत सावधानी के साथ करना चहिए अन्यथा इससे उनका इसी

प्रकार अहित होने की संभावना है जिस प्रकार प्रति नारायण का सुदर्शन चक्र, जो यदि शत्रु का नाश नहीं करता तो उलट कर चलाने वाले के ही जीवन का अन्त कर देता है । क्योंकि निश्चय नय द्वारा व्यवहार को सर्वथा असत्य और छोड़ने योग्य कहा है। इस प्रकार यदि संसारी अज्ञानी जीव व्यवहार को सर्वथा असत्य मान कर छोड़ दें तो, निश्चय नय अर्थात् शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बिना यह जीव स्वेच्छाचरण की ओर प्रवृत हो कर नरक निगोद आदि का बंध कर संसार में परिभ्रमण करता रहता है। इस लिये अनन्त सुख के इच्छुक भव्य जीवों को अणुव्रत, महाव्रत आदि धारण कर इस पुस्तक का अवश्य, ही अध्ययन और मनन कर ना चाहिये। जिस प्रकार **भक्तामरस्त्रोत्र** आदि का पाठ करने से जिनेन्द्र देव के प्रति श्रद्धा होती है और **तत्वार्थ सूत्र** आदि के अध्ययन से तत्वों का परिज्ञान होता है ठीक उसी प्रकार **'अध्यात्म-वाणी'** के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करने से तथा तदनुकूल आचरण करने से **शुद्धात्मा** का बोध और उसकी प्राप्ति होगी।

दोहा-अमित काल या जीव ने, घना किया पुरुषार्थ।
देखो एक विवेक विन, सधा नहीं परमार्थ॥

दया दान उपकार में, धर्म कहैं सब कोय।
जिनवर कहैं विवेक विन, धर्म कौन विधि होय॥

जितना आवे ज्ञान में, उतना बने न वैन।
समझे समझें उसी को, एक शब्द में ऐन॥

शांत मूर्ति श्री १०५ पद्म श्री क्षुल्लिका जी

"प्रकाशकीय वक्तव्य"
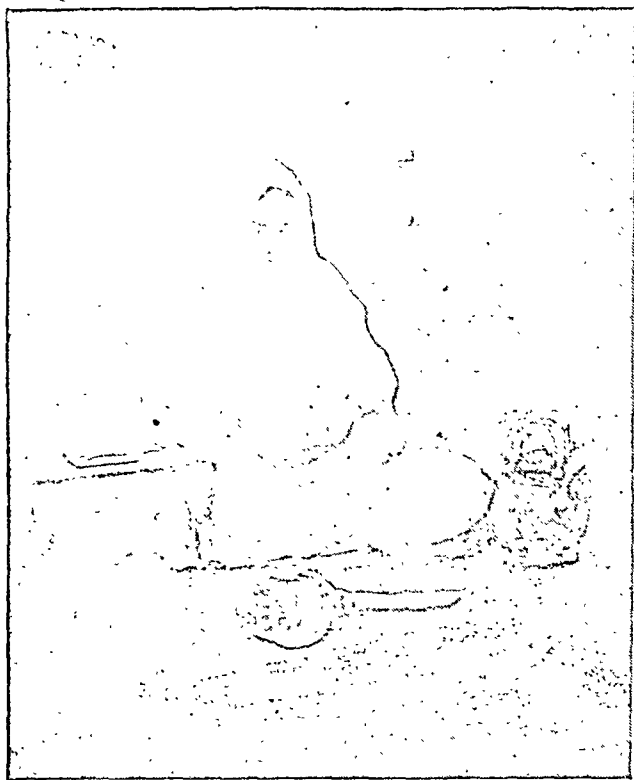
गत वर्ष भद्दलपुर (भेलसा) में समाज के भाग्योदय से पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक क्षीर सागर जी महाराज का आगमन हुआ। समाज के विशेष आग्रह पर आपने यहां चातुर्मास करना स्वीकार किया। आपकी अपूर्व विद्वत्ता, आध्यात्मिक तथा सरल और सौम्य प्रकृति का समाज पर विशेश प्रभाव पड़ा। प्रति दिन होने वाली शास्त्र सभा में स्थानीय समाज अत्यन्त सुरुचि एवं उत्साह पूर्वक सम्मिलित होती थी। महाराज की भाषण शैली तथा समझाने का ढंग वहुत सुन्दर था। अपने विषय एवं भावों को स्पष्ट करने के लिए आप कुछ स्वरचित तथा सारगर्भित दोहों का प्रयोग करते थे। जो विषय को स्पष्ट करने में सहायक होते थे। धर्म के गूढ़ तत्त्वों को सार सरल से सरल भाषा में इन दोहों में कहागया था। इन सारगर्भित दोहों से स्थानीय जनता बहुत अधिक प्रभावित हुई और समाज के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने मिल कर श्री महाराज से प्रार्थना की इन दोहों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया जाय ताकि इन अमूल्य दोहों का लाभ सीमित न रहे वरन् लगभग समस्त धर्म एवं आध्यात्म प्रेमी व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें समाज को जब यह ज्ञात हुआ कि इन दोहों में तो जैन सिद्धान्त के महान ग्रन्थ समय सारादि का अनुवाद किया गया है तो इसे अकथनीय प्रसन्नता हुई। स्थानीय समाज के विशेष आग्रह को देख कर और मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर पूज्य श्री महाराज ने अपने वहुमूल्य दोहों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की।

आज जबकि हमारा जीवन इतना अधिक संघर्ष मय हो गया है कि हमें इतना अवकाश नहीं कि हम अपने महान आचार्यों के अमूल्य ग्रन्थों का अध्ययन कर न केवल धर्म के मूल तत्त्वों जीवन और जगत के संबंधों का ज्ञान प्राप्त करे सकें, वरन् अपने नष्ट होते हुए इस अमूल्य जीवन का भी कल्याण कर सकें। संस्कृत और प्राकृत भाषा की शिक्षा

का अभाव भी हमें अपने महान आचार्यों की अमृतमयी वाणी से लाभ उठाने से वंचित कर देता है। इन्हीं मुख्य कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए श्री महाराज जी ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की स्वीकृति प्रदान की है। कहने की आवश्ययकता नहीं कि 'आध्यात्मवाणी' जेसी पुस्तक के प्रकाशन की आज कितनी अधिक आवश्यकता है। हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक धर्म एवं अध्यात्म प्रेमी व्यक्तियों की समय तथा भाषा आदि सभी कठिनाइयों को दूर करने के साथ ही उनकी 'जिज्ञासा' की पूर्ति में सहायक हो सकेगी और उन्हें धर्म तथा अध्यात्म संबंधी महान ग्रन्थों के चिन्तन एवं मनन करने के लिए विशेष रूप से प्रेरित करेगी।

'आध्यात्म वाणी में,' 'समयसार' 'पंचास्तिकाय,' 'प्रवचनसार' तथा नियमसार चारों बहुमूल्य ग्रन्थों की प्राकृत गाथाओं का अनुवाद हिन्दी भाषा के दोहों में सरल से सरल शब्दों में किया गया है। उसके बाद प्रत्येक गाथा का सारांश अत्यन्त सरल शब्दों द्वारा हिन्दी गद्य में किया गया है। इस प्रकार हमें आशा है कि साधारण शिक्षित व्यक्ति भी इस पुस्तक के भाव तथा अर्थ को पूर्णतया आसानी के साथ समझ सकेंगे।

अन्त में हम राजवैद्य अभयचन्द जी शास्त्री, भाई मिश्रीलाल जी मोतीलाल जी, पं० हीरालाल जी शास्त्री भोपाल, टीकमचन्दजी डागा, मेनेजर ललवानी प्रेस भोपाल, चौधरी चिरोंजीलाल जी, रतनचन्द जी बकसीलालजी नवलचन्दजी मेंगूसाह सिंघई हेमचन्दजी, भगवानदासजी खरऊआ के अत्यन्त आभागी हैं जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया है। वैद्य सि० हेमराज जी सोरया भोपाल (मंडावरे वाले) के हम अत्यधिक अभारी हैं जिन्होंने पुस्तक के समस्त चित्रों की रचना कर, उनमें महाराज के भावों को यथा तथ्य चित्रित कर पुस्तक की उपयोगिता में भी काफ़ी वृद्धि की। आप चित्र कला में बहुत प्रवीण हैं समाज को लाभ लेना चाहिए।

सेठ साहब का परिचय

दानवीर श्रीमन्त सेठ लखमीचन्दजी सा० का संक्षिप्त परिचय दे देना भी हम अपना कर्तव्य समझते हैं। आप भेलसा के एक प्रख्यात प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त, गम्भीर तथा मिलनसार है। चौदह वर्षीय कुंवर राजेन्द्रप्रसाद आपके एक होनहार सुपुत्र हैं। अतिशय दान शीलता से प्रभावित होकर जैन समाज ने आपको दानवीर जैसी महान् उपाधि से विभूषित किया है ग्वालियर स्टेट ने भी जिसका समर्थन किया है। समयानुसार आप समाज की महत्व पूर्ण संस्थाओं को दान देते रहते हैं। धवलादि ग्रन्थों का प्रकाशन भी आपकी आर्थिक सहायता से हो रहा है। स्टेशन के पास यात्रियों की सुविधा की दृष्टि से आपने एक विशाल जैन धर्मशाला तथा मन्दिर का निर्माण कराया है। स्थानीय जैन हाई स्कूल तथा प्राइमरी स्कूल का आपने निर्माण किया है आज भी इन संस्थाओं का संचालन आप की ओर से हो रहा है। इसके अतिरिक्त शक्कर बाई मां के नाम से एक फंड है जिससे छात्रवृत्ति दी जाती है। आपने एक हजार रुपये का दान उदयगिरी गुफाओं के जीर्णोधार के लिए किया है कहने की आवश्यकता नहीं आप जैनसमाज के इने गिने रत्नों में से एक हैं। समाज को भविष्य में आपसे और भी महान् आशायें हैं।

भेलसा का परिचय

भेलसा वर्तमान मध्य भारत संघ के अन्तर्गत है और जी० आई० पी० रेलवे लाईन के भोपाल तथा बीना स्टेशन के मध्य में स्थित है। यह अत्यन्त प्राचीन तथा जैन इतिहास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण नगरी है। इसका प्राचीन नाम भद्दलपुर है! यहाँ १००८ श्रीशीतलनाथ भगवान के गर्भ, जन्म, और तप तीन कल्याणक हुए थे। देवकी के त्रय युगल पुत्रों का यहां लालन पालन हुआ। कुआर सुदि अष्टमी को

श्री १०८ मुनि क्षीरसागरजी महाराज का जीवन-वृत

आपका जन्म श्रावण कृष्णा३ सं. १९६० में रिठौरा ग्राम जिला मुरैना (ग्वालियर) में हुआ था। आपका पूर्व नाम बोहरे मोतीलालजी था। पिता का नाम बोहरे पन्नालालजी तथा माता का नाम कौशल्या बाई था। आपकी शिक्षा मुरैना जैन विद्यालय में केवल चौथी कक्षा तक हुई और ११ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह साह नन्दरामजी, मोहना (ग्वालियर) की सुपुत्री मथुरादे के साथ हो गया। लगभग ४० वर्ष की अवस्था तक आप पूर्व धार्मिक मर्यादा सहित गृहस्थ-जीवन करते रहे। आपका मुख्य व्यवसाय कपड़े की दूकान तथा साहूकारी था। चिरंजीलालजी, सुनेरीलालजी, श्यामलालजी, शंकरलालजी तथा अमृतलालजी आपके पांच सुपुत्र हैं जो इस समय ग्वालियर में कपड़े का व्यवसाय कर रहे हैं व एक द्रोपती बहिन हैं। विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय ही आपके हृदय में विशेष धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय, दर्शन पूजन आदि आपके दैनिक नियम बन गये। बाल्य काल से ही आपकी प्रवृति सप्त व्यसनों से सर्वथा विमुख रही। प्रत्येक शास्त्र की समाप्ति पर आप कुछ न कुछ नियम अवश्य लेते थे। एक बार आपने एक महान् नियम लिया कि पुत्र-वधू के आते ही मैं गृह त्याग दूंगा। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी आपका हृदय सदैव संसार से विरक्त रहा। सांसारिक प्रलोभन आपकी पवित्र आत्मा को जरा भी विचलित न कर सके। दो पुत्रों की शादी होने के पश्चात उनकी छोटी अवस्था होने के कारण आप ३ वर्ष तक ७ वीं प्रतिमा धारण कर घर पर ही रहे। अन्त में संसार की अनित्यता को देख कर, अपने आत्म-कल्याण की दृष्टि से आपने अपनी धर्म पत्नी सहित क्षुल्लक अवस्था धारण की। इससे पूर्व आपने धर्म पत्नी सहित १ वर्ष तक प्रायः सभी तीर्थों की यात्रा की। आपकी धर्म पत्नी पद्म श्री क्षुल्लिका के नाम से प्रख्यात हैं। ३ वर्ष तक

विषय सूची ।

समयसार भाग १

जीवाजीवाधिकार १

कर्ताकर्माधिकार २

पुन्यपापाधिकार ३

आश्रावाधिकार ४

विशेषस्वरूपाधिकार २

नवपदार्थाधिकार ३

मोक्षमार्गाधिकार ४

नियमसारः ४

मासिक पाठ विधि

समयसार

दिवस	पृष्ठ	दोहा
(१)	१	१
(२)	१७	३६
(३)	३०	६६
(४)	४८	१०६
(५)	६२	१४५
(६)	७६	१८१
(७)	६३	२१५
(८)	१०५	२४७
(६)	११८	२७८
(१०)	१३०	३०८
(११)	१४४	३४५
(१२)	१५७	३८३

पंचास्तिकाय

दिवस	पृष्ठ	दोहा
(१३)	१	१
(१४)	१३	३४
(१५)	२६	७४
(१६)	४१	१०५
(१७)	५४	१४१

प्रवचनसार

दिवस	पृष्ठ	दोहा
(१८)	१	१
(१६)	१२	३१
(२०)	२४	६३
(२१)	३५	६३
(२२)	४८	१२७
(२३)	६२	१६३
(२४)	७६	२०१
(२५)	६१	२४०

नियमसार

दिवस	पृष्ठ	दोहा
(२६)	१	१
(२७)	१५	३८
(२८)	२८	७७
(२६)	४२	११३
(३०)	५६	१५१

शुद्धिपत्र

(समयसार) १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२	८	पुग्गल	पुद्गल
६	४	भूताथ	भूतार्थ
१०	२	य	ये
१०	१६	सत्ता वुत्तुं	सत्तावतुं
११	२।४।५।६	पुग्दल	पुद्गल
१४	१०	मुणादि	मुणइ
१५	७	उपाय	उपाय
२१	२	णिग्दो	णिग्गदो
३०	११	वतते	वर्तते
५१	१	अपरणामं	अपरिणामं
५१	२	परिणाम यदि भाविण काहो	परिणाम यहि कोहत्तं
५३	२	भावेण	×
५७	१६	ज्ञान	मान
५८	१०	चेप्टा	चेष्टा
६२	६	सुहसीलं	सुसीलं
६४	१२	होनो	दोनों
६५	५	दिट्ठा	ह्विदा
६६	११	पुरय	पुराण
६८	४	यव्वो	यव्व
७३	६	समाना	समाणा
७६	१३	कोध	क्रोध
८०	२	परिच्चियचइ	परिच्चियइ
८०	१७	सुद्ध	सुद्दं
८३	१५	ते	तं
८५	४	दियाते	दिखाते
८६	६	विभागो	विवागो
८६	७।१५	जागण	जाणग
८७	४	असहावं	यसहावं
८८	६	मोत्तण	मोत्तूण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६१	१३	हवइ	ण हवइ
१६१	१६	अराणं	अरणं
१६२	८ । १०	चिनवर	जिनवर
१६५	१२	आहरक	आहारक
१६६	२०	यति	यती
१६७	२२	यति	यती

(पंचास्तिकाय) २

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	१०	अतातीद	अंतातीत
१०	२०	कष्ठा	काष्टा
१०	२१	सवम्त	संवत्
१२	८	पप्पोहि	पप्पोदि
१४	४	मीलनता	मलिनता
१५	८	घिछान	पिछान
१६	१६	पज्ञ	पञ्च
१८	२१	एकात्व	एकत्व
२२	६	उवयेण	उदयेण
२२	६	णय	य
२८	२०	पयहि	पयडि
२८	२२	पदेश	देश
३३	१५	मच्छणं	मच्छाणं
३५	१४	पोग्गलाणं	पुग्गलाणं
३५	२२	लोगदोअगणाणा	लोगदोणगणा
३७	१०	गमट्ठिदि	गमणट्ठिदि
४०	५	कायत्थं	कायत्तं
४०	१३	गहदि	गाहदि
४२	७	भावणं	भावाणं
४४	१८	अपापगा	अपादगा
४७	६	काय	काया
४८	४	भिग्गाम	भिगम्म
४८	२२	दुख	दुक्ख
५६	१६	डहणो	डहणो
६०	२	पज्ज ओथ	पज्ज ओघ
६२	१५	माग	मार्ग

समव सरण सी मंधके, गये कुन्द मुनि धाय।
तिस पीछे रचना करी, अध्यातम की आय॥
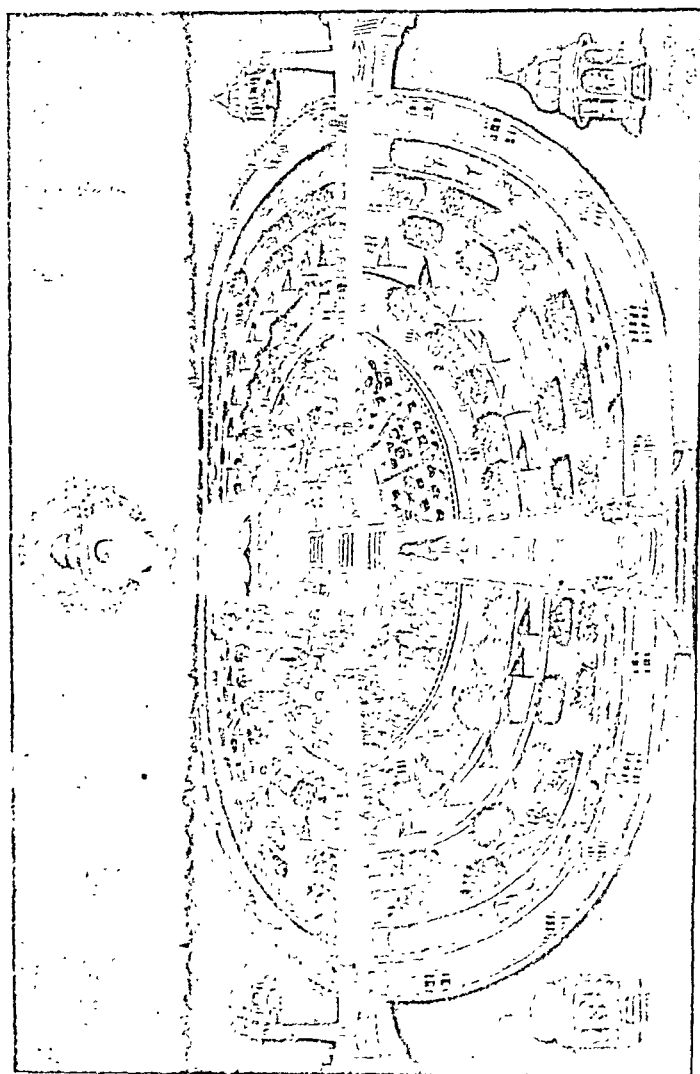
पलना के ललना सुनो, हँसके माँ के बैन।
शुद्ध निरंजन बुद्ध तुम, क्यों रोते बेचैन॥

समयसार

दर्शनाराधना

श्री परमात्मने नमः

卐 श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचितः 卐

अध्यात्मवाणी भाग ३

समयसारः

अथ मांगलिक पाठ में वन्दन विधि :—

मैं वन्दों वन्दों उन्हें, जो वन्दन के योग्य।
समयसार भाषा सुगम, दोहा करूँ मनोग्य ॥१॥
कुन्द कुन्द के पुण्य ग्रंथ, सींचे अमृत ऐन।
'नीर' नीर सींचन करें, लखि अंतर दिन रैन ॥२॥

अथ सूत्रावतारः भाषा दोहा सहित।

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुव मचल मणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड, मिणमो सुयकेवली भणियं ॥१॥

सिद्धनि वन्दों ध्रुव अचल, जो अनुपम गति प्राप्त।
समय[२] कथन अब मैं कहूँ, श्रुत केवलि विख्यात ॥३॥

---

१ [illegible]
२ [illegible]

सामान्य अर्थ—मैं ध्रुव, अचल और अनुपम इन तीन विशेषणों कर युक्त गति को प्राप्त हुए ऐसे सब सिद्धों को नमस्कार कर हे भव्यो श्रुत केवलियों कर कहे हुए इस समयसारनामा प्राभृत को कहूंगा ॥१॥

आगे समय में भेद दिखाते हैं :—

जीवो चरित्त दंसण, णाणिट्ठिउ तंहि स समयं जाण।
पुग्गल कम्मपदेस, ट्ठियं च तं जाण पर समयं ॥२॥

चारित दर्शन ज्ञान मय, जीव स्वसमयी जान।
पुग्गल कर्म[1] प्रदेश मय, परसमयी[2] सो मान ॥२॥

अर्थ—जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र, में स्थित होरहा है उसे निश्चय कर स्वसमय जान और जो जीव पुद्गल कर्म के प्रदेशों में तिष्ठा हुआ है उसे पर समय जान।

आगे एकत्व में वन्ध कथा का निषेध करते हैं।

एयत्तणिच्छयगओ, समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंध कहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होई ॥३॥

ऐक्य[3] प्राप्त जो समय वह, सब जग सुन्दर जान।
बंध कथा एकत्व में, विसंवादिनी मान ॥३॥

अर्थ—एकत्व निश्चय में प्राप्त जो समय है वह सब लोक में सुन्दर है, इसलिए एकत्व में बंध की कथा निन्दनीय है ॥३॥

---

१ कार्माण स्कन्ध　२ मिथ्याती　३ साम्य

आगे—बन्ध कथा को सुलभ और एकत्व को दुर्लभ दिखाते हैं।

सुद परिचिदाणु भूदा, सव्वस्स विकाम भोग बंधकहा।
एयत्तस्सुव लंभो, णवरिण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

सब सुनि जाने अनुभवे, कथा काम अरु भोग।
अन्य भिन्न एकत्व का, केवल सुलभ न योग ॥४॥

अर्थ—सब ही लोकों को काम भोग विषयक बंध की कथा तो सुनने में आगई है, परिचय में आगई है और अनुभव में आई हुई है इस लिए सुलभ है। लेकिन केवल भिन्न आत्मा का एक पना होना कभी न सुना न परिचय में आया और न अनुभव में आया इसलिए एक यही सुलभ नहीं है ॥४॥

आगे—एकत्व को एकत्व से कहता हूँ तुम एकत्व से सुनों।

तं एयत्त विहत्तं, दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं, चुक्किज्ज छलंण घेतव्वं ॥ ५ ॥

आत्म विभव एकत्वको, कहूं विभव निज धार।
यदि कहते चूकूँ कहीं, कर प्रमाण छल टार ॥५॥

अर्थ—उस एकत्व विभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निज विभव कर दिखलाता हूँ जो मैं दिखलाऊं तो उसे प्रमाण करना और जो कहीं पर चूक जाऊं तो छल नहीं ग्रहण करना ॥५॥

आगे—ज्ञायक भाव प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है ऐसा दिखाते हैं।

णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं, णाओ जो सो उसो चेव ॥ ६ ॥

तरह विना व्यवहार के परमार्थ का उपदेश करना बहुत कठिन है। अर्थात् कोई समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥

आगे—व्यवहार नय परमार्थ का कहने वाला है यह स्पष्ट करते हैं।

जो हि सुएणहि गच्छइ, अप्पाण मिणंतु केवलं सुद्धं।
तं सुय केवलि मिसिणो, भणंतिलोयप्पईव यरा ॥ ६ ॥

जो सुय णाणं सव्वं, जाणइ सुय केवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं, जह्मा सुय केवली तह्मा ॥ ६ ॥

श्रुत से सम्मुख जानता, केवल आतम शुद्ध।
सोश्रुत केवलि रूप है, कहते ऐसा बुद्ध ॥ १० ॥

जो जाने श्रुत सर्व को, सो श्रुत केवलि जान।
सर्व ज्ञान है आतमा, यों श्रुत केवलि मान ॥ १० ॥

अर्थ—जो जीव निश्चय कर श्रुत ज्ञान से इस अनुभव गोचर केवल एक शुद्ध आत्मा को सन्मुख हुआ जानता है उसे लोक के प्रगट जानने वाले ऋषीश्वर श्रुत केवली कहते हैं। जो जीव सर्व श्रुत ज्ञान को जानता है उसे जिन देव श्रुत केवली कहते हैं क्योंकि सब ज्ञान आत्मा ही है इस कारण आत्मा को ही जानने से श्रुत केवली कहा जा सकता है ॥ ९ ॥ १० ॥

आगे—ऐसा है तो व्यवहार को अंगीकार करना चाहिये ? उत्तर।

ववहारोऽभूयत्थो, भूयत्थो देसिदोदु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥ ११ ॥

नय व्यवहार असत्य है, सत्यारथ नय शुद्ध ।
जो आश्रित नय शुद्ध के, ते समदृष्टी बुद्ध ॥११॥

अर्थ—व्यवहार नय अभूतार्थ है और शुद्ध नय भूतार्थ है ऐसा ऋषीश्वरों ने दिखलाया है। ज जीव भूतार्थ को आश्रित करता है वह जीव निश्चय कर सम्यग्दृष्टि है ॥ ११ ॥

आगे—व्यवहार नय भी किसी को किसी काल में प्रयोजन वान है।

सुद्धो सुद्धा देसो, णायव्वो परम भाव दरिसीहिं ।
ववहार देसिदा पुण, जेदु अपरमेट्ठिदा भावे ॥ १२ ॥

परम भाव समझे पुरुष, शुद्ध कथन के योग्य ।
मिथ्यारत को देशना, है व्यवहार मनोग्य ॥१२॥

अर्थ—जो शुद्ध नय तक पहुँच श्रद्धा वान हुए तथा पूर्णज्ञान चरित्रवान हो गए उनको तो शुद्ध का उपदेश करने वाली शुद्ध नय जानने योग्य है और जो जीव श्रद्धा के तथा ज्ञान चरित्र के पूर्ण भाव को नहीं पहुँच सके साधक अवस्था ही में ठहरे हुए हैं वे व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं। ॥ १२ ॥

आगे—सम्यक्त्व तो शुद्ध नय के अनुभवन से ही होगा ऐसा दिखाते हैं।

भूयत्थेणाभिगदा, जीवाजीवाय पुण्य पावंच ।
आसव संवर णिज्जर, वंधो मोक्खोय सम्मत्तं ॥ १३ ॥

भूतारथजाने हुये, जिय जड़ पुराय अघत्व[1] ।
आश्रव संवर निर्जरा, वंध मोक्ष सम्यक्त्व ॥१३॥

---

[1] पाप

चित्र नं० २

समयसार गाथा १४ का भाव
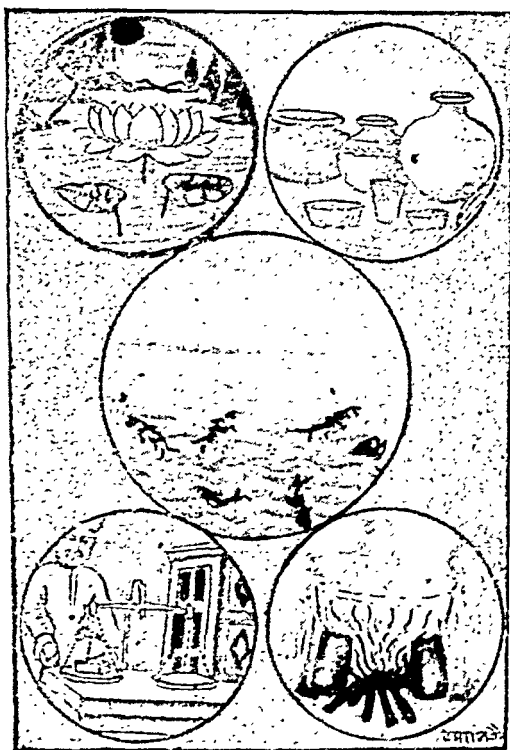
एक दृष्टि से बंधादि और एक दृष्टि से अबंधादि पंच भाव

अर्थ—भूतार्थ नय कर जाने हुए जीव, अजीव; और पुण्य पाप तथा आश्रव संवर, निर्जरा, बंध और मोक्षः ये नव तत्व सम्यक्त्व हैं। ॥ १३ ॥

आगे—शुद्ध नय के स्वरूप को कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्ध पुट्ठं अणण्णयंणियदं।
अविसेसमसंजुत्तं, तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४॥

जो नय देखे जीव को, अबद्ध निश्चल एक।
असंयुक्त अविशेष मय, शुद्ध दृष्टि सो नेक ॥१४॥

अर्थ—जो नय आत्मा को बंध रहित, पर के स्पर्श रहित, अन्यपने रहित, चलाचलता रहित, विशेषरहित अन्य के संयोग रहित, ऐसे पांच भाव रूप अवलोकन करता है उसे हे शिष्य! तू शुद्ध नय जान ॥ १४ ॥

आगे—उसी अर्थ को ज्ञान की प्रधानता से कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्ण मविसेसं।
अपदेस सुत्त मज्झं, पस्सदि जिण सासणं सव्वं॥ १५ ॥

जो अबद्ध आतम लखे, और एक अविशेष।
सो जिन शासन देखता, द्रव्य भाव श्रुत भेष ॥१५॥

अर्थ—जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पष्ट, अनन्य, अविशेष तथा उप लक्षण से नियत असंयुक्त इन स्वरूप देखता है वह सब जिन-शासन को देखता है वह जिन शासन वाह्य द्रव्य श्रुत और अभ्यंतर ज्ञान रूप भाव श्रुत वाला है ॥ १५ ॥

आगे—व्यवहार (दर्शन ज्ञान चारित्र) को साधक भाव दिखाते हैं।

दंसण णाण चरित्ता, णिसेवि दव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुणजाणतिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

दर्शन ज्ञान चारित्र में, रहो सन्त नितलीन।
ते अभेद कर आतम हैं; भेद दृष्टि कर तीन ॥१६॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र निरन्तर सेवने योग्य हैं और वे तीन हैं तो भी निश्चय नय से एक आत्मा ही जानो ॥ १६ ॥

आगे—उसी आशय को दृष्टांत कर दिखाते हैं।

जहणाम कोवि पुरिसो, रायाणं जाणि ऊणसद्दहदि।
तोतं अणुचरदि पुणो, अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥ १७॥

एवं हि जीव राया, णादव्वो तहय सद्दहे दव्वो।
अणु चरिदव्वोय पुणो, सोचेवदुमोक्ख कामेण ॥ १८॥

जैसे धन इच्छुक पुरुष, करे नृपति पहिचान।
ता पीछे श्रद्धा करे; सेवे उद्यम ठान ॥१७॥

मोक्ष चाहता त्यों पुरुष; करे जीव पहिचान।
ता पीछे श्रद्धा करे; तन्मय हो धर ध्यान ॥१८॥

अर्थ—जैसे कोई धन का चाहने वाला पुरुष राजा को जानकर श्रद्धान करता है उसके बाद उसकी अच्छी तरह सेवा करता है इसी तरह मोक्ष को चाहने वाला जीव रूप राजा को जाने और फिर उसी तरह श्रद्धान करे उसके बाद उसका अनुचरण करे अर्थात् अनुभव कर तन्मय होजाय ॥ १७ ॥ १८ ॥

आगे—ऐसा अज्ञानी कब तक रहता है।

कम्मेणोकम्मह्मिय, अहमिदि अहकंच कम्मणोकम्मं।
जाएसा खलु बुद्धी, अप्पडि बुद्धो हवदि ताव॥ १६ ॥

जब तक जाने जीव यह, भाव द्रव्य नो कर्म।
ये मेरे मैं इन्हों का, मूरख समझो पर्म॥ १६॥

अर्थ—जब तक इस आत्मा के ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म, भाव कर्म और शरीर आदि नो कर्म में, मैं कर्म नो कर्म हूँ, और ये कर्म नो कर्म मेरे हैं ऐसी निश्चय बुद्धि है, तब तक यह आत्मा अप्रति बुद्ध है॥ १९॥

आगे—वह अज्ञानी किस तरह पहिचाना जावे? उत्तर।

अहमेदं एद महं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अएणं जं पर दव्वं, सच्चित्ताचित्त मिस्संवा॥ २०॥

आसिमम पुव्व मेदं, अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि।
होहिदि पुणोवि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि॥२१॥

एयत्तु असं भूदं, आद वियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो, णकरेदि दु तं असंमूढो॥ २२॥

निज आतम से अन्य जे, जड़ चेतन अरु ग्राम[1]।
मैं ये ये मैं इन्हों का, ये मेरे सब राम॥ २०॥

1 मिश्र

ये मेरे गत थे सकल, इनका भी गत राम ।
य मेरे अब होंहिंगे, इनका आगे राम ॥ २१ ॥

यह असत्य विकलप करे, मूढ़ मती सो जान ।
सत्यारथ श्रद्धा करे, ज्ञानी ताको मान ॥ २२ ॥

अर्थ—जो पुरुष अपने से अन्य जो पर द्रव्य सचित्त स्त्री पुत्रादिक, अचित्त धन धान्यादिक, मिश्र ग्राम नगरादिक इनको ऐसा समझे कि यह मैं हूँ, यह द्रव्य मुझ स्वरूप है, मैं इनका हूँ ये मेरे हैं, ये मेरे पूर्व थे, इनका मैं भी पहले था, तथा ये मेरे आगामी होंगे, मैं भी इनका आगामी होऊँगा, ऐसा झूठा आत्म विकल्प करता है वह मूढ़ है, मोही है, अज्ञानी है, और जो पुरुष परमार्थ से वस्तु स्वरूप को जानता हुआ ऐसा झूठा विकल्प नहीं करता है, वह मूढ़ नहीं है ज्ञानी है ॥ २०—२२ ॥

आगे—उस अज्ञानी को समझने का उपाय कहते हैं ।

अण्णाण मोहि दमदी, मज्झ मिणं भणादि पुग्गलं दव्वं ।
बद्धम बद्धंच तहा, जीवो बहु भाव संजुत्तो ॥ २३ ॥

सव्वण्हुणाण दिट्ठो, जीवो उवओग लक्खणोणिच्चं ।
किहसो पुग्गल दव्वी, भूदोजं भणसि मज्झमिणं ॥२४॥

जदिसो पुग्गल दव्वी, भूदो जीवत्त मागदं इदरं ।
तो सत्ता वुत्तुंजे, मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥ २५ ॥

मोह अन्ध ऐसे कहे, विविधि भाव युत होय।
बद्धहि देह अबद्ध धन, मम पुग्दल सब कोय ॥२३॥

जिय लक्षण उपयोग मय, सदा केवली ज्ञान।
सो किम पुग्दल हो सके, जो कहता मम ठान ॥२४॥

जीव द्रव्य पुग्दल बने, या पुग्दल जिय दर्व।
तो तुम कहना सत्य है, मेरा पुग्दल सर्व ॥ २५ ॥

अर्थ—जिसकी मति अज्ञान से मोहित है ऐसा जीव इस तरह कहता है कि यह शरीरादि बद्ध द्रव्य, धन धान्यादि अबद्ध पर द्रव्य मेरा है। वह जीव मोह राग द्वेषादि बहुत भावों कर सहित है। आचार्य कहते हैं जो जीव सर्वज्ञ के ज्ञान कर देखा गया नित्य उपयोग लक्षण वाला है, वह पुद्गल द्रव्य रूप कैसे हो सकता है ? जो तू कहता है कि यह पुद्गल-द्रव्य मेरा है। जो जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्य रूप हो जाय तो पुद्गल द्रव्य भी जीव पने को प्राप्त हो जायगा। यदि ऐसा हो जाय तो तुम कह सकते हो कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। ॥ २३-२५ ॥

आगे—फिर अज्ञानी शंका करता है ।

जदि जीवोणसरीरं, तित्थय राय रिय संथुदी चेव।
सव्वावि हवदिमिच्छा, तेणदु आदा हवदि देहो ॥२६॥

देह जीव जो एक नहिं, जिनवर मुनि थुति झूंट।
यासे हम यह जानते; देह जीव इक कूट[1] ॥ २६ ॥

अर्थ— जो जीव है वह शरीर नहीं है तो तीर्थंकर और आचार्यों की स्तुति करना है, वह सब ही मिथ्या हो जाय; इसलिये, हम समझते हैं कि आत्मा यह देह ही है ॥ २६ ॥

आगे—उसी आशय को नयों द्वारा समझाते हैं।

ववहारणयो भासदि, जीवो, देहोय हवदि खलु इक्को।
णदुणिच्छयस्स जीवो, देहोय कदावि एकट्ठो ॥ २७ ॥

देह जीव व्यवहार नय, एक करे सर धान।
निश्चय नय के देह जिय, कभी न एक समान ॥२७॥

अर्थ—व्यवहार नय तो ऐसा कहता है कि जीव और देह एक ही है, और निश्चय नय का कहना है कि जीव और देह ये दोनों कभी एक पदार्थ नहीं हो सकते ॥ २७ ॥

आगे—उसी को और स्पष्ट करते हैं।

इणमण्णंजीवादो, देहं पुग्गल मयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदिहु संथुदोवं; दिदो मए केवली भयवं ॥ २८ ॥

जीव भिन्न जड़ देह की, थुति को साधू ठान।
मैं कीनी थुति वंदना, जिनवर के गुण मान ॥२८॥

---

१ मिला हुआ

अर्थ—जीव से भिन्न इस पुद्गल मई देह की स्तुति करके साधु असल में ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तुति और वंदना की ॥ २८ ॥

आगे—शरीर के गुणों का स्तवन से केवली का स्तवन नहीं होता ऐसा कहते हैं।

तंणिच्छयेण जुज्जदि, ण शरीर गुणाहि होंति केवलिणो।
केवलि गुणोथुणदिजो, सोतच्चं केवलिंथुणदि ॥ २९ ॥

जिनवर गुण नाहिं देह में, यासे यह थुति नाहिं।
जो जिनवर गुण चिन्तवे, सो थुति निश्चय माहि ॥२९॥

अर्थ—वह स्तवन निश्चय में ठीक नहीं है क्योंकि शरीर के गुण केवली के नहीं हैं। जो केवली के गुणों की स्तुति करता है वही परमार्थ से केवली की स्तुति करता है ॥ २९ ॥

आगे—उसी को दृष्टान्त से दिखाते हैं।

णयरम्मि वरिणदेजह, णवि रणणो वरणणा कदाहोदि।
देहगुणेथुव्वंते, ण केवलि गुणा थुदा होंति ॥ ३० ॥

जैसे पुर वर्णन विषें, नृप वर्णन नहिं होय।
देह गुणों की बंदना, जिनवरगुण किमि होय ॥३०॥

अर्थ—जैसे नगर का वर्णन करने पर राजा का वर्णन नहीं होता, उसी तरह देह के गुणों का स्तवन करने से, केवली के गुणों का स्तवन नहीं होता ॥ ३० ॥

आगे—जिस तरह स्तुति हो सकती है सो कहते हैं।

जो इंदिये जिणत्ता, णाण सहावाधिअं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते, भणंति जेणिच्छिदा साहू ॥३१॥

जो जित इन्द्रिय ज्ञानधिक[1] जाने आत्म स्वभाव।
निश्चयवादी तव उसे, कहें जितेन्द्रियराव ॥३१॥

अर्थ—जो इन्द्रियों को जीत कर ज्ञान स्वभाव कर अन्य द्रव्य से अधिक आत्मा को जानता है उसको नियम से, जो निश्चय में स्थित साधु लोक हैं, वे जितेन्द्रिय ऐसा कहते हैं ॥ ३१ ॥

आगे—स्तुति के द्वितीय भेद को कहते हैं।

जो मोहंतु जिणित्ता, णाण सहा वाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं, परमट्ठ वियाणया वेंति॥ ३२ ॥

मोह जीत कर ज्ञानधिक, जाने आत्म स्वभाव।
परमारथ ज्ञायक कहें, मोह जीत है राव ॥३२॥

अर्थ—जो मुनि मोह को जीत कर, अपने आत्मा को ज्ञान स्वभाव कर, अन्य द्रव्य भावों से अधिक जानता है, उस मुनि को परमार्थ के जानने वाले जित मोह ऐसा कहते हैं ॥ ३२ ॥

आगे—स्तुति के तृतीय भेद को कहते हैं।

जिद मोहस्सदु जइया, खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हुखीण मोहो, भण्णदि सोणिच्छय विदूहिं ॥३३॥

---

१ अधिक

मोह जीत मुनि जिस समय, चीण मोह में होय।
निश्चयज्ञाता तब कहें, चीण मोह है सोय ॥३३॥

अर्थ—जिसने मोह को जीत लिया है, ऐसे साधु के जिस समय मोह चीण हुआ सत्ता में से नाश होता है उस समय निश्चय के जानने वाले निश्चय कर उस साधु को चीण मोह ऐसे नाम से कहते हैं ॥ ३३ ॥

आगे—शिष्य का प्रश्न है कि अन्य द्रव्य के त्याग का उपाय क्या है।

सव्वे भावे जम्हा, पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तह्या पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणे दव्वं ॥ ३४ ॥

सर्व भाव इस कारणें, त्यागे पर हैं जान।
इस कारण यह ज्ञान ही. समझ त्याग के थान ॥३४॥

अर्थ—जिस कारण अपने सिवाय सभी पदार्थ पर हैं, ऐसा जानकर त्यागता है, इस कारण पर हैं यह जानना ही प्रत्याख्यान है यह नियम से जानना। अपने ज्ञान में त्याग रूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है। दूसरा कुछ नहीं है ॥ ३४ ॥

आगे—ज्ञाता के त्याग ज्ञान ही कहा है ऐसा दृष्टान्त कर कहते हैं।

जह णाम कोवि पुरिसो, परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे पर भावे, णाऊण विमुंचदे णाणी ॥ ३५ ॥

लोक विषें पर द्रव्य को, जान गहे नहि लोय।
पर वस्तु के भाव त्यों, ज्ञानी गहे न कोय ॥ ३५ ॥

अर्थ—जैसें लोक में कोई पुरुष पर वस्तु को ऐसा ज़ानता है कि यह पर वस्तु है, तब ऐसा जानकर पर वस्तु को त्यागता हैं उसी तरह ज्ञानी सब पर द्रव्यों के भावों को ये परभाव हैं ऐसा जानकर उनको छोड़ता है ॥ ३५ ॥

आगे—ऐसा भेद ज्ञान कैसे होय इसका उपाय बताओ ।

णत्थिममकोविमोहो, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्त, समयस्स वियाणया विंति ॥ ३६ ॥

मोहन मम संवन्ध है, मैं उपयोग स्वरूप ।
योंजाने ते मोह विन. कहते ज्ञानी भूप ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो ऐसा जानते हैं कि मोह मेरा कोई भी सम्बन्धी नहीं एक उपयोग है वही मैं हूँ ऐसे जानने को आप पर स्वरूप के जानने वाले मोह से निर्ममत्वपना समझते हैं कहते हैं ॥३६॥

आगे—ज्ञेय भाव से भेद ज्ञान कराने की रीति कहते हैं ।

णत्थिममधम्मआदी, बुज्झदि उवओग एवअहमिक्को।
तं धम्मणिम्म मत्तं, समयस्स वियाणया विंति ॥३७॥

धर्मादिक मेरे नहीं, मैं उपयोग स्वरूप ।
यों जाने ते मोह विन, कहते ज्ञानी भूप ॥ ३७ ॥

अर्थ—ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं लगते, मैं ऐसा जानता हूँ कि एक उपयोग है वही मैं हूँ ऐसा जानने को सिद्धान्त के जानने वाले धर्म द्रव्य से निर्ममत्वपना कहते हैं ॥ ३७ ॥

आगे—रतन त्रय में परिणित हुआ आत्मा ऐसा जानता है।

अहमिक्कोखलुसुद्धो, दंसणणाण मइयो सदा रूवी।
णविअत्थमज्झकिंचिवि, अण्णंपरमाणुमित्तंपि ॥ ३८ ॥

मैं इक दर्शन ज्ञान मय, शुद्ध सदां विन रूप।
अन्य द्रव्य मम रंच नहिं, यह श्रद्धान अनुप ॥ ३८ ॥

अर्थ—मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, निश्चय कर सदाकाल अरूपी हूँ अन्य पर द्रव्य परमाणू मात्र भी मेरा कुछ नहीं लगता है यह निश्चय है ॥ ३८ ॥

इति जीवाजीवाधिकारः पूर्व पीठिका

अथ जीवाजीवाधिकारः उत्तर पीठिका

अथ मासिक पाठ में द्वितीय दिवस

आगे—अज्ञानियों कर माने हुए जीव के स्वरूप को दिखाते हैं।

अप्पाण मयाणंता, मूढ़ा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झव साणं, कम्मंच तहा परू विंति ॥ ३९ ॥

अवरे अज्झव साणे, सुतिव्व मंदाणु भावगं जीवं।
मएणंति तहा अवरे, णो कम्मं चावि जीवोत्ति ॥४०॥

कम्मस्सुदयं जीवं, अवरे कम्माणु भायमिच्छंति।
तिव्वत्तण मंदत्तण, गुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥४१॥

जीवो कम्मं उहयं, दोण्णिव खलु केवि जीव मिच्छंति।
अवरे संजोगेणदु, कम्माणं जीव मिच्छंति ॥ ४२ ॥

एवं विहा बहुविहा, परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
तेण पर मट्ठ वाइहि, णिच्छय वाईहिं णिद्दिट्ठा ॥४३॥

नहिं जाने जे आतमा, पर कों कहें अजान।
अध्यवसान व कर्म मैं, रहे जीव पहिचान ॥ ३९॥

अध्यवसानों में बहुत, तीव्र मंद अनुभाग।
कई जीव नो कर्म में, इच्छें मूरख भाग ॥ ४० ॥

कर्म उदय में जीव है, और कर्म अनु भाग।
तीव्र मंद गुण भेद में; इच्छे मूरख भाग। ॥४१॥

जीव कर्म दोनो सहित, कहें बहुत से लोग।
कई कर्म संयोग में, कहें जीव का योग ॥ ४२ ॥

इस प्रकार दुर्बुद्धि जें, पर को कहते जीव।
ते निश्चय वादी नहीं, ज्ञानी कहें सदीव ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो आत्मा को नहीं जानते हुए, पर को आत्मा कहने वाले, कोई मोही अज्ञानी तो अध्यवसान को, और कोई कर्म को जीव कहते हैं। अन्य कोई अध्यवसानो, में तीव्र मन्द अनुभाग को, जीव मानते हैं। और अन्य कोई नो कर्म को जीव मानते हैं। अन्य कोई कर्म के उदय को जीव मानते हैं, कोई कर्म के अनुभाग को, जो अनुभाग तीव्र मन्द पने रूप गुणों कर भेद को प्राप्त होता है वह जीव है। ऐसा इष्ट करते हैं, कोई जीव और कर्म दोनों मिले हुए को जीव मानते हैं। और कोई कर्मों के संयोग कर ही जीव मानते हैं। इस प्रकार तथा अन्य भी वहुत प्रकार दुर्बुद्धि मिथ्या दृष्टि पर को आत्मा कहते हैं, वे परमार्थ कहने वाले नहीं हैं। ऐसा निश्चयवादियों ने कहा है॥ ३९–४३ ॥

आगे—ऐसा कहने वाला सत्यार्थवादी नहीं है सो क्यों नहीं है।

ए ए सव्वे भावा; पुग्गल दव्वपरिणामणिप्पएणा।
केवलि जिणेहिं भणिया, कह ते जीवोतिवच्चंति ॥४४॥

पूर्व भाव जे जे कहे, ते पुदूगल परिणाम।
प्रगट केवली जिन कहें, जीव न इनका नाम ॥४३॥

अर्थ—ये पूर्व कहे हुए अध्यवसान आदिक भाव हैं वे सभी पुद्गल द्रव्य के परिणाम से उत्पन्न हुये हैं ऐसा केवली सर्वज्ञ जिन

देव ने कहा है उनको जीव ऐसा कैसे कह सकते हैं? नहीं कह सकते ॥ ४४ ॥

आगे—प्रश्न—ये भाव चैतन्य के क्यों नहीं ?

अट्ठविहं पिय कम्मं, सव्वं पुग्गलमयं जिणाविंति ।
जस्सफलं तं वुच्चइ, दुक्खंति विपच्च माणस्स ॥ ४५ ॥

आठ तरह के कर्म सब, ते पुद्गल के रूप ।
उदय काल दुख रूप हैं, कहें केवली भूप ॥ ४५ ॥

अर्थ—आठ तरह के कर्म हैं वे सभी 'पुद्गल स्वरूप हैं, जिन कर्मों का फल उदय काल में प्रसिद्ध दुःख है ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है ॥ ४५ ॥

आगे—ये भाव पुद्गलीक हैं तो आगम ने जीव के क्यों कहे ?

ववहारस्स दरीसण, मुवए सो वरिणदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे, अज्झव साणादओ भावा ॥ ४६ ॥

अध्यवसानादिक कहे, सर्व भाव जे जीव ।
सो जिनवर उपदेश यह, व्यवहारी नय कीव ॥४६॥

अर्थ—ये सब भाव अध्यवसानादिक हैं वे जीव हैं ऐसा जिनवर देव ने व्यवहार नय से कहा है ॥

आगे—शिष्य पूछता है कि उसे दृष्टान्त से समझाओ ।

रायाहु णिग्गदोत्तिय, एसोनल समुदयस्सआदेसो।
ववहारेणदु उच्चदि, नत्थेकोणिग्दो राया ॥ ४७ ॥

एमेवय ववहारो, अज्झवसाणादि अण्ण भावाणं।
जीवोत्ति कदो सुत्ते, तत्थे कोणिच्छिदो जीवो ॥ ४८ ॥

सैना राजा मार्ग में, जैसे जाते देख।
लोक एक राजा कहैं, व्यवहारी वच पेख ॥४७॥

सूत्र कहे व्यवहार से, अध्यवसानक भाव।
निश्चय लख तो एक है, उन भावों में राव ॥४८॥

अर्थ—जैसे मार्ग में सेना और राजा को चलते देख लोग ऐसा कहते हैं कि राजा जा रहा है, सेना का नाम भी नहीं लेते, उसी तरह रागादि भावों को परमागम में ये जीव हैं ऐसा व्यवहार नय से कहा है। निश्चय से विचारा जावे तो उन भावों में केवल एक ज्ञाता आत्मा ही है ॥ ४७-४८ ॥

आगे-ये भाव जीव नहीं हैं तो फिर जीव का क्या स्वरूप है ?

अर सम रूपमगंधं, अव्वत्तं चेदणा गुणम सद्दम्।
जाण अलिंगग्गहणं, जीव मणिद्दिट्ठ संठाणं ॥ ४९ ॥

फर्श वर्ण रस गंध नहिं, चेतन गुण विन वैन।
किसी चिन्ह ग्राही नहीं, अकथ चिन्ह से ऐन॥४९॥

अर्थ—हे भव्य तू जीव को ऐसा जान कि वह फर्श नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, वर्ण नहीं, शब्द नहीं, इससे इन्द्रिय गोचर नहीं है और जिसके चेतना गुण है वह किसी चिन्ह कर ग्रहण नहीं होता क्यों कि जिसका आकार कुछ कहने में नहीं आता, ऐसा जीव है ॥ ४९ ॥

आगे—उन भावों को और विशेष दिखाते हैं।

जीवस्सणत्थि वरणो, णवि गंधो णविरसोणविय फासो।
णवि रूवं ण शरीरं, णवि संठाणं ण संहणणं ॥ ५० ॥

जीवस्सणत्थि रागो, णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं, णो कम्मं चावि सेणत्थि ॥ ५१ ॥

जीवस्सणत्थि वग्गो, ण वग्गणा णेवफड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा, णेवय अणु भाय ठाणाणि ॥ ५२ ॥

जीवस्सणत्थि केई, जोयट्ठाणा ण बंध ठाणा वा।
णे वय उदयट्ठाणा, ण मग्गणट्ठाणया केई ॥ ५३ ॥

णो ठिदि बंधट्ठाणा, जीवस्स संकिलेस ठाणावा।
णेव विसोहिट्ठाणा, णो संजम लद्धि ठाणावा ॥ ५४ ॥

णेवय जीवट्ठाणा, ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जे णदु एदे सव्वे, पुग्गल दव्वस्स परिणामा ॥ ५५ ॥

जीव वर्ण रस गंध नहिं, और फर्स मत जान।
संस्थान संहनन नहीं रूप शरीर न मान॥५०॥

राग द्वेष नहिं जीव के, विद्यमान नहि मोह।
और कर्म नो कर्म नहि, आश्रव कहो न कोह॥५१॥

वर्ग वर्गणा जीव नहि, स्पर्धक नहि दाग।
अध्यातम नहि थान है, नहीं थान अनुभाग॥५२॥

योग थान नहि जीव के, बंध न कोई थान।
और उदय नहि थान है, मारगणा नहीं थान॥५३॥

स्थिति बंध न जीव के, नाहि संक्लेशक थान।
और न संयम लब्धि है, नहीं विशुद्धी थान॥५४॥

जीव थान नहि जीव के, गुणस्थान नहि कोय।
ये पुद्गल परिणाम हैं, जीव न जानो कोय॥५५॥

अर्थ—जीव में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श नहीं और रूप शरीर संस्थान संहनन भी नहीं जीव में राग, द्वेष, मोह विद्यमान नहीं हैं और आश्रव कर्म नो कर्म नहीं है जीव में वर्ग वर्गणा स्पर्धक नहीं है और आध्यात्म स्थान व अनुभाग स्थान भी नहीं है जीव के योग थान, बंध स्थान, उदय स्थान, मार्गणा स्थान नहीं

हैं जीव के स्थिति बन्ध स्थान, संक्लेश स्थान व विशुद्धि स्थान नहीं है अथवा संयम लब्धि स्थान नहीं है, जीव स्थान, गुण स्थान नहीं हैं क्यों कि ये सब पुद्गल के परिणाम हैं जीव में ये नहीं हैं और जीव इनमें नहीं है ॥ ५०-५५ ॥

आगे—यह भाव जीव के नहीं हैं तो आगम में जीव के क्यों कहे ?

ववहारेणदु एदे, जीवस्स हवन्ति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा, ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥

वर्णादिक जे भाव हैं, गुणस्थान पर्यन्त।
जीव कहे व्यवहार से, निश्चय कहें न सन्त॥५६॥

अर्थ—यह वर्णादि गुणस्थान पर्यन्त भाव कहे गए हैं वेसब व्यवहार नयसे तो जीव के ही होते हैं इस लिए सूत्र में कहे गए हैं परन्तु निश्चय से इनमें कोई भी जीव के नहीं हैं ॥ ५६ ॥

आगे— फिर पूछता है कि निश्चय से जीव के क्यों नहीं हैं ?

ए एहि य संबंधो, जहेव खीरोदयं मुणे दव्वो।
ण य हुंति तस्सताणि दु, उवओग गुणाधिगोजम्हा॥५७॥

इनमें जो सम्बन्ध है, नीर क्षीर वत जान।
वे उसके नाहि उन्हों में, गुण उपयोग प्रमान॥५७॥

अर्थ—इन वर्णादि भावों के साथ जीव का सम्बन्ध जल और दूध के एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध सरीसा जानना और ये उस जीव के

नहीं हैं क्यों कि जीव इन से उपयोग गुण कर अधिक है। इस से जुदा जाना जाता है ॥ ५७ ॥

आगे—इस तरह तो दोनों नयों का विरोध हुवा इसका उत्तर।

पंथे मुस्संतं पस्सि, दूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो, ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥ ५८ ॥

तह जीवे कम्माणं, णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो, जिणेहि ववहार दो उत्तो ॥५९॥

गंध रसफासरूवा, देहो संठाण माइया जेय ।
सव्वे ववहारस्स य, णिच्छय दण्हू ववदि संति ॥६०॥

मार्ग न लूटे काहू को, लूटत दीसें लोय।
तो भी जिमि व्यवहार से, मार्ग लुटेरो वोय॥५८॥

जीव कर्म नो कर्म में, और वर्ण में देख।
अमुक वर्ण व्यवहार से, वरणां जिनवर पेख॥५९॥

फर्श गंध रस रूप अरु, देहादिक संस्थान।
सो सब हैं व्यवहार से, कहते निश्चय वान॥६०॥

अर्थ– जैसे मार्ग में चलते हुवे को लुटा हुवा देख कर व्यवहारी जन कहते हैं कि यह मार्ग लूटता है, वहां परमार्थ से विचारा जाय

तो कोई मार्ग नहीं लूटता, आते जाते हुवे लोक ही लूटते हैं। उसी तरह जीव में कर्मों का और नो कर्मों का वर्ण देख कर जीव का यह वर्ण है ऐसा जिन देव ने व्यवहार से कहा है उसी तरह गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदिक जो कहे हैं वे सब व्यवहार से हैं ऐसा, निश्चय के देखने वाले कहते हैं ॥ ५८—६० ॥

आगे—पूछते हैं वर्णादिक के साथ जीव का तादात्म्य सम्बन्ध क्यों नहीं है।

तत्थ भवे जीवाणं. संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसार पमुक्काणं, णत्थिहु वण्णादओ केई ॥ ६१ ॥

वर्ण आदि संसार में रहे जीव के मांहि।
मुक्त अवस्था में लखो, वर्ण आदि हैं नाहिं॥६१॥

अर्थ—वर्णादिक हैं वे संसार में तिष्टते हुये जीवों के उस संसार में होते हैं। संसार से छूटे हुये जीवों के निश्चय कर वर्णादिक कोई भी नहीं है, इस से तादात्म्य सम्बन्ध भी नहीं है॥ ६१ ॥

आगे—जीव के साथ वर्णादिक का तादात्म्य ही है ऐसा कोई कहे उसका दोष बताते है।

जीवो चेवहि एदे, सव्वे भावात्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्सा जीवस्स य, णत्थि विसेसोदुदे कोई ॥ ६२ ॥

जो माने वर्णादि तू; सभी जीव के भाव।
जड़ चेतन कछु भेद नाहि, तेरा मत भ्रम राव॥६२॥

अर्थ—जो तू ऐसा मानेगा कि ये वर्णादिक भाव सभी जीव हैं तो तेरे मत में जीव अजीव का कोई भेद नहीं रहेगा ॥ ६२ ॥

आगे—संसार अवस्था में जीव को वर्णादि से तादात्म्य मानने पर भी वही दोष आता है।

जदि संसारत्थाणं, जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी ।
तम्हा संसारत्था, जीवा रूवित्त मावण्णा ॥ ६३ ॥

एवं पुग्गल दव्वं, जीवोतह लक्खणेण मूढमदी ।
णिव्वाण मुवगदोविय, जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥ ६४ ॥

संसारी वर्णादि मय, तेरे मत में जीव ।
इस कारण रूपी भये, सर्व लोक के जीव ॥६३॥

इस लक्षण से मूढ़ मति, पुद्गल जीव प्रसिद्ध ।
मोक्ष प्राप्त अरु जीव पन, पुद्गल ही के सिद्ध ॥६४॥

अर्थ—अथवा संसार में तिष्टते हुवे जीवों के तेरे मत में वर्णादिक तादात्म्य स्वरूप हैं तो इस कारण से संसार से स्थित जीव रूपी पने को प्राप्त होंगे ऐसा होने पर पुद्गल द्रव्य ही जीव सिद्ध हुवा, पुद्गल के लक्षण के समान जीव का लक्षण होने से हे मूढ़ बुद्धि, निर्वाण को पुद्गल ही जीव पने को प्राप्त हुवा ॥६३-६४॥

आगे—इसी अर्थ का विशेष कहते हैं।

एक्कंच दोण्णि तिण्णिय, चत्तारिय पंच इंदियाजीवा।
वादर पज्जत्तिदरा, पय डीओ णाम कम्मस्स ॥ ६५ ॥

एदेहिय णिव्वत्ता, जीवट्ठाणाउ करण भूदाहिं।
पयडीहिं पुग्गल मइ, हिंताहिं कहं भण्णदे जीवो॥६६॥

एकेन्द्रिय से आदिलग, पन्चेन्द्रिय लों जीव।
वादर पर्याप्ति इतर, नाम कर्म प्रकतीव ॥ ६५ ॥

प्रकृतियों कर रचे हैं, जीव समास विधान।
पुद्गल प्रकृती में कहो, जीव कौन ले मान॥६६॥

अर्थ—एकेंद्री से पंचेन्द्री तक या वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये जीव हैं, वे नाम कर्म की प्रकृतियां हैं इन प्रकृतियों कर ही करण स्वरूप होकर जीव समास रचे गये हैं उन पुद्गल मय प्रकृतियों से रचे हुये को जीव कैसे कह सकते हैं ॥ ६५–६६ ॥

आगे—इस ज्ञान घन आत्मा के सिवाय अन्य कुछ हैं सो व्यवहार मात्र है।

पज्जत्ता पज्जत्ता, जे सुहुमा वादराय जे चेव।
देहस्स जीव सण्णा, सुत्ते ववहार दो उत्ता ॥ ६७ ॥

अपर्याप्त पर्याप्त से, सूक्षम वादर चार।
जीव देह संज्ञा सरव, कहे सूत्र व्यवहार ॥६७॥

अर्थ—जो पर्याप्त और अपर्याप्त और जो सूक्ष्म, वादर आदि जितनी देह की जीव संज्ञा कही है, वह सभी सूत्र में व्यवहार नय कर कही है ॥ ६७ ॥

आगे—जैसे वर्णादि भाव जीव नहीं है वैसे रागादि भाव भी जीव नहीं है।

मोहण कम्मस्सुदया, दु वरिणया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा, जेणिच्चम चेदणा उत्ता ॥ ६८ ॥

गुणस्थान है मोह से, वर्णन आगम कीन।
उन्हें जीव कैसे कहें, नित्य अचेतन चीन॥६८॥

अर्थ—जो ये गुणस्थान हैं, वे कर्म के उदय से होते हैं। ऐसा आगम में कहा है। वे जीव कैसे हो सकते हैं; जो हमेशा अचेतन कहे हैं॥ ६८ ॥

इति जीवाजीवाधिकारः उत्तर पीठिकाः—॥ १ ॥

अथ कर्ता कर्माधिकारः ॥२॥

अथ मासिक पाठ में तृतीय दिवस—

आगे—यह जीव जब तक निज पर का भेद न जाने तब तक अज्ञानी है।

जावण वेदि विसेसं, तरं तु आदास वाण दोण्हंपि ।
अण्णाणी तावदु सो, कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥ ६९ ॥

कोधादिसु वट्टं तस्स, तस्स कम्मस्स संचओ होदी ।
जीवस्सेवं बंधो, भणिदो खलु सव्व दरसीहिं ॥ ७० ॥

जबतक भिन्न न लखे जिय, आतम आश्रव कौन ।
तब तक वर्ते मूढ़ मति, क्रोधादिक में तौन ॥६९॥

क्रोधादिक वर्ते हुवे, कर्म संचयी जान ।
जीव कर्म को बन्धयों, जिनवर भाषा मान ॥७०॥

अर्थ—जब तक यह जीव आत्मा और आश्रव इन दोनों के भिन्न लक्षण नहीं जानता । तब तक अज्ञानी हुआ क्रोधादिक आश्रवों में प्रवर्तता है । क्रोधादिकों में वर्तते हुवे के कर्मों का संचय होता है, इस प्रकार जीव के कर्मों का बन्ध, सर्वज्ञ देव ने निश्चय से कहा है ॥ ६९–७० ॥

आगे—कर्ता कर्म की प्रवृत्ति का अभाव किस काल होता है ? उत्तर—

जइया इमेण जीवे, णअप्पणो आसवाण यतहेव ।
णादं होदि विसेसं, तरंतु तइयाण बंधो से ॥ ७१ ॥

जब जाने यह आतमा, निज आश्रव बहु भेद ।
उसी समय इस जीव के, होवे बंध विछेद ॥७१॥

अर्थ—जिस समय जीव के, अपना और आश्रव का भिन्न लक्षण मालूम हो जाता है, उसी समय उसके बंध नहीं होता ॥ ७१ ॥

आगे—ज्ञान मात्र से ही बंध का निरोध किस तरह ? उत्तर

णादूण आसवाणं असुचित्तिं च विवरीय भावंच।
दुक्खस्स कारणंति य, तदो णियत्तिं कुणदि जीवो॥७२॥

आश्रव को विपरीत या, अशुचि लेय पहिचान ।
दुख कारण इसको समझ, जीव त्यागता मान॥७२॥

अर्थ—आश्रवों का अशुचिपना, और विपरीत पना और ये दुख के कारण हैं, ऐसा जान कर यह जीव उन से निवृत्ति होता है ॥ ७२ ॥

आगे—किस तरह आश्रवों से निवृत्ति होती है ? उत्तर

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्मसओ णाणदंसणसमग्गो।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे ए ए स्वयं णेमि ॥७३॥

मैं ममता विन शुद्ध इक, दर्श ज्ञान कर पूर्ण।
या स्वभाव जब तिष्टता, सर्वाश्रव का चूर्ण॥७३॥

अर्थ—ज्ञानी विचारता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममता रहित हूँ। ज्ञान दर्शन कर पूर्ण हूँ, ऐसे स्वभाव में तिष्ट कर उसी चैतन्य अनुभव में लीन होकर इन क्रोधादिक सब आश्रवों को क्षय कर सकता हूँ ॥७३॥

आगे—ज्ञान होने का और आश्रवों की निवृत्ति का सम काल किस तरह है ? उत्तर

जीव णिबद्धा ए ए, अधु व अणिच्चातहा असरणाय ।
दुक्खा दुक्ख फलात्ति य, णादूणणिवत्तएतेहिं ॥७४॥

अध्रुव जीव निवद्ध ये; अनित्य अशरण जान ।
दुख फल अरु दुख रूप हैं, छांडे ज्ञानी मान॥७४॥

अर्थ—ये आश्रव जीव के साथ निवद्ध हैं, अधुव हैं, अनित्य हैं, अशरण हैं, दुःख रूप है इनका फल दुःख ही है, ऐसा जान कर ज्ञानी पुरुप इनसे निवृत्ति होता है ॥ ७४ ॥

आगे—ऐसा आत्मा कैसे पहिचाना जा सक्ता है चिन्ह कहो ? उत्तर

कम्मस्स य परिणामं, णो कम्मस्स य तहे व परिणामं ।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ७५ ॥

जीव कर्म परिणाम को, तथा नो कर्म दोय ।
नाहि कर्ता है जानता है, वह ही ज्ञानी होय॥७५॥

अर्थ—जो जीव इस कर्म के परिणाम को उसी तरह नो कर्म के परिणाम को नहीं करता परन्तु जानता है वह ज्ञानी है । ॥७५ ॥

आगे—जो जीव पुद्गल कर्म को जानता है उस का कर्ता कर्म भाव है कि नहीं ? उत्तर

णवि परिणमइ णगिह्लइ उपज्जइ ण पर दव्व पज्जाये ।
णाणीजाणंतो विहु पुग्गल कम्मं अणेय विहं ॥ ७६ ॥

नहि उपजे नहि परिणवे. ग्रहे न पर पर्याय ।
ज्ञानी पुद्गल कर्म को, जाने वहुविधि थाय ॥७६॥

अर्थ—ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्गल द्रव्य के पर्याय रूप कर्मों को जानता है, तो भी निश्चय कर, पर द्रव्य के पर्यायों में उन स्वरूप नहीं परिणमता । ग्रहण भी नहीं करता । और उनमें उत्पन्न भी नहीं होता ॥ ७६ ॥

आगे—अपने परिणामों को जानता, जो जीव उसके पुद्गल के साथ कर्ता कर्म भाव हैं कि नहीं ? उत्तर

णवि परिणमदि ण गिह्लदि, उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जये ।
णाणी जाणंतोवि हु, सग परिणामं अणेयविहं ॥७७॥

नहि उपजे नहि परिणवे, ग्रहे न पर पर्याय ।
ज्ञानी निज परिणाम को, जाने वहुविधिथाय॥७७॥

अर्थ—ज्ञानी अपने परिणामों को अनेक प्रकार जानता हुआ भी निश्चय कर, पर द्रव्य के पर्याय में न तो परिणमता है। न उसको ग्रहण करता है । और न उपजता है। इसलिये उसके साथ कर्ता कर्म भाव नहीं है ॥ ७७ ॥

आगे—पुद्गल फल को जानते हुये जीव के पुद्गल के साथ कर्ता कर्म भाव है कि नहीं ।

णवि परिणमदि ण गिह्णदि. उप्पज्ज दिण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतोवि, हु पुग्गल कम्मफल मणंतं ॥७८॥

नहि उपजे नहि परिणवे, ग्रहे न पर पर्याय।
ज्ञानी वहु विधि जानता, पुद्गल फल वहुथाय॥७८॥

अर्थ—ज्ञानी अनन्त पुद्गल कर्म के फलों को जानता हुआ प्रवर्तता है, तो भी निश्चय से पर द्रव्य के पर्याय में नहीं परिणमता है। उसमें कुछ ग्रहण नहीं करता, और उपजता भी नहीं है इस प्रकार उसमें इसके कर्ता कर्म भाव नहीं हैं॥७८॥

आगे—स्वपर को नहीं जानने वाला पुद्गल का जीव के साथ कर्ता कर्म भाव है कि नहीं ?

णवि परिणमदि ण गिह्णदि, उप्पज्जदि ण पर दव्व पज्जाए।
पुग्गल दव्वं पि तहा, परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥७९॥

नहि उपजे नहि परिणवे, ग्रहे न पर पर्याय।
पुद्गलभी निज भाव से, परणमता जिन गाय॥७९॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य भी पर द्रव्य के पर्याय में, उस तरह नहीं परिणमता न ग्रहण करता, और न उत्पन्न होता, क्यों कि अपने भावों से ही परिणमता है। इसलिये कर्ता कर्म भाव नहीं हैं॥ ७९ ॥

आगे—जीव और पुद्गल के परिणाम में परस्पर निमित्त मात्र पना है कर्ता कर्म भाव नहीं है।

जीव परिणाम हेदुं, कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं, तहेव जीवो वि परिणमइ॥८०॥

णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणो।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु, परिणामं जाणदो हुंपि॥८१॥

एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पुग्गल कम्म कयाणं, ण दु कत्ता सव्व भावाणं॥८२॥

जीव भाव के निमित से, पुद्गल होते कर्म।
पुद्गल कर्म निमित्त से, जीवकरे भ्रम कर्म ॥८०॥

जीव करे नहि कर्मगुण, उसी तरह से कर्म।
इन दोनों में परस्पर, निमित मात्र है धर्म ॥८१॥

इस कारण निज भाव का, कर्ता जीव वखान।
पुद्गल कर्म किये सकल, जीव न कर्ता मान ॥८२॥

अर्थ—पुद्गल जिसको जीव के परिणाम निमित्त हैं, ऐसे कर्म पने रूप परिणमते हैं, उसी तरह जीव भी जिसको पुद्गल कर्म निमित्त हैं, ऐसे कर्म पने रूप परिणमता है जीव कर्म के गुणों को नहीं करता। उसी तरह कर्म जीव के गुणों को नहीं करता किन्तु इनदोनों के परस्पर निमित्त मात्र से, परिणाम जानो। इसी कारण से अपने भावों का आत्मा कर्ता कहा जाता है। परन्तु पुद्गल कर्म कर किये गये सव भावों का कर्ता नहीं है॥ ८०–८२ ॥

आगे—जीव का अपने साथ ही कर्ता कर्म भाव भोक्ता भोग्य भाव है।

णिच्छय णयस्स एवं, आदा अप्पाण मेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव, जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८३ ॥

निश्चय नय का मत प्रगट, अपना करता जीव ।
उसीतरह यह भोगवे, अपना आप सदीव ॥८३॥

अर्थ—निश्चय नय का यह मत है कि आत्मा अपने को ही करता है
फिर वह आत्मा अपने को ही भोगता है ऐसा जान ॥ ८३ ॥

आगे—व्यवहार को दिखाते हैं ।

ववहारस्स दु आदा, पुग्गल कम्मं करेदि णेयविहं ।
तं चेवय वेदयदे, पुग्गल कम्मं अणेय विहं ॥ ८४ ॥

बहु विधि जिय व्यवहार से, करता पुद्गल कर्म ।
उसी तरह से भोगवे, बहु विधि पुद्गल कर्म॥८४॥

अर्थ—व्यवहार नय का यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार पुगद्ल
कर्मों को करता है और उसी तरह अनेक प्रकार पुगद्ल कर्म
को भोगता है ॥ ८४ ॥

आगे—इस व्यवहार को दूषण देते हैं ।

जदि पुग्गल कम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा ।
दो किरियावादित्तं, पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥८५॥

जीव करे पुद्गल करम, भोगे उसके माहि।
अभिन्न ठहरे दो क्रिया, सो जिनवर मत नाहि॥८५॥

अर्थ—जो आत्मा इस पुद्गल कर्म को करे और उसी को भोगे तो वह आत्मा दो क्रिया से अभिन्न ठहरे ऐसा प्रसङ्ग आता है सो यह जिनवर देव का मत नहीं है॥ ८५ ॥

आगे—एक पुरुष दो क्रियाओं का अनुभव करने वाला मिथ्यादृष्टि कैसे है उसका समाधान।

जह्मा दु अत्त भावं, पुग्गल भावं च दोवि कुव्वंति।
तेण दु मिच्छादिट्ठी, दो किरिया वादिणो हुंति॥८६॥

जिसके कर्ता आतमा, निज अरु पुद्गल भाव।
कहें क्रिया दो एक की, ते मिथ्याती राव॥८६॥

अर्थ—जिस कारण आत्मा के भाव को और पुद्गल के भाव को दोनों ही को आत्मा करता है ऐसा जो कहते हैं इसी कारण से वे दो क्रियाओं को एक के ही कहने वाले मिथ्यादृष्टि ही है॥ ८६ ॥

आगे—मिथ्यात्वादि क्या वस्तु है ? उत्तर

मिच्छत्तंपुण दुविहं, जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो, कोधादीया इमे भावा॥ ८७॥

जिय अजीय मिथ्यात द्वय, उसी तरह अज्ञान ।
योग मोह क्रोधादि अरु; अविरत भाव बखान॥८७॥

अर्थ—जो मिथ्यात्व कहा गया था वह दो प्रकार है एक जीव मिथ्यात्व, एक अजीव मिथ्यात्व, और उसी तरह अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोधादि कसाय, ये सभी भाव जीव अजीव के भेद कर दो दो प्रकार हैं ॥ ८७ ॥

आगे—मिथ्यात्वादि भाव जीव अजीव के पृथक २ दिखाते हैं।

पुग्गल कम्मं मिच्छं, जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं, अविरइ मिच्छंच जीवे दु ॥८८॥

अविरत योग अबोध भ्रम, ये जड़ पुद्गल कर्म ।
अविरत भ्रम अज्ञान मिल, जिय उपयोग जु भर्म॥८८॥

अर्थ—जो मिथ्यात्व योग, अविरति अज्ञान ये अजीव हैं ये तो पुद्गल कर्म हैं और अज्ञान अविरत मिथ्यात्व ये जीव हैं वे उपयोग हैं ॥ ८८ ॥

आगे—जीव मिथ्यात्वादि चैतन्य परिणाम का विकार किस कारण हैं ? उत्तर

उवओगस्स अणाई, परिणामा तिण्णि मोह जुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरदि भावो य णायव्वो ॥८९॥

है अनादि उपयोग मैं, मोह युक्त त्रय भाव।
मिथ्यातम अज्ञान अरु, अविरत जान स्वभाव॥८९॥

अर्थ—अनादि से मोह युक्त होने से उपयोग के अनादि से लेकर तीन परिणाम हैं वे मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरत भाव ये तीन जानने ॥ ८९ ॥

आगे—आत्मा को इन विकारों का कर्ता दिखलाते हैं।

ए एसु य उवओगो, तिविहो सुद्धोणिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं, उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९०॥

शुद्ध निरन्जन है यदपि, पूर्व भाव त्रय मान।
करे जिसे तिस भाव का, इन में कर्ता जान॥९०॥

अर्थ—मिथ्वात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनों का अनादि से निमित्त होने पर आत्मा का उपयोग शुद्ध नय कर एक शुद्ध निरन्जन हैं तो भी मिथ्या दर्शन, अज्ञान, अविरति, इस तरह तीन प्रकार परिणाम वाला है सो वह आत्मा इन तीनों में से जिस भाव को स्वयम् करता है उसी का वह कर्ता होता है ॥ ९० ॥

आगे—आत्मा को विकार का कर्ता होने पर पुद्गल द्रव्य आप ही कर्म रूप होके परिणमता है।

जं कुणइ भाव मादा, कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे, तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं ॥ ९१ ॥

जीव करे जिस भाव को, उसका कर्ता आप।
कर्म रूप फिर परिणवे, पुद्गल अपने आप ॥६१॥

अर्थ—आत्मा जिस भाव को कर्ता है, उस भाव का कर्ता आप होता है, उस को कर्ता होने पर पुद्गल द्रव्य अपने आप कर्म रूप परिणमता है ॥ ९१ ॥

आगे—कर्म भी अज्ञान से होता है यह तात्पर्य कहते हैं।

पर मप्पाणं कुव्वं, अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो, कम्माणं कारगो होदि ॥ ६२ ॥

जो पर को अपना करे, निज को पर का मान।
अज्ञानी सो जीव है, बांधे कर्म महान ॥६२॥

अर्थ—जीव आप अज्ञानी हुआ पर को अपना करता है और अपने को पर का करता है इस तरह वह कर्मों का कर्ता होता है ॥ ९२ ॥

आगे—कहते हैं कि ज्ञान से कर्म उत्पन्न नहीं होता।

परमप्पाणं कुव्वं, अप्पाण पि य परं अकुव्वंतो।
सोणाणमओ जीवो, कम्माणमकारओ होदि ।६३॥

जो पर को नहिं निज करे, निज को पर नहिं मान।
वही जीव है ज्ञान मय, कर्म अकारक जान॥६३॥

अर्थ—जो जीव अपने को पर नहीं करता, और पर को अपना भी नहीं करता, वह जीव ज्ञानमय है कर्मों का करने वाला नहीं है ॥९३

आगे—अज्ञान से कैसे भाव उत्पन्न होता ? उत्तर

तिविहो एसुव ओगो, अप्प वियप्पं करेइ को होहं
कत्ता तस्सुवओगस्स, होइ सो अत्त भावस्स ॥ ९४ ।

जीव त्रिबिधि उपयोग से, क्रोध रूप निज मान
उस अपने उपयोग का, करता सहजहि जान॥९४।

अर्थ—यह तीन प्रकार का उपयोग अपने में विकल्प करता है कि मैं क्रोध स्वरूप हूँ उस अपने उपयोग भाव का वह कर्ता होता है ॥ ९४ ॥

आगे—धर्म द्रव्य आदि अन्य द्रव्यों में भी आत्मविकल्प करता है।

तिविहो एसु वओगो, अप्पविअप्पं कुदेदि धम्माई
कत्ता वस्सुव ओगस्स, होदि सो अत्त भावस्स ॥९५।

जीव त्रिबिधि उपयोग से, धर्मादिक निज मान
उस अपने उपयोग का कर्ता सहजहि जान॥९५।

अर्थ यह उपयोग तीन प्रकार का होने से धर्म आदिक द्रव्य रू आत्म विकल्प करता है, उन को अपना जानता है, वह उ उपयोग रूप अपने भाव का कर्ता होता है ॥ ९५ ॥

आगे—इस हेतु से कर्ता पने का मूल कारण अज्ञान ठहरा।

एवं पराणि दव्वाणि, अप्पयं कुणदि मंद बुद्धीओ।
अप्पाणं अवि य परं, करेइ अण्णाण भावेण ॥ ९६ ॥

अज्ञानी अज्ञान कर, पूर्व रीति पहिचान।
अन्य वस्तु अपनी करे, अरु निज को पर ठान॥९६॥

अर्थ—ऐसे पूर्व कथित रीति से अज्ञानी, अज्ञान भाव कर, पर द्रव्यों को अपनी करता है, और अपने को पर का करता है ॥ ९६ ॥

आगे—ज्ञान से कर्ता पने का नाश होता है।

एदेण दु सो कत्ता, आदाणिच्छय विदूहिं परि कहिदो।
एवं खलु जो जाणदि, सो मुंचदि सव्व कत्तित्तं ॥ ९७ ॥

पूर्व देख कर्ता कहें, निश्चय वादी लोय।
इसे भली विधि जो लखे, करता रहे न सोय॥९७॥

अर्थ इस पूर्व कथित कारण से, निश्चय के जानने वाले ज्ञानियों ने, यह आत्मा कर्ता कहा है, इस तरह जो जानता है, वह ज्ञानी हुआ सर्व कर्तापने को छोड़ देता है ॥ ९७ ॥

आगे—व्यवहारी ऐसा कहते हैं।

ववहारेण दु एवं, करेदि घड़ पड़ रथाणि दव्वाणि।
करणाणि य कम्माणि य, णोकम्माणीह विविहाणि॥९८॥

जीव करे व्यवहार कर[1] घट[2] पट आदिक द्रव ।
विविधि कर्म करणादि[3] को, और नो कर्म सर्व ॥९८॥

अर्थ—आत्मा व्यवहार कर, घट, पट, रथ इन वस्तुओं को करता है, और इन्द्रियादिक करण पदार्थों को करता है । और ज्ञाना वरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्य कर्म भाव कर्म को करता है तथा इस लोक में अनेक प्रकार के शरीरादि नोकर्मों को कर्ता है ॥ ९८ ॥

आगे—यह व्यवहार का मानना परमार्थ दृष्टि में अच्छा नहीं है ।

जदि सो पर दव्वाणिय, करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जह्मा ण तम्मओ, तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥ ९९ ॥

जीव करे पर द्रव्य यादि, होय लीन उस मांहि ।
लीन न पर में हो सके, इस से कर्ता नाहि ॥९९॥

अर्थ—जो वह आत्मा पर द्रव्यों को करे, तो वह आत्मा उन पर द्रव्यों से नियम कर तन्मय हो जाय, परन्तु तन्मय नहीं होता, कारण वह उन का कर्ता नहीं है ॥ ९९ ॥

आगे—निमित्त नैमित्तिक भाव कर तो कर्ता होगा उसको निषेधते हैं ।

जीवो ण करेदि घडं, णेव पडं णेव से सगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा, य तेसिं हवदि कत्ता ॥ १०० ॥

---

१ कलस २ वस्त्र ३ इन्द्रियादि

जीव करे घट पट नहीं, शेष द्रव्य नहि कीव।
निमित योग उपयोग है, तिसका कर्ता जीव॥१००॥

अर्थ—जीव घड़े को नहीं करता, और पट को भी नहीं करता शेष द्रव्यों को भी नहीं करता, जीव के योग और उपयोग ये दोनो घटादिक के उत्पन्न करने के निमित्त हैं, उन दोनों योग-उपयोगों का यह जीव कर्ता है॥ १०० ॥

आगे—कहते हैं ज्ञानी ज्ञान का ही कर्ता है।

जे पुग्गल दव्वाणं, परिणामा होंति णाण आवरणा।
ण करेदि ताणि आदा, जोजाणदि सोहवदिणाणी॥१०१॥

ज्ञानावर्णी अष्ट जे, ते पुद्गल परिणाम।
उन्हें जीव कर्ता नहीं, जाने ज्ञानी राम॥१०१॥

अर्थ—जो ज्ञाना वरणादिक पुद्गल द्रव्यों के परिणाम हैं उनको आत्मा नहीं करता जो जानता है वह ज्ञानी है॥ १०१ ॥

आगे—जो अज्ञानी है वह भी पर द्रव्य का कर्ता नहीं है।

जं भावं सुह मसुहं, करेदि आदा स तस्सु खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं, सो तस्स दुवेदगो अप्पा॥ १०२ ॥

भाव शुभा शुभ जो करे, तिसका कर्ता जीव।
वही भाव तसु कर्म है, भोगे ताहि सदीव॥१०२॥

अर्थ—आत्मा जिस शुभ, अशुभ अपने भाव को करता है वह उस भाव का कर्ता निश्चय से होता है, वह भाव उसका कर्म होता है, वही आत्मा उस भाव रूप कर्म का भोक्ता होता है ॥ १०२ ॥

आगे—पर को कोई भी नहीं कर सकता ऐसा न्याय है।

जो जह्मि गुणो दव्वे, सो अण्णह्मिदुण संकमदि दव्वे।
सो अण्णम संकंतो, कहतं परिणामए दव्वं ॥ १०३ ॥

जो अपने गुण भाव में, पलट अन्य नहि होय।
मिले नहीं पर द्रव्य में; पर को करे न कोय॥१०३॥

अर्थ—जो द्रव्य जिस अपने स्वभाव में, तथा अपने जिस गुण में, वर्तता है वह अन्य द्रव्य में तथा गुण में संक्रमण रूप नहीं होता, पलट कर अन्य में नहीं मिल जाता, वह अन्न में नहीं मिलता हुआ, उस अन्य द्रव्य को कैसे परिणमा सकता है? कभी नही परिणमा सकता ? ॥१०३॥

आगे—आत्मा पुद्गल कर्मों का अकर्ता है।

दव्वगुणस्सय आदा, ण कुणदि पुग्गल मयह्मि कम्मह्मि।
तं उभयम कुव्वंतो, तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥ १०४ ॥

पुद्गल के गुण द्रव्य को, जीव करे नहिं कोय।
उन दौनों को नहि करे, करता कैसे होय॥१०४॥

अर्थ—आत्मा पुद्गल मय कर्म में द्रव्य को तथा गुण को नहीं करता,

इससे उन दोनों को नहीं करता हुआ, उसका वह कर्ता कैसे हो सकता है ॥ १०४ ॥

आगे—निमित्त नैमित्तकादि को देख अन्य प्रकार से कहना उपचार है।

जीवह्मि हेदु भूदे, वंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं, भरणदि उवयार मत्तेण ॥ १०५ ॥

कर्म वन्ध परिणाम में, निमित जीव का देख।
किये कर्म इस जीव ने, व्यवहारी नय पेख॥१०५॥

अर्थ—जीव को निमित्त रूप होने से कर्म वंध का परिणाम होता है, उसे देख कर जीव ने कर्म किए हैं, यह उपचार मात्र से कहा जाता है ॥ १०५ ॥

आगे—यह उपचार कैसे है दृष्टान्त कर कहते हैं।

जोधेहि कदे जुद्धे, राएण कदंति जंपदे लोगो।
तह ववहारेण कदं, णाणा वरणादि जीवेण ॥ १०६ ॥

जोधा[१] कृत रण देख के, लोग कहें नृप कीव।
उसी तरह व्यवहार से, किये कर्म अठ जीव॥१०६॥

अर्थ जैसे योद्धाओं ने युद्ध किया, उस जगह लोक ऐसा कहते हैं कि

१ सैनिक

अर्थ—राजा ने युद्ध किया, सो यह व्यवहार से कहना है, उसी तरह ज्ञाता वरणादिक कर्म जीव ने किये हैं ऐसा कहना व्यवहार से है॥ १०६ ॥

आगे—इस हेतु से निश्चय हुआ कि यह उपचार है।

उप्पादेदि करेदि य, बंधदि परिणाम एदिगिण्हदिय।
आदा पुग्गल दव्वं, ववहारणयस्स वत्तव्वं॥ १०७॥

परिणावे बांधे गहे, करे और उपजाय।
आतम पुद्गल द्रव्य को, व्यवहारी वच गाय॥१०७॥

अर्थ—आत्मा पुद्गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, और बनाता है बांधता है, परिणमाता है, तथा ग्रहण करता है ऐसा व्यवहार, नय का वचन है॥ १०७॥

आगे—यह उपचार किस तरह से है दृष्टान्त कर दिखाते हैं।

जह रायाववहारा, दोसगुणुप्पादिगोत्ति आलविदो।
तहजीवोववहारा, दव्व गुणुप्पादगो भणिदो॥ १०८॥

यथा नृपति व्यवहार से, गुण अवगुण उपजाय।
तथा जीव व्यवहार से, द्रव्यरू गुण उपजाय॥ १०८॥

अर्थ—जैसे प्रजा में, राजा, दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला है

ऐसा व्यवहार से कहा है, उसी तरह जीव को भी व्यवहार से, पुद्गल द्रव्य में, द्रव्य गुण का उत्पादक कहा गया है ॥ १०८ ॥

अथ मासिक पाठ में चतुर्थ दिवस—

आगे—पुद्गल कर्म का कर्ता जीव नहीं तो कौन है ? उत्तर

सामरण पच्चाया खलु, चउरो भरणंति बंध कत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमण, कसाय जोगाय बोद्धव्वा ॥१०९॥

तेसिं पुणोवि य इमो, भणिदो भेदोदु तेरसवियप्पो ।
मिच्छा दिट्ठी आदी, जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥११०॥

एदे अचेदणा खलु, पुग्गल कम्मुदय संभवाजह्मा ।
तेजति करंति कम्मं, णवि ते सिं वेदगो आदा ॥१११॥

गुण सरिणदा दु एदे, कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा ।
तह्मा जीवोकत्ता, गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥ ११२ ॥

मुख्य चार आश्रव कहे, बंध करें ते मान ।
वे मिथ्यात कषाय अरु, अविरत योग वखान॥१०९॥

तिन के भेद विशेष कर, तेरह कहे बखान ।
गुणस्थान मिथ्यात से, संयोगी तक मान॥११०॥

ये हैं जड़ निश्चय सरब, पुद्गल कर्म प्रताप।
जो वे करते कर्म को, जीव न भोगे आप॥१११॥

ये आश्रव गुण नाम हैं, क्योंकि करे ये कर्म।
इससे कर्ता जीव नहिं, ये ही करते कर्म ॥११२॥

अर्थ कर्म वन्ध के कारण जो आश्रव हैं, वे सामान्य से चार वंध के कर्ता कहे हैं: वे मिथ्यात्व; अविरमण: और कषाय योग जानने और उनका फिर यह भेद; तेरह भेद रूप कहा गया है, वह मिथ्या दृष्टि को आदि लेकर संयोग केवली तक हैं। ये तेरह गुण स्थान जानने। ये निश्चय दृष्टि कर अचेतन हैं, क्यों कि पुद्गल कर्म के उदय से हुवे हैं, जो वे कर्म को करते हैं उनका भोक्ता; आत्मा नहीं होता। ये प्रत्यय गुण नाम वाले हैं; क्यों कि ये कर्म को करते हैं: इस कारण जीव तो कर्म का कर्ता नहीं है; और ये गुण ही कर्मों को करते हैं ॥१०९-११२॥

आगे जीव के और प्रत्ययों के एक पना नहीं है।

जह जीवस्स अणण्णुव, ओगो को हो वितह जदि अणण्णो।
जीवस्सा जीवस्स य, एव मणण्णत्त मा वण्णं ॥११३॥

एवमिह जोदु जीवो, सो चेवदुणियम दो तहाजीवो।
अय मे यत्ते दोसो, पच्चयणो कम्म कम्माणं ॥११४॥

अहदे अण्णो कोहो, अण्णुव ओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय, कम्मं णो कम्ममवि अण्णं। ११५॥

जीव एक उपयोग जिमि, तद् वत मानो क्रोध ।
एक रूप हो जाय फिर, जीव अजीव न बोध॥११३॥

यों माने फिर जीव ही! अजीव नियमित होय ।
आश्रव भी फिर एक हो, करम नो करम सोय॥११४॥

जिय उपयोग स्वरूप है, क्रोध अन्य जड़ धर्म ।
भिन्न क्रोध आश्रव समझ, और कर्म नो कर्म॥११५॥

अर्थ जैसे जीव के एक रूप उपयोग है, उसी तरह जो क्रोध भी एक रूप हो जाय तो; इस तरह जीव और अजीव के एक पना प्राप्त हुआ। ऐसा होने से इस लोक में जो जीव है; वही नियम से वैसा ही अजीव हुआ, ऐसे दोनों के एकत्व होने में यह दोष प्राप्त हुआ। इसी तरह प्रत्यय नो कर्म और कर्म इन में भी; यही दोष जानना। इसलिये इस दोष के भय से; ऐसा मानना चाहिये कि; क्रोध अन्य है; और उपयोग स्वरूप आत्मा अन्य है; उसी तरह प्रत्यय कर्म और नो कर्म ये भी आत्मा से अन्य ही हैं॥ ११३—११५ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्य को परिणमन स्वभाव वाला सिद्ध करते हैं।

जीवेण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्म भावेण ।
जइ पुग्गल दव्व मिणं, अप्परिणामी तदा होदि ॥११६॥

कम्म इय वग्गणासु य, अपरणमंतीसु कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो, पसज्जदे संख सम ओवा ॥११७॥

जीवोपरिणामयदे, पुग्गल दव्वाणि कम्म भावेण।
ते सयम परिणमंते, कहं तु परिणाम यदि चेदा॥११८॥

अह सय मेवहि परिणमदि, कम्म भावेण पुग्गलं दव्वं।
जीवो परिणामयदे, कम्मं कम्मत्त मिदिमिच्छा॥११९॥

णियमा कम्म परिणदं, कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं।
तहतं णाणा वरणाइ, परिणदं मुणासु तच्चेव ॥ १२० ॥

स्वयं बंधे न परिणवे, कर्म जीव में कोय।
यों माने पुद्गल दरब, विन परणामी होय॥११६॥

कर्म वर्गणा कर्म मय, यदि न परिणवे कोय।
तो अभाव संसार का, सांख्य मानता होय॥११७॥

कर्म भाव से स्वंद को; यदि परणावे जीव।
विन परिणामी को कहो, किम परिणावे जीव॥११८॥

पुद्गल स्वयं ही परिणवे, कर्म रूप ले मान।
जीव भाव कर परिणवे, यह वच मिथ्या जान॥११९॥

नियमित पुद्गल दर्व ही, कर्म रूप हो जाय।
ऐसा होने पर उसे, अष्ट कर्म जिन गाय॥१२०॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य जीव में आप न तो बंधा है, और न कर्म भाव से स्वयं परिणमता है, जो ऐसा मानों तो यह पुद्गल द्रव्य अपरिणामी हो जायगा। अथवा कार्माण वर्गणा, आप कर्म भाव से नहीं परिणमती, ऐसा मानिये तो संसार का अभाव ठहरेगा, अथवा सांख्य मत का प्रसङ्ग आयगा। जीव ही पुद्गल द्रव्यों को कर्म भावों से परिणमाता है, ऐसा माना जाय तो, वे पुद्गल द्रव्य आप ही नहीं परिणमते, उनको यह चेतन, जीव कैसे परिणमा सकता है; यह प्रश्न हो सकता है। अथवा पुद्गल द्रव्य, आप ही कर्म भाव से परिणमाता है, ऐसा माना जाय तो, जीव कर्म भाव कर कर्म रूप पुद्गल को परिणमाता है, ऐसा कहना झूट हो जाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल द्रव्य कर्म रूप परिणत हुआ, नियम से ही कर्म रूप होता है, ऐसा होने पर वह पुद्गल द्रव्य ही ज्ञाना वरणादि रूप परिणत कर्म जानो॥ ११६–१२०॥

आगे—जीव को परिणमन स्वभाव वाला सिद्ध करते हैं।

ण सयं बद्धो कम्मे, ण सयं परिणमदि कोह मादीहिं।
जइ एस तुज्झ जीवो, अप्परिणामी तदा होदी॥१२१॥

अपरिणमं तम्हि सयं, जीवे कोहादिएहि भावेहिं।
संसारस्स अभावो, पसज्जदे संख समओ वा॥१२२॥

पुग्गल कम्मं कोहो, जीवं परिणामएदि को हत्तं।
तं सयम परिणमंतं कहंणु परिणम यदि भावेण कोहो॥१२३॥

अह सय मप्पा परिणमदि, कोह भावेण एसदे वुद्धी।
कोहो परिणामयदे, जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा॥१२४॥

कोहु वजुत्तो कोहो, माणु वजुत्तोय माणमे वादा।
माउ वजुत्तो माया, लोहु वजुत्तो हवदि लोहो॥१२५॥

स्वयं बद्ध नहिं कर्म से, अरु न परिणवे क्रोध।
यों मानों तो जीव यह, बिन परिणामी बोध॥१२१॥

बिन परिणामी जीव जब, क्रोधादिक से होय।
नाश होय संसार का, सांख्य मान्यता होय॥१२२॥

पुद्गल क्रोध जो जीव को, परिणावे यदि क्रोध।
बिन परिणमते को कहो, किम परिणावे क्रोध॥१२३

स्वयं आतमा क्रोध से, परिणमता ले मान।
परिणावे यह क्रोध ही, यह वच मिथ्या जान॥१२४॥

क्रोध युक्त कर क्रोधमय, मान युक्त कर मान।
माया कर माया मई, लोभहि तदवत जान॥१२५॥

अर्थ—तेरी बुद्धि में यदि यह जीव कर्मों में आप तो बंधा नहीं है, और क्रोधादिक भावों कर आप परिणमता भी नहीं है, ऐसा है तो वह अपरिणामी होगा। ऐसा होने पर क्रोधादि भावों कर, जीव को आप नहीं परिणत होने पर संसार का अभाव हो जायगा, और साँख्य मत का प्रसंग आवेगा। यदि कहेगा कि पुद्गल कर्म क्रोध है, वह जीव को क्रोध भाव रूप परिणमाता है, तो आप स्वयं न परिणमते हुये जीव को, क्रोध कैसे परिणमा सकता है, ऐसा प्रश्न है। अथवा तेरी ऐसी समझ है कि, आत्मा अपने आप क्रोध भाव कर परिणमता है। तो क्रोध जीव को क्रोध भाव रूप परिणमाता है। ऐसा कहना मिथ्या ठहरता है। इसलिये यह सिद्धान्त है कि आत्मा, क्रोध से उपयोग सहित होता है, तब तो क्रोध ही है। मान से उपयुक्त होता है, तब माना ही है। माया कर उपयुक्त होता है तब माया ही है और लोभ कर उपयुक्त होता है, तब लोभ ही है॥ १२१-१२५ ॥

आगे—यह नियम है कि, जिस भाव को जो करे उसका वह कर्ता है।

जं कुणदि भाव मादा, कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।
णाणिस्सदु णाण मओ, अण्णाणमओ अणाणिस्स॥१२६॥

जो कर्ता जिस भाव को, कर्ता कर्म बखान।
सो ज्ञानी के ज्ञानमय, अज्ञानी अज्ञान ॥१२६॥

अर्थ—जो आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भाव रूप कर्म का कर्ता होता है। उस जगह ज्ञानी के तो, वह भाव ज्ञान मय है, और अज्ञानी के अज्ञान मय है॥ १२६ ॥

आगे—ज्ञान मय भाव से अकर्ता होता है, और अज्ञानमय भाव से कर्ता

अण्णाण मओ भावो, अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओणाणिस्स दु, ण कुणदि तह्मादु कम्माणि॥१२७॥

मूढ़ भाव से मूढ़ है, या से करता कर्म।
ज्ञानी ज्ञान स्वभाव है, यासे करे न कर्म॥१२७॥

अर्थ—अज्ञानी का अज्ञानमय भाव है। इस कारण अज्ञानी कर्मों को करता है। और ज्ञानी के ज्ञान मय भाव होता है, इसलिये वह ज्ञानी कर्मों को नहीं करता॥ १२७॥

आगे—ज्ञानी के ज्ञान भाव और अज्ञानी के अज्ञान भाव उत्पन्न होते हैं

णाणमया भावाओ, णाण मओचेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा णाणिस्स, सव्वे भावाहु णाण मया॥१२८॥

अण्णाण मया भावा, अण्णाणो चेव जायए भावो।
जम्हा तम्हा भावा, अण्णाण मया अणाणिस्स॥१२९॥

ज्ञान भाव से ज्ञानमय, निश्चय करके जान।
इस कारण ज्ञानी विषें ज्ञान भाव सब मान॥१२८॥

उसी तरह अज्ञान से, मूढ़ भाव उत्पन्न।
इस से अज्ञानी सदा, मूढ़ भाव सम्पन्न॥१२९॥

अर्थ—जिस कारण ज्ञान मय भावें से, ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते हैं। इस कारण ज्ञानी के निश्चय कर, सब भाव ज्ञानमय हैं। और जिस कारण अज्ञान भाव से, अज्ञान मय ही भाव होते हैं, इस कारण अज्ञानी के अज्ञान मय भाव ही उत्पन्न होते हैं॥ १२८-१२९ ॥

आगे—उसी भाव को दृष्टान्त दार्ष्टान्त से दृढ़ करते हैं।

कणयमया भावादो, जायंते कुंडला दयो भावा।
अयमयया भावादो, जह जायंते तु कड़यादी ॥१३०॥

अण्णाण मया भावा, अणाणिणो वहु विहावि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया, सव्वे भावा तहा होंति ॥१३१॥

सुवरण के भूषण बने, सुवरण जैसा अंग।
लोहे के भूषण वने, लोहा जैसा रंग ॥१३०॥

मूढ़ मती के उस तरह, मूढ़ भाव उत्पन्न।
अरु ज्ञानी के सर्वही, ज्ञान भाव उत्पन्न ॥१३१॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण के भूषण, सुवर्ण मय होते हैं। और लोहे के भूषण लोहामई होते हैं। उसी तरह अज्ञानी के अज्ञान भाव होते हैं। और ज्ञानी के सर्व ही ज्ञान मय भाव उत्पन्न होते हैं ॥१३०-१३१॥

आगे—अज्ञान भाव के कारणों को दिखाते हैं।

अण्णाणस्स स उदयो, जं जीवाणं अतच्च उवलद्धी।
मिच्छत्तस्स दु उदओ, जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥१३२॥

उदओ असंजमस्स दु, जं जीवाणं हवेइ अविरमणं।
जो दु कलुसोवओगो, जीवाणं सो कसाउदओ॥१३३॥

तं जाण जोग उदयं, जो जीवाणंतु चिट्ठ उच्छाहो।
सोहण मसोहणं वा, कायव्वो विरदि भावो वा ॥१३४॥

एदेसु हेदु भूदे सु, कम्म इय वग्गणा गयं जंतु।
परिणमदे अट्ठविहं, णाणा वरणादि भावेहिं ॥१३५॥

तं खलु जीवणिवद्धं, कम्मइय वग्गणा गयं जइया।
तइया दु होदि हे दू, जीवो परिणाम भावाणं ॥१३६॥

ज्ञान अन्यथा जीव जब, मान उदय अज्ञान।
उदय ज्ञान मिथ्यात जब, जीव अतत्व श्रधान॥१३२॥

प्राणी अविरत भाव जब, उदय असंयम मान।
मलिन भाव प्राणी जबे, उदय कषाय प्रधान॥१३३॥

अरु जीवों के शुभ अशुभ, जो चेष्टा उत्साह।
योग उदय जानो उसे, व्रत अव्रत की राह॥१३४॥

कारण इनका होय जब, कर्म वर्गणा आय।
ज्ञाना वरणी भाव कर, अष्ट भेद परणाय॥१३५॥

निश्चय जीव निबद्ध है, कर्म वर्गणा आय।
उस क्षण जीव निमित्त है, उन भावों को गाय॥१३६॥

अर्थ जो जीवों के अन्यथा स्वरूप का जानना है, वह अज्ञान का उदय है। और जो जीव के अतत्व का श्रद्धान है, वह मिथ्यात्व का उदय है। और जो जीवों के अत्याग भाव है, वह असंयम का उदय है। और जो जीवों के मलिन उपयोग हैं, वह कषाय का उदय है। और जो जीवों के शुभ रूप अथवा अशुभ रूप, मन, वचन, काय की चेष्टा के उत्साह का, करने योग्य अथवा न करने योग्य व्यापार है उसे योग का उदय जानो। इन को हेतु भूत होने पर जो कार्माण वर्गणा आकर प्राप्त हुआ वह ज्ञाना वरणादि भावों कर, आठ प्रकार परिणमता है। वह निश्चय कर जब कार्माण वर्गणा रूप आया हुवा जीव में बंधता है। उस समय उन अज्ञानादिक परिणाम भावों का कारण जीव होता है॥ १३२–१३६ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्य का परिणाम जीव से जुदा है।

जीवस्स दु कम्मेण य, परिणामा हु होंतिरागादी।
एवं जीवो कम्मं, च दोवि रागादिमा वरणा॥ १३७॥

एकस्स दु परिणामा, जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदय हेदू, हि विणा जीवस्स परिणामो॥१३८॥

जीव साथ पुद्गल दरब, कर्म रूप ले मान।
जो निश्चय पुद्गल जिया, कर्म रूप पहिचान ॥१३७॥

इससे पुद्गल द्रव्य का, निमित्त जीव अज्ञान।
जुदा कर्म परिणाम है, रागादिक से जान ॥१३८॥

अर्थ—जो जीव के साथ ही पुद्गल द्रव्य का कर्म रूप परिणाम होता है, ऐसा माना जाय तो, इस तरह पुद्गल और जीव दोनों ही कर्म पने को प्राप्त हुये। इसलिये जीव भाव निमित्त कारण के विना, जुदा ही कर्म का परिणाम है सो एक पुद्गल द्रव्य का ही कर्म भाव कर परिणाम है ॥ १३७–१३८ ॥

आगे—इसी तरह जीव का परिणाम भी पुद्गल द्रव्य से जुदा है।

जइ जीवेण सहच्चिय, पुग्गल दव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पुग्गल जीवा, हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ॥ १३९ ॥

एकस्स दु परिणामो, पुग्गल दव्वस्स कम्मभावेण।
ता जीव भाव हेदू हिं विणा कम्मस्स परिणामो॥१४०॥

जीव भाव रागादि जे, कर्म साथ यदि होय।
तो दोनों रागादि मय, जीव कर्म मिल होय ॥१३९॥

निश्चय इन रागादि से, होय जीव परिणाम।
कर्म उदय कारण बिना, जुदा जीव परिणाम ॥१४०॥

अर्थ—जो ऐसा माना जाय कि जीव के परिणाम, रागादिक हैं, वे निश्चय से कर्म के साथ होते हैं। तो जीव और कर्म ये दोनों ही रागादि परिणाम को प्राप्त हो जांय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि इन रागादिकों से एक जीव का ही परिणाम उत्पन्न होता है। वह कर्म का उदय रूप निमित्त कारण से जुदा, एक जीव का ही परिणाम है॥ १३९-१४० ॥

आगे—आत्मा में कर्म वद्ध है कि अवद्ध ? उत्तर

जीवे कम्मं वद्धं, पुट्ठं चेदि ववहारणय भणिदं ।
शुद्धणयस्स दु जीवे, अवद्ध पुट्ठं हवइ कम्मं ॥ १४१ ॥

जीव वद्ध स्पर्श है, यह अशुद्ध नय पक्ष ।
नहीं वद्ध स्पर्श है, यही शुद्ध नय लक्ष ॥१४१॥

अर्थ—जीव में कर्म वद्ध है अर्थात जीव के प्रदेशों से बंधा हुआ है तथा स्पर्शता है, ऐसा व्यवहार नय का कथन है और जीव में अवद्ध स्पष्ट है अर्थात न बंधता है न स्पर्शता है ऐसा शुद्ध नय का कथन है ॥ १४१ ॥

आगे—ये दोनों पक्ष हैं उन से दूर समय सार है।

कम्मं वद्धमवद्धं, जीवे एवं तु जाण णय पक्खं ।
पक्खा तिक्कंतो पुण, भण्णदि जो सो समय सारो॥१४२॥

जीव कर्म से वद्ध है; या अवद्ध नय जान ।
सर्व पक्ष से रहित ही, समय सार को मान॥१४२॥

अर्थ—जीव में कर्म बंधे हुये हैं अथवा नहीं बंधे हुये हैं, इस प्रकार तो नय पक्ष जानों और जो पक्ष से दूरवर्ती कहा जाता है, वही समय सार है। निर्विकल्प, शुद्ध, आत्म तत्व है ॥ १४२ ॥

आगे—जो पक्ष से दूरवर्ती है उसका क्या स्वरूप है ?

दोण्हवि णयाण भणियं, जाणइ णवरं तु समय पडि वद्धो।
ण दु णय पक्खं गिण्हदि, किंचि वि णय पक्ख परि हीणो॥१४३

जो जाने निज समय को, सो जाने नय दोय।
लेश पक्ष नहि ग्रहण है, पक्ष रहित सो होय॥१४३॥

अर्थ—जो पुरुष अपने शुद्धात्मा से प्रति वद्ध है (आत्मा को जानता है) वह दोनों ही नयों के कथन को केवल जानता ही है। परन्तु नय पक्ष को कुछ भी ग्रहण नहीं करता, क्यों कि वह नय के पक्ष से रहित है ॥ २४३ ॥

आगे—ऐसा नियम है कि पक्ष से दूर वर्ती ही समय सार है।

संम्मद्दं सणणाणं, एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्ख रहिदो, भणिदो जो सो समयसारो॥१४४॥

सर्व पक्ष से रहित है, समय सार सो जान।
सोही पावे नाम सब, जेते दर्शन ज्ञान ॥१४४॥

अर्थ—जो सब नय पक्षों से रहित है वही समयसार है ऐसा कहा है। यह समयसार ही केवल सम्यक् दर्शन, ज्ञान ऐसे नाम को

पाता है। इसी के नाम हैं, वस्तु दो नहीं हैं॥ १४४॥

इति कर्ता कर्म अधिकार॥ २॥

अथ पुण्य पापाधिकारः॥ ३॥

अथ मासिक पाठ में पंचम दिवस—

आगे—शुभाशुभ कर्म के स्वभाव का वर्णन करते हैं।

कम्मम सुहं कुसीलं, सुह कम्मं चावि जाणह सुहसीलं।
किह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवे सेदि॥ १४५॥

अशुभ कर्म अन शील है, और कर्म शुभ शील।
जो कारण संसार का, सो किम होय सुशील॥१४५॥

अर्थ—अशुभ कर्म तो पाप स्वभाव है बुरा है और शुभ कर्म पुण्य स्वभाव है अच्छा है। ऐसा जगत जानता है। परन्तु परमार्थ दृष्टि से कहते हैं कि जो प्राणी को संसार में ही प्रवेश करता है वह कर्म शुभ, अच्छा कैसे हो सकता है, नहीं हो सकता॥ १४५॥

आगे—शुभ अशुभ दोनों कर्मों को बंध के कारण साधते हैं।

चित्र नं० ३

समयसार गाथा १४६ का भाव

सुवर्ण की बेड़ी । लोहे की बेड़ी
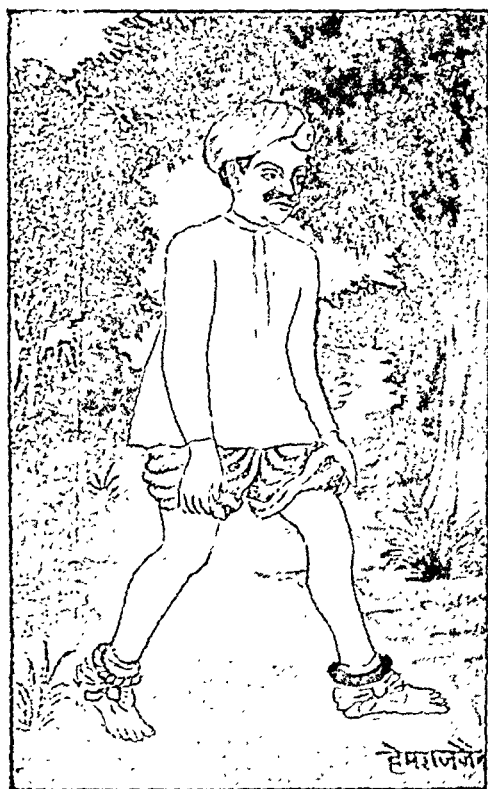
सौवरिणयह्मि णियलं, वंधदि कालायसं च जह पुरिसं।
वंधदि एवं जीवं सुहम, सुहं कदं वा कम्मं ॥१४६॥

बेड़ी बांधे लोह की, त्यों सुवरण की देख।
तैसे बांधे जीव को, कर्म शुभाशुभ पेख ॥१४६॥

अर्थ—जैसे लोहे की बेड़ी पुरुष को बांधती हैं और सुवर्ण की भी बांधती है, उसी तरह शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म, जीव को बांधता ही है ॥ १४६ ॥

आगे—शुभ अशुभ, दोनों ही कर्मों को निषेधते हैं ।

तह्मा दु कुसीले हिय, रायं मा कुणह माव संसग्गं।
साधी णोहि विणासो, कुसील संसग्ग रायेण ॥१४७॥

दोनों कर्म कुशील हैं, तजो राग सम्बन्ध।
नाश करे स्वाधीनता कुशील लावे बन्ध ॥१४७॥

अर्थ—हे मुनिजन हो, इसलिये उन दोनों कुशीलों से प्रीति मत करो, अथवा सम्बन्ध भी मत करो, क्योंकि कुशील के संसर्ग और राग से अपनी स्वाधीनता का विनाश होता है। अपना घात आप ही से होता है ॥ १४७ ॥

आगे—दोनों कर्मों के निषेधक दृष्टान्त कहते हैं।

जहणाम कोवि पुरिसो,कुच्छिय सीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं, संसग्गं राय करणं च ॥ १४८ ॥

एमेव कम्म पयड़ी, सील सहावं हि कुच्छिदं णांउ ।
वज्जंति परिहरंति य, तस्सं सग्गं सहावरया॥ १४९ ॥

जैसे कोई सत पुरुष देख निंद जन रीत ।
उसकी संगति को तजे, और करे नहिं प्रीत ॥१४८॥

उसी तरह शुभ कर्म को, निन्दित खोटा जान ।
उस की संगति को तजे, और करे निज ध्यान॥१४९॥

अर्थ—जैसे कोई पुरुष निन्दित स्वभाव वाले किसी पुरुष को जान कर उसके साथ साथ राग और सङ्गति करना छोड़ देता है। इसी तरह ज्ञानी जीव कर्म प्रकृतियों के शील स्वभाव को निन्दने योग्य खोटा जानकर उससे राग छोड़ देते हैं, कौर उसकी सङ्गति भी छोड़ देते हैं पश्चात अपने स्वभाव में लीन हो जाते हैं। ॥ १४८-१४९ ॥

आगे—दोनों ही कर्म बन्ध के कारण हैं इसलिये निषेध करने योग्य हैं।

रत्तो वंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विराग संपत्तो ।
एसोजिणोव देसो, तह्मा कम्मेमु मा रज्ज ॥ १५० ॥

रागी बांधे कर्म को. छूटें जीव विराग ।
इस कारण जिनवर कहें, तजो कर्म अनुराग॥१५०॥

अर्थ—रागी जीव तो कर्मों को बांधता है और वैराग्य को प्राप्त हुआ जीव कर्म से छूट जाता है। यह जिन भगवान का उपदेश है।

चित्र नं० ४

समयसार गाथा १५१ का भावार्थ

भाव मोक्ष   द्रव्य मोक्ष

अरहन्त

सिद्ध
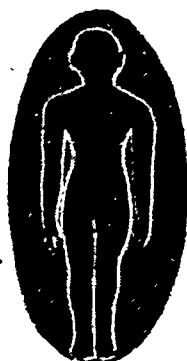
सम्यग्दृष्टि श्रावक
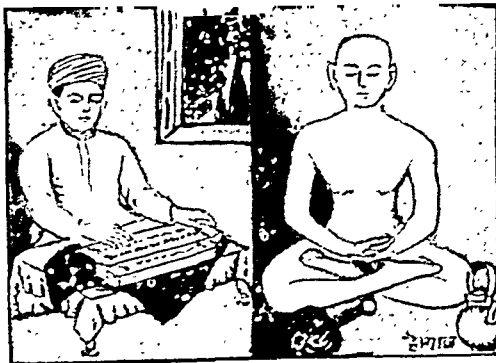
भाव लिङ्ग मुनि

भाव मोक्ष मार्ग   द्रव्य मोक्ष मार्ग

इस कारण भो भव्य जीवो तुम कर्म से प्रीति मत करो, रागी मत होओ ॥ १५० ॥

आगे—ज्ञान को मोक्ष का कारण सिद्ध करते हैं।

परमट्ठो खलु समओ, सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तह्मि ट्ठिदा सहावे, मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥१५१॥

जीव रूप परमार्थ से जिन मुनि शुद्ध सुजान ।
उस स्वभाव ठहरे हुये, मुनि पावें निर्वाण॥१५१॥

अर्थ—निश्चय कर परमार्थ रूप जीव नामा पदार्थ का स्वरूप यह है कि जो शुद्ध है, केवली है, मुनि है, ज्ञानी है ये जिसके नाम हैं उस स्वभाव में तिष्ठे हुये मुनि मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १५१ ॥

आगे—कोई जानेगा कि बाह्य तपश्चरणादि करना ही ज्ञान है, उसको ज्ञान की विधि बतलाते हैं।

परमट्ठम्हि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।
तं सव्वं बाल तवं, बालवदंविंति सव्वण्हू ॥ १५२ ॥

परमारथ जो थिर नहीं, व्रत तप पाले ऐन ।
ते सब हैं अज्ञान तप, कहें जिनेश्वर वैन॥१५२॥

अर्थ—जो ज्ञान स्वरूप आत्मा में तो स्थिर नहीं है और तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है उस सब तप व्रत को सर्वज्ञ देव अज्ञान तप, अज्ञान व्रत कहते हैं ॥ १५२ ॥

आगे--ज्ञान मोक्ष हेतु अज्ञान बंध का हेतु ऐसा नियम है।

वदणिय माणी धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंतां।
परमट्ठ वाहिराजे, णिव्वाणं तेण दिदंति॥ १५३॥

व्रत नियमों को पालते, शील और तप धार।
एक ज्ञान परमार्थ विन, भव दधि होय न पार॥१५३॥

अर्थ—जो कोई व्रत और नियमों को धारण करते हैं, उसी तरह शील और तप को करते हैं परन्तु परमार्थ, भूत, ज्ञान स्वरूप, आत्मा से वाह्य हैं अर्थात उसके स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान जिन के नहीं है वे मोक्ष नहीं पाते॥ १५३॥

आगे—फिर भी पुण्य कर्म का जो पक्षपात करे उसको समझाते हैं।

परमट्ठ वाहिरा जे, ते अण्णाणेण पुण्य मिच्छंति।
संसार गमण हे दुं, विमोक्ख हे उं अजाणंता॥१५४॥

परमारथ से वाह्य जे पुण्य चहे अज्ञान।
ते कारण संसार का, मूढ़ न शिव का ज्ञान॥१५४॥

अर्थ—जो जीव परमार्थ से वाह्य हैं, परमार्थ भूत ज्ञान स्वरूप आत्मा को नहीं अनुभवते। वे जीव अज्ञान से पुण्य अच्छा मान के चाहते हैं। वह पुण्य संसार के गमन को कारण है, तो भी वे जीव मोक्ष का कारण, ज्ञान स्वरूप आत्मा को नहीं जानते। पुण्य को ही मोक्ष का कारण मानते हैं॥ १५४॥

आगे—ऐसे जीवों को परमार्थ स्वरूप मोक्ष का कारण दिखलाते हैं।

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं तेसि मधिगमो णाणं।
रायादी परिहरणं, चरणं एसो दु मोक्ख पहो॥१५५॥

समकित है जीवादि रुचि, उनका अधिगम ज्ञान।
राग हरण चारित्र है, यही मोक्ष पथ मान॥१५५॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थों का श्रद्धान तो सम्यकत्व है और उन जीवादि पदार्थों का अधिगम वह ज्ञान है तथा रागादिक का त्याग वह चारित्र है। यही मोक्ष का मार्ग है॥ १५५ ॥

आगे—परमार्थ रूप मोक्ष के कारण से अन्य जो कर्म उसका निषेध करते हैं।

मोत्तूणं णिच्छयट्ठं, ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठ मस्सिदाण दु, जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

तज निश्चय व्यवहार से, पंडित वर्तें कोय।
किन्तु आत्म थिति मुनिनि के, कर्मों का क्षय होय॥१५६॥

अर्थ—पण्डित जन निश्चय नय के विषय को छोड़ व्यवहार कर प्रवर्तते हैं परन्तु परमार्थ भूत, आत्म स्वरूप के आश्रित, यतीश्वरों के ही कर्म का नाश कहा गया है। व्यवहार में प्रवर्तने वाले का कर्म क्षय नहीं होता॥ १५६ ॥

आगे—मोक्ष का कारण जो दर्शनः ज्ञान, चारित्र उनका आच्छादन साधते हैं।

वत्थस्ससेद भावो, जह णासेदि मलमेल णासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं, तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥१५७॥

वत्थस्स सेद भावो, जहणा सेदी मलमेल णा सत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं, तहणाणं होदिणा यव्वो ॥ १५८ ॥

वत्थस्ससेद भावो, जहणा सेदी मलमेलणा सत्तो।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥ १५६ ॥

जिम कपड़े का श्वेत पन, मैल लगे नश जाय।
उसी तरह मिथ्यात से, समकित गुण दबजाय ॥१५७॥

जिम कपड़े का श्वेत पन, मैल लगे नश जाय।
उसी तरह अज्ञान से, समझ ज्ञान दबजाय ॥१५८॥

जिम कपड़े का श्वेत पन. मैळ लगे नश जाय।
निश्चय जान कषाय से. चारित गुण दबजाय ॥१५६॥

अर्थ—जैसे वस्त्र का सफेद पना मल के मिलने कर लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है। उसी तरह मिथ्यात्व मल से व्याप्त हुआ आत्मा का सम्यकत्व गुण निश्चय कर आच्छादित हो जाता है। ऐसा जानना चाहिये। जैसे वस्त्र का सफेद पन मल के मैल से लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है। उसी तरह अज्ञान मल कर व्याप्त हुआ आत्मा का ज्ञान भाव आच्छादित हो जाता है। ऐसा जानना

चाहिये जैसे कपड़े का सफेद पन मल के मिलने से व्याप्त हुआ नष्ट हो जाता है उसी तरह कषाय मल कर व्याप्त हुआ आत्मा का चारित्र भाव भी आच्छादित हो जाता है। ऐसा जानना चाहिये ॥ १५७-१५९ ॥

आगे—कर्म का स्वयमेव बंध पना सिद्ध करते हैं।

सो सव्व णाण दरिसी, कम्मरएण णियेण वच्छरणो।
संसार समावरणो, ण विजाणदि सव्वदो सव्वं॥१६०॥

सर्व ज्ञानदर्शी यदपि, तदपि कर्म रज लीन।
प्राप्त हुआ संसार में, सर्व वस्तु नहिं चीन ॥१६०॥

अर्थ—वह आत्मा स्वभाव से सबका जानने वाला और देखने वाला है। तो भी अपने कर्म रूपी रज से आच्छादित हुआ संसार को प्राप्त होता हुआ सब तरह से सर्व वस्तु को नहीं जानता॥१६०॥

आगे—मोक्ष के कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के रोकने वाले भावों को दिखलाते हैं।

सम्मत्त पडिणिवद्धं, मिच्छत्तं जिनवरेहिं परिकहियं।
तस्सो दयेण जीवो, मिच्छादिट्ठित्ति णा यव्वो ॥१६१॥

णाणस्स पडिणिवद्धं, अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो, अण्णाणी होदिणा यव्वो ॥१६२॥

चारित्तपडि णिवद्धं, कसायं जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो, अचरित्तो होदिणायव्वो ॥ १६३ ॥

समकित रोधन को कहा, जिनवर ने मिथ्यात ।
जीव उदय मिथ्यात जब,तब मिथ्याती ख्यात॥१६१॥

ज्ञान हरण अज्ञान है, जिनवर वचन प्रमान ।
जीव उदय अज्ञान जब. अज्ञानी तब मान ॥१६२॥

चारित हरण कषाय है, जिनवर कहना मान ।
जीव उदय अविरत जबे, तबे अवरती जान ॥१६३॥

अर्थ—सम्यकत्व को रोकने वाला ॰थ्यात्व कर्म है। ऐसा जिनवर देव ने कहा है। उस मिथ्यात्व के उदय से यह जीव मिथ्या दृष्टि हो जाता है। ऐसा जानना चाहिये। ज्ञान का रोकने वाला अज्ञान है ऐसा जिनवर देव ने कहा है; उसके उदय से यह जीव अज्ञानी होता है ऐसा जानना चाहिये। चारित्र का प्रतिबंधक कपाय है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। उसके उदय से यह जीव अचारित्री हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये। ॥ १६१-१६३ ॥

इति पुण्य पापाधिकार ॥ ३ ॥

———

अथ आश्रवाधिकारः ॥ ४ ॥

आगे--आश्रव का स्वरूप कहते हैं।

मिच्छत्तं अविरमणं, कसाय जोगा य सण्ण सण्णा दु।
वहुविह भेया जीवे, तस्सेव अणण्णपरिणामा॥ १६४॥

णाणा वरणा दीयस्स, ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
ते सिंपि होदि जीवो, य रागदोसादि भावकरो॥१६५॥

अविरत योग कपाय भ्रम, जड़ चेतन द्वयनाम।
विविध भेद जो जीव हैं, ते अनन्य परिणाम ॥१६४॥

ज्ञानावरणी आदि जे, वंध हेतु जड़ कर्म।
उन में कारण जीव के, राग द्वेप मय धर्म ॥१६५॥

अर्थ—मिथ्यात्व, अविरत, कपाय और योग ये चार आश्रव के भेद चेतना के और जड़ पुद्गल के विकार ऐसे दो दो भेद जुदे जुदे हैं। उनमें से चेतन के विकार हैं वे जीव में वहुत भेद लिये हुये हैं, वे उस जीव के ही अभेद रूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हैं वे तो ज्ञानावरण आदि कर्मों के वंधने के कारण हैं और उन मिथ्यात्व आदि भावों को भी राग, द्वेप आदि भावों का करने वाला जीव कारण होता है॥ १६४-१६५ ॥

आगे—ज्ञानी के उन आश्रवों का अभाव दिखलाते हैं ।

णत्थि दु आसव बंधो, सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिवद्धे, जाणदि सो ते अवंधंतो ॥ १६६ ॥

सुधी वंध आश्रव नहीं, आश्रव और निरोध ।
सत्ता पूर्व निवद्ध जे, वन्ध न उनका वोध॥१६६॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि के आश्रव वंध नहीं हैं और आश्रव का निरोध है और जो पहले के वांधे हुए सत्ता में मौजूद हैं, उनको आगामी नहीं वांधता हुआ वह जानता ही है ॥ १६६ ॥

आगे—राग, द्वेष, मोह इनके ही आश्रव पने का नियम करते हैं ।

भावोरागादिजुदो, जीवेण कदो दु वंधगो भणिदो ।
रायादि विप्पमुक्को, अवंधगो जाणगोणवरिं ॥ १६७ ॥

भाव राग युत जीव कृत, वंधक वही वखान ।
राग विना वंधक नहीं, केवल ज्ञायक जान॥१६७॥

अर्थ—जो रागादि कर युक्त भाव जीव कर किया गया हो वही नवीन कर्म का वंध करने वाला कहा गया है और जो रागादिक भावों से रहित है वह वंध करने वाला नहीं है। केवल जानने वाला ही है ॥ १६७ ॥

आगे—रागादिक से नहीं मिला ऐसे ज्ञान मय भाव ज्ञानी के होना दिखलाते हैं ।

पक्के फलह्मिपडिए, जह ण फलं वज्झए पुणोविंटे।
जीवस्स कम्मभावे, पडिएण पुणोदय मुवेई॥ १६८॥

पक्का फल जिमि भूगिरे, गुच्छ वंधे नहि फेर।
झड़े कर्म इस जीव के, उदय न आवें फेर॥१६८॥

अर्थ—जैसे वृक्ष तथा वेलि का फल पक कर गिर जाय, वह फिर गुच्छे से नहीं वंधता उसी तरह जीव में पुद्गल कर्म भाव रूप पक कर झड़ जाय, अर्थात निर्जरा हो गई हो वह कर्म फिर उदय नहीं होता॥ १६८॥

आगे—ज्ञानी के नवीन द्रव्याश्रव का अभाव दिखलाते हैं।

पुढवी पिंडसमाना, पुव्वणिवद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेणदु ते, वद्धा सव्वेपि णा णिस्स॥ १६९॥

पूरब बांधे कर्म सब पृथ्वी पिंड समान।
कर्म शरीर निबद्ध हैं, वुध वांधे अज्ञान॥१६९॥

अर्थ—उस पूर्वोक्त ज्ञानी के पहिले अज्ञान अवस्था में वंधे हुये सभी कर्म जीव के रागादि भावों के हुये विना पृथ्वी के पिण्ड के समान हैं। जैसे मिट्टी आदि अन्य पुद्गल स्कंध हैं, उसी तरह वे भी हैं और वे कार्माण शरीर के साथ वंधे हुये हैं॥ १६९॥

आगे—ज्ञानी निराश्रव किस तरह है। उत्तर

चहुविह अणेय भेयं, वंधंते णाणदंसण गुणेहिं ।
समये समये जह्मा, तेण अवंधोत्ति णाणी दु ॥ १७० ॥

दर्श ज्ञान गुण कारणे, समय समय वे चार ।
विविधि वंध पैदा करें, ज्ञानी वंध न धार॥१७०॥

अर्थ—जिस कारण चार प्रकार के जो पूर्व कहे गए मिथ्यात्व, अविरमण, कपाय, योग, आश्रव हैं। वे दर्शन, ज्ञान गुणों कर समय समय अनेक भेद लिये कर्मों को वांधते हैं। इस कारण ज्ञानी तो अवंध रूप ही है ॥ १७० ॥

आगे—ज्ञान गुण का परिणाम वंध का कारण कैसे है।

जह्मा दु जहण्णादो, णाण गुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तंणाणगुणो, तेण दु सो वंधगो भणिदो ॥ १७१ ॥

जव तक ज्ञान जघन्य है, शक्ति परिणमन कोय ।
अन्य रूप हो परिणवे, वंध इसी से होय॥१७१॥

अर्थ—जिस कारण ज्ञान गुण, फिर भी जघन्य ज्ञान गुण से अन्य पने रूप परिणमता है। इसी कारण वह ज्ञान, गुण, कर्म का वंध करने वाला कहा गया है ॥ १७१ ॥

आगे—जघन्य ज्ञान वंध का कारण है तो ज्ञानी निराश्रव किस तरह ? उत्तर—

दंसणणाण चरित्तं, जं परिणमदे जहराण भावेण।
णाणी तेण दु वज्झदि, पुग्गल कम्मेणविविहेण ॥१७२॥

अल्प भाव से परिणवे, चारित दर्शन ज्ञान।
इससे पुद्गल कर्म वहु, वांधे ज्ञानी मान॥१७२॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र जिस कारण जघन्य भाव कर परिणमते हैं इस कारण से ज्ञानी अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों से वंधता है॥ १७२ ॥

आगे—द्रव्याश्रव की संतति जीने पर ज्ञानी निराश्रव किस तरह। उत्तर

सव्वे पुव्वणि वद्धा, दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स।
उवओगप्पाओगं, वंधंते कम्म भावेण॥ १७३ ॥

संती दु णिरूव भोज्जा, वाला इच्छी जहेव पुरुसस्स।
वंधदिते उव भोज्जे, तरुणी इच्छी जह णरस्स॥ १७४॥

हो दूण णिरव भोज्जा, तह वंधदिजहहवंति उवभोज्जा।
सत्तट्ठविहा भूदा, णाणा वरणादि भावेहिं॥ १७५ ॥

एदेण कारणेण दु, सम्मादिट्ठी अवंधगो होदि।
आसव भावा भावे, णपच्चया वंधगा भणिदा ॥१७६॥

पूरव सर्व निबद्ध जे, ज्ञानी सत्ता मान।
यों उपयोग क्रिया वने; कर्म वंधत्यों जान॥१७३॥

भोग योग्य सत्ता न जिमि, बालातिया नर जान।
भोग योग्य हो वांधते, जिमि तरुणी नर मान॥१७४॥

भोग योग्य बिन तिष्टते, भोग योग्यता धार।
बंध तभी सत आठविधि, कर्म भाव अनुसार॥१७५॥

सम दृष्टी इस कारने, कहा अवंधक जान।
आश्रव भाव अभाव से, आगे वंध न मान॥१७६॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि के सभी पूर्व अज्ञान अवस्था में वांधे मिथ्यात्वादि आश्रव सत्ता रूप मौजूद हैं। वे उपयोग के प्रयोग करने रूप जैसा हो वैसा उसके अनुसार कर्म भाव कर आगामी वंध को प्राप्त होते हैं और वे पूर्व वंधे प्रत्यय सत्ता में ऐसे हैं जैसे इस लोक में पुरुप के वालिका स्त्री भोगने योग्य नहीं है और वे ही जब भोगने योग्य होते हैं तब जीव को वांधते हैं। जैसे वही बाला स्त्री जवान हो जाय तब पुरुप को वांध लेती है और जो पूर्व में वंधे प्रत्यय उदय विना आये भोगने योग्य पने से रहित होकर तिष्ठ रहे हैं, वे फिर आगामी उसी तरह वंधते हैं जैसे ज्ञाना वरणादिक भावों कर सात आठ प्रकार भोगने योग्य हो जावें इस कारण से सम्यग्दृष्टि अवंधक कहा गया है क्यों कि आश्रव भाव जो राग, द्वेप, मोह उनका अभाव होने से मिथ्यात्वादि प्रत्य य सत्ता में ह न पर भी आगामी कर्म वंध के करने वाले नहीं कहे गये हैं॥ १७२-१७६ ॥

आगे—उसी अर्थ का समर्थन करते हैं।

रागोदोषोमोहो, य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
तह्मा आसव भावेण, विणा हेदू ण पच्चयाहोंति॥१७७॥

हेदू चदुवियप्पो, अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी, तेसिं मभावेण वज्झंति॥ १७८॥

राग द्वेष अरु मोह ये, आश्रव बुद्ध न गंध।
इससे आश्रव भाव बिन, सत्ता करे न बंध॥१७७॥

कारण चार बिकल्प जे, अष्ट कर्म को जान।
तिन को रागादिक कहे, तिन बिन बंध न मान १७८॥

अर्थ—राग, द्वेप अरु मोह ये आश्रव सम्यग्दृष्टि के नहीं हैं। इसलिये आश्रव भाव के बिना द्रव्य प्रत्यय कर्म बंध को कारण नहीं है। मिथ्यात्व आदि चार प्रकार का हेतु आठ प्रकार के कर्म के बंध का कारण कहा गया है और उन चार प्रकार के हेतुओं को भी जीव के रागादिक भाव कारण है सो सम्यग्दृष्टि के उन रागादिक भावों का अभाव होने से कर्म बंध नहीं है। ॥ १७७-१७८ ॥

आगे—नवीन रागादिक से फिर बंध का होना दिखाते हैं।

जहपुरिसेणाहारो, गहिओपरिणमइ सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादी, भावे उयरग्गि संजुत्तो॥ १७९॥

तहणाणीस्स दु पुव्वं, जे बद्धा पच्चया बहु वियप्पं।
बज्झंते कम्मंते, ण य परिहीणा उ ते जीवा॥ १८० ॥

पुरुष ग्रहण आहार जिमि, उदर अग्नि के ज़ोर।
सो परिणवे अनेक विधि, मांस रुधिर के ओर॥१७६॥

त्यों बुध के पूरव बंधे, द्रव्याश्रव जो चीन।
वे बांधे बहुविधि करम, जब जिये राग तलीन १८०॥

अर्थ—जैसे पुरुष कर ग्रहण किया गया आहार वह उदराग्नि कर युक्त हुआ, अनेक प्रकार मांस वसा रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है। उसी तरह ज्ञानी के पूर्व बंधे जो द्रव्याश्रव हैं वे बहुत भेदों को लिये कर्मों को बांधते हैं। वे जीव शुद्ध नय से छूट गये हैं अर्थात रागादि अवस्था को प्राप्त हुये हैं॥१७९-१८०॥

इति आश्रव ाधिकार॥ ४॥

अथ संवराधिकारः॥ ६॥

अथ मासिक पाठ में पष्टम दिवस—

आगे—संवर का उत्कृष्ट उपाय जो भेद विज्ञान है, उसकी प्रशंसा करते है।

उवओए उवओगो,कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो।
कोहे कोहो चेव हि, उवओगे णत्थि खलु कोहो॥ १८१ ॥

अट्टवियप्पे, कम्मे णो कम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मि य कम्मं, णो कम्मं चावि णो अत्थि ॥१८२॥

एयं तु अविवरीदं, णाणं जइया उ होदि जीवस्स।
तइया ण किंचि कुव्वदि,भावं उवओग सुद्धप्पा॥१८३॥

उपयोगी उपयोग में, क्रोधादिक मे नाहि।
क्रोध नहीं उपयोग में,क्रोध क्रोध के मांहि॥१८१॥

अष्ट कर्म नो कर्म में, समझ, नहीं उपयोग।
और नहीं उपयोग में; कर्म नो करम योग॥१८२॥

सत्यारथ जिस काल में, ज्ञान जीव के होय।
अन्य भाव नाहि उस समय,शुद्धातम के कोय॥१८३॥

अर्थ—उपयोग में उपयोग है, क्रोध आदिकों में कोई उपयोग नहीं है, और निश्चय कर क्रोध में ही क्रोध है उपयोग में निश्चय कर क्रोध नहीं है आठ प्रकार के ज्ञानावरणादिक कर्मों में तथा शरीरादि नो कर्मों में भी उपयोग नहीं है और उपयोग में कर्म और नो कर्म भी नहीं हैं जिस काल में ऐसा सत्यार्थ ज्ञान जीव के हो जाता है उस काल में केवलउपयोग स्वरूप शुद्धात्मा उपयोग के विना अन्य कुछ भी भाव नहीं करता ॥१८१-१८३॥

आगे--भेद विज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति कैसे ? उत्तर

जह कणय मग्गितवियं,पि कणय हावं ण तं परिच्चचइ।
तह कम्मोंदय तविदो, ण जहदि णाणी उ णाणित्तं ॥१८४॥

एवं जाणइ णाणी, अण्णाणी मुणदि राय मेवादं।
अण्णाणतमोच्छुण्णो, आद सहावं अयाणंतो ॥१८५॥

कनक अग्नि में तप्त जिमि, तजे न कनक स्वभाव
कर्म उदय में उस तरह, ज्ञानी तजे न भाव॥१८४॥

ज्ञानी जाने आतमा, मूढ़ राग पहिचान।
अज्ञानी अज्ञान कर, आपरूप नहि भान ॥१८५॥

अर्थ--जैसे सुवर्ण अग्नि से तप्त हुआ भी अपने सुवर्ण पने को नहीं छोड़ता। उसी तरह ज्ञानी कर्मों से तप्तायमान हुआ भी अपने ज्ञानी पने के स्वभाव को नहीं छोड़ता इस तरह ज्ञानी आत्मा को जानता है। और अज्ञानी राग को ही आत्मा जानता है। क्यों कि वह अज्ञानी, अज्ञान रूप अन्धकार से व्याप्त है। इस लिये आत्मा के स्वभाव को नहीं जानता हुआ प्रवर्तता है। ॥ १८४-१८५ ॥

आगे—शुद्धात्मा की प्राप्ति से संवर कैसे होता है ? उत्तर

सुद्धंतु वियाणंतो, सुद्ध चे वप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतोदु असुद्धं, असुद्ध मेवप्पयं लहइ ॥ १८६ ॥

शुद्ध अनुभवे आप को, वही शुद्ध जिय होय।
शुद्ध न निज को अनुभवे, शुद्ध न होवे सोय॥१८६॥

अर्थ—शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव शुद्ध ही आत्मा को पाता है और अशुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही पाता है॥ १८६ ॥

आगे—वह संवर किस तरह से होता है ? उत्तर

अप्पाणमप्पणा रूं, धिऊण दो पुण्णपाव जोएसु।
दंसणणाणह्मि ठिदो, इच्छाविरओय अण्णह्मि॥१८७॥

जोसव्वसंगमुक्को, झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
णवि कम्मं णोकम्मं, चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८ ॥

अप्पाणं झायंतो, दंसणणाणमओ अणण्णमओ।
लहइ अचिरेणअप्पा, णमेव सो कम्मपविमुक्कं॥१८९॥

जो निज को निज में करे, पुण्य पाप तज योग।
दर्श ज्ञान में थिर रहे, तज इच्छा पर भोग॥१८७॥

सर्व उपाधि से रहित ही, आप आप को ध्याय।
गहे कर्म नो कर्म नहिं, आप रूप रुचि ल्याय॥१८८॥

पर तज ध्यावे आतमा, दर्श ज्ञान मय होय।
अल्प काल में शिव लहे, कर्म रहे नाहि कोय॥१८६॥

अर्थ—जो जीव अपनी आत्मा को अपने कर दो पुन्य, पाप रूप शुभाशुभ योगों से रोक के दर्शन ज्ञान में ठहरा हुआ अन्य वस्तु में इच्छा रहित और सर्व परिग्रह से रहित हुआ आत्मा कर ही आत्मा को ध्याता है तथा कर्म, नो कर्म को नहीं ध्याता और आप चेतना रूप होने से उस स्वरूप एक पने को अनुभवता है, विचारता है। वह जीव दर्शन, ज्ञान मय हुआ अन्य मय नहीं होके आत्मा को ध्याता हुआ थोड़े समय में ही कर्मों कर रहित आत्मा को पाता है ॥ १८७-१८९ ॥

आगे—संवर किस क्रम से होता है। उत्तर

तेसिं हेऊ भणिदा, अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं।
मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरयभावोय जोगोय॥ १९० ॥

हेउअभावेणियमा, जायदिणाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा, जायदि कम्मस्स विणिरोहो॥१९१

कम्मस्सा भावेणय, णो कम्माणंपि जायइ णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य, संसारणिरोहणं होइ ॥ १९२ ॥

पूर्व कहे सर्वज्ञ जे, कारण अध्यवसान।
योग भाव मिथ्यात अरु, अविरत अरु अज्ञान॥१९०॥

ज्ञानी हेतु निरोध से, आश्रव होय निरोध।
आश्रव भाव निरोध से, होवे कर्म निरोध॥१६१॥

कर्म निरोध निरोध अरु, नोकर्मादिक हान।
जब नो कर्म निरोध है, तब संसार न जान॥१६२॥

अर्थ—पूर्व कहे हुये राग, द्वेष, मोह आश्रवों के हेतु सर्वज्ञ देव ने मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरत भाव और योग ये चार अध्यवसान कहे हैं। सो ज्ञानी के इन हेतुओं का अभाव होने से नियम से आश्रव का निरोध होता है और आश्रव भाव के विना कर्म का भी निरोध होता है और कर्म के अभाव से नो कर्मों का भी निरोध होता है तथा नो कर्म का निरोध होने से संसार का निरोध होता है॥ १९०-१९२

इति संवराधिकार ॥ ५ ॥

अथ निर्जराधिकारः ॥ ६ ॥

आगे—निर्जरा का स्वरूप कहते हैं।

उवभोग मिंदियेहिं, दव्वाणं चेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी, ते सव्वंणिज्जरणिमित्तं॥१६३॥

इन्द्रिय से उपभोगता, द्रव्यें सचिताचित्त ।
ते समदृष्टी के बने, सब निर्जरानिमित्त ॥१९३॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जो इन्द्रियों कर चेतन और अचेतन द्रव्यों का उपभोग करता है वह सब ही निर्जरा के लिये होता है ॥१९३॥

आगे—भाव निर्जरा का स्वरूप कहते हैं।

दव्वेउवभुंजंते, णियमा जायदि सुहंच दुक्खं वा ।
तं सुह दुक्ख मुदिण्णं, वेददि अहणिज्जरं जादि ॥१९४॥

पर वस्तू के भोग सब सुख दुख नियमित लाय ।
उदय भये सुख दुख को, भोगि निर्जरा थाय॥१९४॥

अर्थ—पर द्रव्य को भोगने से सुख अथवा दुख नियम से होता है। उदय में आये हुये उस दुख सुख को अनुभवता है; भोगता है, आस्वादता है, फिर आस्वाद देकर द्रव्य कर्म झड़ जाता है । ॥ १९४ ॥

आगे—ज्ञान की सामर्थ्य दिखलाते हैं।

जह विसमुवभुज्जंतो, वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पोग्गल कम्मस्सुदयं, तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी१९५॥

विषभक्षण कर वैद्य जिमि, मरण प्राप्त नहि होय ।
उदय कर्म त्यों भोगता, बंध न ज्ञानी कोय॥१९५॥

चित्र नं० ५

कर्ता भी अनकर्ता

सेठ मुनीम

समयसार गाथा १९७ का भाव
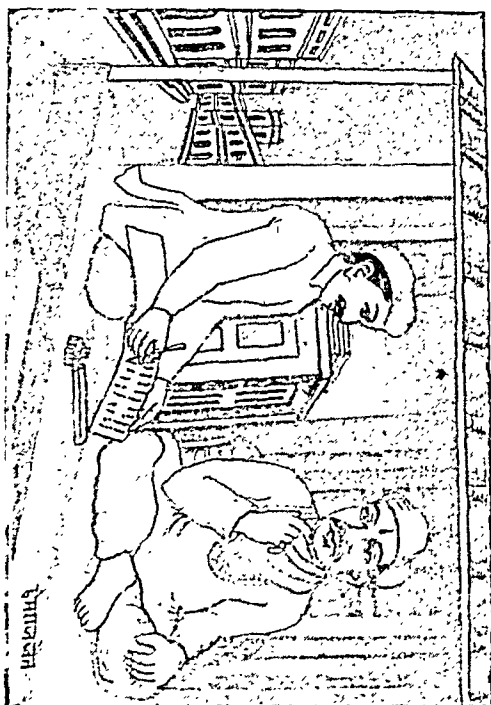
अनकर्ता भी कर्ता

अर्थ—जैसे वैद्य विष को भोगता हुआ भी मरण को प्राप्त नहीं होता। उसी तरह ज्ञानी पुद्गल कर्म के उदय को भोगता है तो भी बंधता नहीं ॥ १९५ ॥

आगे—वैराग्य की सामर्थ्य दिखाते हैं।

जह मज्जं पिवमाणो, अरदि भावेण मज्जदिणपुरिसो।
दव्वुव भोगे अरदो, णाणी विण वज्झदि तहेव ॥१९६॥

बिना प्रीति मदिरा पिये, मत्त पुरुष नहि होय।
द्रव्य भोग त्यों राग बिन, ज्ञानि बंध न कोय॥१९६॥

अर्थ—जैसे कोई पुरुष मदिरा को बिना प्रीत से पीता हुआ, मतवाला नहीं होता उसी तरह ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग में तीव्र राग रहित हुआ कर्मों से नहीं बंधता ॥ १९६ ॥

आगे—उसी अर्थ को दृष्टान्त कर दिखाते हैं।

सेवंतो विण सेवइ, असेव माणोवि सेवगो कोई।
पगरण चेट्टा कस्सवि, णय पायरणोत्ति सो होई ॥१९७॥

सेवत भी अन सेवता, अन सेवत भी सेव।
प्रकरण वश जो सेवता, यासों है अन सेव॥१९७॥

अर्थ—कोई तो विषयों को सेवता हुआ भी नहीं सेवता ऐसा कहा जाता है और कोई नहीं सेवता हुआ भी सेवने वाला कहा जाता है। जैसे किसी पुरुष के किसी कार्य के करने की चेष्टा

तो है अर्थात उस प्रकरण की सब क्रियाओं को करता है तो भी किसी का कराया हुआ करता है। वह कार्य करने वाला स्वामी है, ऐसा नहीं कहा जाता ॥ १९७ ॥

आगे—सम्यग्दृष्टि अपने को और पर को सामान्य से तो ऐसा जानता है।

उदयविभागो विविहो, कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं।
णदु ते मज्झ सहावा, जाणगभावो दु अहमिक्को ।१९८॥

उदय विपाक अनेक विधि, कर्म जिनेश बखान।
मम स्वभाव सो है नहीं, मैं इक ज्ञायक वान१९८॥

अर्थ—कर्मों के उदय का रस जिनेश्वर देव ने अनेक तरह का कहा है। वे कर्म विपाक से हुये भाव, मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो एक ज्ञायक स्वभाव स्वरूप हूँ ॥ १९८ ॥

आगे—सम्यग्दृष्टि अपने को और पर को भेद इस तरह जानता है।

पुग्गल कम्मं रागो, तस्सविवागोदओ हवदि एसो॥
णदुएस मज्झ भावो, जाणग भावोहु अहमिक्को॥१९९।

पुद्गल कर्म सराग है, पाक उदय में आय।
मम स्वभाव सो है नहीं, मैं इक ज्ञायक राय१९९॥

अर्थ—यह राग पुद्गल कर्म है उसके विपाक का उदय है जो मेरे अनुभव में राग रूप, प्रीत रूप, आस्वाद होता है। सो यह मेरा

भाव नहीं है। क्यों कि निश्चय कर में तो एक ज्ञायक भाव स्वरूप हूँ ॥ १९९ ॥

आगे—उसी अर्थ को सूचित करने वाली गाथा कहते हैं।

एवं सम्मदिट्ठी, अप्पाणंमुणदि जाण असहावं।
उदयं कम्मविवागं, य मुअदि तच्चं वियाणंतो॥ २०० ॥

ज्ञानी निज को जानता, मेरा ज्ञायक रूप।
उदयी कर्म विपाक तज, जाने वस्तु स्वरूप २००॥

अर्थ—इस तरह सम्यग्दृष्टि अपने को ज्ञायक स्वभाव वाला जानता है और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानता हुआ कर्म के उदय को कर्म का विपाक जान उसे छोड़ता है ॥ २०० ॥

आगे—राग में और ज्ञान में विरोध दिखाते हैं।

परमाणुमित्तयं पिहु, रागा दीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पा, णयंतु सव्वागमधरोवि।।२०१॥

अप्पाण मयाणंतो, अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी, जीवाजीवे अयाणंतो ॥ २०२ ॥

अंस मात्र निश्चय समझ; रागादिक जहँ ताप।
सर्व शास्त्र पाठी यदपि, तदपि न जाने आप॥२०१॥

नहि जाने जे आपको, पर जाने नहि सोय ।
जीव अजीव न जानता, ज्ञानी किस विधि होय २०२॥

अर्थ—निश्चय करके जिस जीव के रागादिकों का लेश मात्र भी मौजूद है, तो वह जीव सर्व शास्त्रों को पढ़ा हुआ होने पर भी आत्मा को नहीं जानता और आत्मा नहीं जानता हुआ पर को भी नहीं जानता है। वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता ॥ २०१-२०२ ॥

आगे—हे श्री गुरू तुम बताओ वह पद कैसे मिले ? उत्तर

आदह्मि दव्वभावे, अपदेमोत्तूण गिरह तहणियदं ।
थिरमेगमिमं भावं उपलब्भंतं सहावेण ॥ २०३ ॥

जीव तजे जो थिर गहे, अपद द्रव्य अरु भाव ।
थिर हो एक स्वभाव में, ग्रहण योग्य निज भाव २०३॥

अर्थ—आत्मा में पर निमित्त से हुये अपद रूप, द्रव्य, भाव रूप सभी भावों को छोड़ कर निश्चित स्थिर एक स्वभाव कर ही ग्रहण होने योग्य इस प्रत्यक्ष अनुभव गोचर चैतन्य मात्र भाव को हे भव्य। तू जैसा है वैसा ग्रहण कर वही अपना पद है ॥२०३॥

आगे—कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से ज्ञान में भेद हैं।

आभिणिसुदोहि मणकेवलंच तं होदि एक्कमेवपदं ।
सो एसो परमट्ठो, जं लहिदुं णिव्वुदि जादि ॥२०४॥

मति आदिक केवल तलक, सर्व भेद इक ज्ञान।
ऐसा यह परमार्थ है, ताहि पाय निर्वाण ॥२०४॥

अर्थ—मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान ये ज्ञान के भेद हैं। ये ज्ञान पद को ही प्राप्त हैं। सभी एक ज्ञान नाम से कहे जाते हैं। सो यह शुद्ध नय का विषय स्वरूप ज्ञान सामान्य है। इसलिये यही शुद्ध नय है। जिसको पाकर आत्मा मोक्ष पद को प्राप्त होता है॥ २०४ ॥

आगे—उसी अर्थ रूप उपदेश करते हैं।

णाणगुणेण विहीणा, एयं तु पयं बहूवि ण लहंति।
तं गिण्ह णियदमेदं, जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥२०५॥

ज्ञान बिना बहु कष्ट कर, मिले न निर्मल ज्ञान।
सर्व कर्म मुक्ती चहो, धरो ज्ञान को ध्यान॥२०५॥

अर्थ—हे भव्य जो तू कर्म का सब तरफ से मोक्ष करना चाहता है तो उस निश्चित ज्ञान को ग्रहण कर क्यों कि ज्ञान गुण कर रहित बहुत पुरुष बहुत प्रकार के कर्म करते हैं तो भी इस ज्ञान स्वरूप पद को नहीं प्राप्त होते ॥ २०५ ॥

आगे—फिर उसी उपदेश को प्रगट कर कहते हैं।

एदह्मि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि।
एदेण होहि तित्तो, होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥२०६॥

सदा ज्ञान में लीन हो, प्रतिक्षण धर संतोष।
ऐक्य भाव जिस समय हो, खुले ज्ञान का कोष२०६॥

अर्थ—हे भव्य जीव तू इस ज्ञान में सदा काल रुचि से लीन हो और इसी में हमेशा सन्तुष्ट हो, अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है और इसी से तृप्त हो, अन्य कुछ इच्छा नहीं रहे, ऐसा अनुभव कर, ऐसा करने से तेरे उत्तम सुख होगा ॥ २०६ ॥

आगे—ज्ञानी पर को क्यों नहीं ग्रहण करता ? उत्तर

को णाम भणिज्जबुहो, दव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परि,परगहं तु णियदं वियाणंतो२०७॥

कौन सुधी ऐसें कहे, अन्य द्रव्य मम होय ।
आप विभव मम परिग्रह, जाने निश्चय सोय२०७॥

अर्थ—ऐसा कौन ज्ञानी पण्डित है जो यह पर द्रव्य मेरा द्रव्य है ऐसा कहे ज्ञानी तो न कहे, कैसा है ज्ञानी पण्डित अपने आत्मा को ही नियम से अपना परिग्रह जानता हुआ प्रवर्तता है ॥ २०७ ॥

आगे—उसी अर्थ को युक्ति से दृढ़ करते हैं ।

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु तुगच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा, तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८ ॥

अन्य द्रव्य मम परिग्रह, तो मैं भया अजीव ।
मैं ज्ञायक इस कारणें, मेरा पर न सदीव॥२०८॥

अर्थ—जो मेरा पर द्रव्य परिग्रह हो तो मैं भी अजीव पने को प्राप्त हो जाऊं, जिस कारण मैं तो ज्ञाता ही हूँ इस कारण मेरे कुछ भी परिग्रह नहीं है ॥ २०८ ॥

आगे—ज्ञानी के पर द्रव्य के बिगड़ने सुधरने में समता है।

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जह्मा तह्मा गच्छदु, तहवि हुण परिग्गहो मज्झ॥२०९॥

छिदे भिदे या नष्ट हो, जाय कहीं के मांहि।
कछू होय पर द्रव्य का, निश्चय मेरी नांहिं॥२०९॥

अर्थ—ज्ञानी ऐसा विचारता है कि पर द्रव्य चाहे छिद जावे अथवा भिद जाओ अथवा कोई ले जाओ या नष्ट हो जाओ जिस तिस तरह से चलो जाओ, तो भी निश्चय कर मेरा पर द्रव्य परिग्रह नहीं है॥ २०९॥

आगे—ज्ञानी धर्म को नहीं चाहता।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होई॥२१०॥

उपाधि रहित इच्छा रहित, ज्ञानी पुण्य न चाह।
इससे पुण्य न उपाधि है; ज्ञानी ज्ञाता राह॥२१०॥

अर्थ—ज्ञानी परिग्रह से रहित है इसलिये परिग्रह की इच्छा से रहित है। ऐसा कहा है। इसी कारण धर्म को नहीं चाहता, इसलिये धर्म का परिग्रह नहीं है वह ज्ञानी धर्म का ज्ञायक ही है॥२१०॥

आगे—ज्ञानी के अधर्म का भी परिग्रह नहीं है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥२११॥

उपधि रहित इच्छा रहित, ज्ञानी पाप न चाह।
इससे पाप न उपधि है, ज्ञानी ज्ञाता राह ॥२११॥

अर्थ—ज्ञानी इच्छा रहित है इसलिये परिग्रह रहित कहा है। इसी से अधर्म की इच्छा नहीं करता वह ज्ञानी अधर्म का परिग्रह नहीं रखता, इसलिये वह उस अधर्म का ज्ञायक ही है ॥ २११ ॥

आगे—ज्ञानी के आहार का भी परिग्रह नहीं है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१२॥

उपधि रहित इच्छा रहित, ज्ञानी अशन न चाह।
इससे अशन न उपधि है, ज्ञानी ज्ञाता राह॥२१२॥

अर्थ—इच्छा रहित है वह परिग्रह रहित कहा गया है और ज्ञानी भोजन की इच्छा नहीं रखता, इसलिये ज्ञानी के भोजन का परिग्रह नहीं है। इस कारण वह ज्ञानी असन का ज्ञायक ही है ॥ २१२ ॥

आगे—पान का भी परिग्रह ज्ञानी के नहीं है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाणं।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१३॥

उपधि रहित इच्छा रहित, ज्ञानी पान न चाह।
इससे पान न उपधि है, ज्ञानी ज्ञाता राह ॥२१३॥

अर्थ—इच्छा रहित है वह परिग्रह रहित कहा गया है और ज्ञानी जल आदि पीने की इच्छा नहीं रखता इस कारण पान का परिग्रह ज्ञानी के नहीं है। इसलिये वह पान का ज्ञायक ही है ॥२१३॥

आगे—अनेक प्रकार के पर जन्य भाव उनको भी ज्ञानी नहीं चाहता।

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी।
जाणग भावो णियदो णीरालंवो दु सव्वत्थ॥ २१४॥

इस प्रकार सब भाव में, ज्ञानी रखे न चाह।
निश्चय ज्ञायक भाव है, निरालम्ब की राह२१४॥

अर्थ—इस प्रकार को आदि लेकर अनेक प्रकार के सब भावों की ज्ञानी इच्छा नहीं रखता क्यों कि नियम से आप ज्ञायक भाव है। इसलिये सब में निरालम्ब है॥ २१४॥

अथ मासिक पाठ में सप्तम् दिवसः

आगे—ज्ञानी के तीन काल गत परिग्रह नहीं है।

उप्पण्णोदय भोगो विओग बुद्धीए तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी॥२१५॥

उदय भोग उत्पन्न जे, बुद्धि वियोग सदीव।
अगामी वांछा नहीं, करता ज्ञानी जीव॥ २१५॥

अर्थ—जो उत्पन्न हुआ वर्तमान-काल के उदय का भोग उस ज्ञानी के हमेशा वियोग की बुद्धि कर वर्तता है इसलिये परिग्रह नहीं है

और आगामी काल में होने वाले उदय की ज्ञानी वांछा नहीं करता, इसलिये परिग्रह नहीं है ॥ २१५ ॥

आगे—अनागत काल के कर्म के उदय को ज्ञानी क्यों नहीं वांछता ?

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखई कयावि ॥२१६॥

वेदक[1] रहे न वेद्य[2] तक, क्षण क्षण विनसे दोय।
इससे उभय न चाहता, ज्ञानी ज्ञाता होय ॥२१६॥

अर्थ—जो अनुभव करने वाला भाव, अर्थात वेदक भाव, और जो अनुभव करने योग्य भाव, अर्थात वेद्य भाव, इस तरह वेदक, और वेद्य, ये दोनों भाव, आत्मा के होते हैं, सो क्रम से होते हैं एक समय में नहीं होते। ये दोनों ही समय समय में विनस जाते हैं। आत्मा दोनों भावों में नित्य है। इसलिये ज्ञानी आत्मा दोनों भावो का ज्ञायक ही हैं। इन दोनों भावों को ज्ञानी कदाचित भी नहीं चाहता ॥ २१६ ॥

आगे—ऐसे सभी उपयोगों में ज्ञानी के राग नहीं होता।

बंधुव भोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसार देहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ २१७ ॥

निमित बंध उपभोग में, उदयी अध्यवसान।
लोक देह के विषय हैं, राग न ज्ञानी ठान ॥२१७॥

---

१ इच्छक २ इच्छ।

अर्थ--वंध और उपभोग के निमित्त, जो अध्यवसान के उदय हैं, वे संसार के विषय, और देह के विषय हैं, उनमें ज्ञानी के राग नहीं उपजता ॥ २१७ ॥

आगे—ज्ञानी कर्म के मध्य में रहता हुआ भी राग को प्राप्त नहीं होता

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वसु कम्ममज्भगदो ।
णो लिप्पदि रजएणदु कद्दम मज्भे कणयं ॥ २१८ ॥

अरणाणी पुणरत्तो सव्व दव्वेसुकम्म मज्भगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दमज्भे जहा लोहं ॥२१९॥

ज्ञानी रत नहीं राग में, रहे कर्म के बीच ।
कर्म मैल में लिप्त नाहि, जैसे कंचन कीच ॥२१८॥

अज्ञानी रत राग में, रहे कर्म के बीच ।
कर्म मैल में लिप्त है, जैसे लोहा कीच ॥ २१९ ॥

अर्थ—ज्ञानी सव द्रव्यों में, राग का छोड़नेवाला है। वह कर्म के मध्य में, प्राप्त हो रहा है। तो भी कर्म रूपी रज से, नहीं लिप्त होता है। जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना। और अज्ञानी सव द्रव्यों में रागी है। इसलिये कर्म के मध्य को प्राप्त हुआ, कर्म रज कर लिप्त होता है।जैसे कीचड़ में पढ़ा हुआ लोहा, अर्थात् लोहे के काई लग जाती है वैसे ॥ २१८–२१९ ॥

आगे—परनिमित्त से परिणमन को निषेधते हैं।

भुंजतस्सवि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सियेदव्वे ।
संखस्ससेदभावोणविसक्कदि किरणगो काउं ॥२२०॥

तह णाणिस्स दि विविहे, सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥२२१॥

जइया स एव संखो सेद सहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्ह भावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥२२२॥

तह णाणी विहु जइया णाण सहावं तयं पजहिऊण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥२२३॥

भक्षण करे अनेक विधि, सचित अचित नहि प्रश्न।
शंख भाव जब स्वेत है, पलटि केर को कृष्ण २२०॥

ज्ञानी भोग अनेकविधि, सचित अचित मिश्रान ।
ज्ञान भाव ज्ञानी जबे, कौन करे अज्ञान ॥२२१॥

वही शंख जिस काल में, श्वेत पना दे छोड़ ।
कृष्ण भाव परिणत हुआ, स्वतः स्वेत मुख मोड़ २२२॥

ज्ञानी भी लख उस तरह, ज्ञान भाव दे छोड़ ।
मूढ़ भाव परिणत हुआ, स्वतः ज्ञान मुख मोड़ २२३॥

अर्थ—जैसे शंख अनेक प्रकार के, सचित, अचित, मिश्रित द्रव्यों को, भक्षण करता है। तो भी उस शंख का सफेद पना, काला करने को, कोई समर्थ नहीं हो सकता। इसी तरह, अनेक प्रकार के, सचित, अचित, मिश्रित भोगने वाले ज्ञानी के, ज्ञान को भी अज्ञान करने को किसी की सामर्थ नहीं। और जैसे वही शंख,

जिस समय अपने उस श्वेत स्वभाव को छोड़ कर कृष्ण भाव को प्राप्त होता है। तब सफेदपन, को छोड़ देता है। उसी तरह ज्ञानी भी निश्चय कर जब अपने उस ज्ञान स्वभाव को, छोड़ कर अज्ञान कर परिणमता है। उस समय अज्ञान पने को प्राप्त होता है ॥ २२०–२२३ ॥

आगे—लौकिक सुखों का नियम बतलाते हैं !

पुरिसो जह कोविइह वित्तिणिमित्तंतु सेवए रायं।
तो सोवि देदि रायाविविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२४ ॥

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोविदेइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२५ ॥

जह पुण सोच्चिय पुरिसो, वित्तिणिमित्तंणसेवदे रायं।
तो सो ण देइ रायाविविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२६ ॥

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवएण कम्मरयं।
तो सोण देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२७ ॥

यों कोई नर उदर वश, करे नृपति की सेव।
नृपति बहुत उस के लिये, भोग हेतु धन देव२२४॥

उसी तरह से जीव भी, करे कर्म सुख हेत।
कर्म भोग उस के लिये, विविध भांति के देत ॥२२५॥

त्यों कोई नर उदर वश, करे नहीं नृप सेव।
नृपति नहीं उसके लिये, भोग हेतु धन देव२२६॥

उसी तरह ज्ञानी पुरुष, सुख हित कर्म न सेव।
कर्म भोग उस के लिये, रंच मात्र नहि देव२२७॥

अर्थ—जैसे इस लोक में, कोई पुरुष, अजीविका के लिये, राजा को सेवे, तो वह राजा भी उसको सुख के उपजानेवाले अनेक प्रकार के भोगों को देता है। इसी तरह जीव नामा पुरुष, सुख के लिये कर्म रूपी रज को; सेवन करता है। तो वह कर्म भी, उसे सुख के, उप जाने वाले, अनेक प्रकार के भोगों को देता है वही पुरुष, राजा को आजीविका के लिये नहीं सेवे तो राजा भी, उसे सुख उपजाने वाले अनेक प्रकार के, भोगों को नहीं देता। इसी तरह, सम्यग्दृष्टि, विषयों के लिये कर्म रूपी रज को, नहीं सेवता। तो वह कर्म भी, उसे सुख के उपजाने वाले, अनेक प्रकार के भोगों को नहीं देता ॥२२४-२२७॥

आगे—सम्यग्दृष्टि कर्म की वांछा से रहित होने से निशंक है !

सम्मदिट्ठी जीवा णिस्संको होतिणिब्भया तेण।
सत्तभयविप्मुक्का, जह्मा तह्मा दुणिस्संका ॥२२८॥

ज्ञानी जीव निशंक है, इससे निर्भय होय।
सदां सप्त भय मुक्त है, निशंक इससे होय॥२२८॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव, निशंक होते हैं। इस लिये निर्भय हैं। क्यों कि सप्त भय रहित हैं। इस लिये निशंक हैं॥ २२८॥

आगे—निशंकित अंग का स्वरूप कहते हैं।

जो चत्तारिविपाए छिंददि ते कम्म बंध मोह करे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो ॥ २२९ ॥

कर्म बन्ध अरु मोह के, कारण छेदे चार।
वह निशंक ज्ञानी समझ, समदृष्टी निरधार२२९॥

अर्थ—जो आत्मा, कर्म बंध के कारण, मोह के करने वाले ,मिथ्यात्वादि भाव रूप चारों पदों कोः निशंक हुआ काटता है। वह आत्मा निशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये ॥ २२९ ॥

आगे—निःकांक्षित अंग का स्वरूप कहते हैं!

जो दुण करेदि कंखं कम्मफलेसु तहसव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुण यव्वो ॥ २३० ॥

करे न वांछा कर्म फल, सर्व धर्म पर और।
ते अवांछ ज्ञानी समझ, समदृष्टी शिरमौर॥२३०॥

अर्थ—जो आत्माः कर्मों के फलों में, तथा सव धर्मों में, वांछा नहीं करता. वह निः कांक्षित सम्यग्दृष्टि जानना ॥ २३० ॥

आगे—निर्विचिकित्सा गुण का स्वरूप कहते हैं!

जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वे सिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो, सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो ॥२३१॥

सर्व वस्तु के धर्म में, करे न ग्लानि कदापि।
ग्लानि रहत निश्चय समझ,सम्यग्दृष्टी थापि२३१॥

अर्थ— जो जीव सभी वस्तु के धर्मों में ग्लानी नहीं करता वह जीव निर्विचिकित्स गुण वाला सम्यग्दृष्टी जानना॥२३१॥

आगे—अमूढ़दृष्टि अंग का स्वरूप कहते हैं !

जो हवइ असम्मूढो, चेदा सद्दिट्ठि सव्व भावेसु।
सो खलु अमूढ़दिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो ॥ २३२ ॥

सर्व भाव में मूढ़ नहि, है यथार्थ सत ज्ञान।
सो अमूढ़ निश्चय समझ,सम्यग्दृष्टि महान२३२॥

अर्थ—जो जीव सब भावों में मूढ़ नहीं होता; यथार्थ दृष्टि रखता है। वह अमूढ़ दृष्टि जानना ॥ २३२ ॥

आगे—उपगूहण गुण का स्वरूप कहते हैं।

जो सिद्ध भत्ति जुत्तो. उवगूहणगो दु सव्व धम्माणं।
सो उवगूहणकारी. सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो ॥ २३३ ॥

जो सिद्धन की भक्ति युत, गोपे सब पर धर्म।
उपगूहन धारी समझ, सम्यग्दृष्टी पर्म ॥२३३॥

अर्थ—जो जीवः सिद्धों की भक्ति करः सहित हो, और अन्य वस्तु के सब धर्मों का गोपने वाला हो; वह उपगूहन धारी जानना॥२३३॥

आगे—स्थिति करण गुण का स्वरूप कहते हैं।

उम्मंगं गच्छंतं. सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदि करणा जुत्तो, सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो ॥२३४॥

उन्मारग जाते हुये, निज को बोधे कोय।
थिती करण धारी वही, सम्यग्दृष्टी होय॥२३४॥

अर्थ—जो जीव उन्मार्ग में चलते हुए अपने आत्मा को सनमार्ग में स्थापित करता है वह ज्ञानी स्थिति करण गुण सहित जानना ॥ २३४ ॥

आगे—वात्सल्य गुण का स्वरूप कहते हैं।

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह माहूण मोक्ख मग्गम्मि।
सो वच्छल भाव जुदो, सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो॥२३५॥

जो पाले वात्सल्य को, त्रय गुण त्रय मुनि होय।
वही भाव वात्सल्य, युत सम्यग्दृष्टी सोय॥२३५॥

अर्थ—जो जीव मोक्ष मार्ग में स्थित आचार्य, उपाध्याय, साधु पद सहित आत्मा में अथवा सम्यग दर्शन; ज्ञान; चारित्र में वात्सल्य भाव करता है वह वत्सल भाव कर सहित सम्यग्दृष्टि जानना ॥ २३५ ॥

आगे—प्रभावना गुण का स्वरूप कहते हैं।

विज्जारहमारूढो, मणोरह रएसु हणदि जो चेदा।
सो जिण णाण पहावी, सम्मादिट्ठी मुणे यव्वो॥२३६॥

ज्ञान ध्यान आरूढ़ हो, मन वेगों को रोक।
प्रभावना जिन ज्ञान की, कर्त्ता ज्ञानी थोक२३६॥

अर्थ—जो जीव विद्या रूपी रथ में चढ़ कर मन रूपी वेगों का नाश करता है; वह ज्ञानी जिनेश्वर के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टी है ऐसा जानना ॥ २३६ ॥

इति निर्जराधिकारः

अथ बंधाधिकारः ॥ ७ ॥

आगे—बाह्य क्रिया के सद्भाव में भी बन्ध रागादिक से सिद्ध करते हैं।

जहणाम कोवि पुरिसोणेहृ, भत्तो दु रेण बहु लम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ, सत्थेहिं वायामं ॥ २३७ ॥

छिंददि भिंददि य तहा, तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सचित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाण मुवघायं ॥ २३८ ॥

उवघायं कुव्वंतस्स, तस्सणाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु, किं पच्चगो दु रयवंधो ॥२३९॥

जो सो दु णेहभावो, तह्मि णरे तेण तस्स रयवंधो।
णिच्छयदो विरणेयं ण काय चेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २४० ॥

एवं मिच्छादिट्ठीवट्टंतो, वहु विहासु चिट्ठासु।
रायाई उवओगे, कुव्वंतो लिप्पई रयेण ॥ २४१ ॥

तेल चिकन तन लेप के, यथा पुरुष है नाम।
वहुत धूल की जगह में, करे शस्त्र व्यायाम २३७।

ताड़ केलि अरु वांस विड़, छेदत भेदत होय।
द्रव्य सचित अरु अचित को, घाते वहु विधि सोये २३८

समयसार गाथा २३७ से २४६ तक का भाव

चित्र नं० ६

तेल रूपी राग से बंध   तेल रूपी राग बिना निर्बंध

देखो करण अनेक से, करता है उपघात[1] ।
निश्चय चिन्तो क्यों लगी, धूल पुरुष के गात२३९॥

तेल चिकन के कारने, लगी पुरुष तन धूल ।
निश्चय जानो बंध में, तन चेष्ठा नहि मूल२४०॥

मिथ्याती वहु क्रिया में, इस प्रकार से लीन ।
रागादिक उपयोग से, कर्म बन्ध नित कीन२४१॥

अर्थ—जैसे कोई पुरुष अपनी देह में तैलादि लगाकर बहुत धूल वाली जगह में स्थित होकर: हथियारों से व्यायाम करता है। वहां ताड़ वृक्ष, केले का वृक्ष तथा वांस के पिंड इत्यादिको को छेदता है, भेदता है और सचित्त व अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। इस प्रकार नाना प्रकार के करणों कर उपघात करने वाले उस पुरुष के निश्चय से विचारों की रज का बन्ध किस कारण से हुआ है ? जो उस मनुष्य में तेल आदि का सचिक्कण भाव है उससे रज का बंध लगता है, यह निश्चय से जानना। शेष काय की चेष्टाओं से रज का बंध नहीं है। इस प्रकार मिथ्या दृष्टि जीव बहुत प्रकार की चेष्टाओं में वर्तमान है। वह अपने उपयोग में रागादि भावों को करता हुआ कर्म रूप रज कर लिप्त होता है, बंधता है ॥२३७-२४१॥

आगे—वाह्य क्रिया के सद्भाव में रागादिक विना बंध रहित सिद्ध करते हैं।

---

१ विनाश।

जह पुरुसो चेवणरो ण्हे, सव्वह्मि अवणिये संते।
रेण वहु लम्मिठाणे करेंदि, सत्थेहिं वायामं॥ २४२ ॥

छिंददि भिंददि य तहा, तालीतल कयलि वंस पिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ, दव्वाण मुवघायं॥ २४३ ॥

उवघायं कुव्वं तस्स, तस्सणाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु, किंपच्चयगोणरयवंधो॥ २४४ ॥

जो सो दु णेहभावोतह्मि णरे तेण रयवंधो।
णिच्छयदो विण्णेयंण काय चेट्टाहिं सेसाहिं॥ २४५ ॥

एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो, वहुविहेसु जोगेसु।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण॥ २४६ ॥

तेल चिकिन तन धोय के, वही पुरुष है नाम।
बहुत धूल की जगह में, करे शस्त्र व्यायाम२४२॥

ताड़ केलि अरु बांस ब्रिड़, छेदत भेदत होय।
द्रव्य साचित अरु अचित को, घाते बहुविधि सोय२४३

देखो करण अनेकसों, करता है उपघात।
लगी न क्यों निश्चय लखो, धूल पुरुष के गात२४४॥

तेल चिकण कारण बिना,नर तन लगी न धूल।
निश्चय लखि रज बंध मे,तन चेष्टा नहि मूल२४५।

ज्ञानी वर्तें इस तरह, विविधि योग से चीन।
रागादिक उपयोग विन;कर्म बन्ध नहिं कीन२४६॥

अर्थ—जैसे फिर वही मनुष्य तैलादिक सब चिकनी वस्तु को दूर करके बहुत रज वाले स्थान में शस्त्रों का अभ्यास करता है। ताल वृक्ष की जड़ को, केले के वृक्ष को तथा बांस के विड़े को छेदन भेदन करता है और सचित्त, अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। इस प्रकार नाना भांति के करणों कर उपघात करने वाले उस पुरुष के निश्चय से विचारो कि रज का वंध किस कारण से नहीं हुआ ? तो उस मनुष्य के तेलादि का सचिक्कण पणा नहीं था उस से रज का बन्ध नहीं हुआ। यह निश्चय से जानना। शेष काय की चेष्टाओं से रज का बन्ध नहीं होता। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि बहुत प्रकार के योगों में वर्तमान है, वह उपयोग में रागादिक को नहीं करता इसलिये कर्म रज कर लिप्त नहीं होता ॥ २४२–२४६ ॥

आगे—मरण के अध्यवसान को प्रगट रीति से कहते हैं।

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहि।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु, विवरीदो॥ २४७॥

परहिंसा मैं कर सकूं मुझ हिंसा पर मूल।
ते मोही अज्ञान हैं, ज्ञानी है प्रति कूल ॥२४७॥

अर्थ—जो पुरुष ऐसा मानता है कि मैं पर जीव को मारता हूँ और पर जीवों कर मैं मारा जाता हूँ (पर मुझे मारते हैं) वह पुरुष मोही है, अज्ञानी है और इससे विपरीत ज्ञानी है ॥ २४७ ॥

आगे—यह अध्यवसान अज्ञान क्यों है ? उत्तर

आउक्खयेण मरणं, जीवाणं जिनवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते, मरणं कयं तेसिं ॥ २४८ ॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिनवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरंति तुहं, कह ते मरणं कयं तेहिं ॥ २४९ ॥

आयू क्षय प्राणी मरे; हरे न आयू कोय ।
मैं मारूँ पर जीव को, जिनवर कहें न होय ॥ २४८ ॥

आयू क्षय प्राणी मरे, हरे न आयू कोय ।
मार सकें पर भी मुझे, जिनवर कहें न होय २४९ ॥

अर्थ—जीवों का मरण आयु कर्म के क्षय से होता है ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है । सो हे भाई ! तू मानता है कि मैं पर जीवों को मारता हूँ, यह अज्ञान है । क्योंकि उन पर जीवों का आयु कर्म तू नहीं हरता तो तूने उन का मरण कैसे किया ? और जीवों का मरण आयु कर्म के क्षय से होता है ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है । परन्तु हे भाई ; तू ऐसा मानता है कि मैं पर जीवों कर मारा जाता हूँ । यह मानना तेरा अज्ञान है क्यों कि पर जीव तेरा आयु कर्म नहीं हरते । इसलिये उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ॥ २४८–२४९ ॥

आगे—जीवने का अध्यवसान को प्रगट रीति से कहते हैं।

जो मरणदि जीवेमि य जी,विज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सोमूढ़ोअरणाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५० ॥

जीवन पर का रख सकूँ, मुझ जीवन पर मूल।
ते मोही अज्ञान हैं, ज्ञानी है प्रतिकूल ॥२५०॥

अर्थ—जो जीव ऐसा मानता है कि मैं पर जीवों को जीवित करता हूँ और पर जीव भी मुझे जीवित करते हैं वह मूढ़ है, अज्ञानी है परन्तु ज्ञानी इस से विपरीत है, ऐसा नहीं मानता इससे उलटा मानता है ॥ २५० ॥

आगे—ज़िवाने का अध्यवसान अज्ञान क्यों है ? उत्तर

आऊदयेण जीवदि, जीवो एवं भणंतिसव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं,कहं तए जीवियं कयं तेसिं॥२५१॥

आऊदयेण जीवदि, जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं चण दिंति तुहं, कहं,णुते जीवियं कयं तेसिं२५२॥

आयु उदय प्राणी जियें, हरे न आयू कोय।
जिला सकूँ पर जीव को,जिनवर कहें न होय२५१।

आयु उदय प्राणी जियें, देय न आयू कोय।
जिला सकें पर भी मुझे,जिनवर कहें न होय२५२।

अर्थ—जीव अपनी आयु के उदय से जीता है। ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं। सो हे भाई तू पर जीव को आयु कर्म नहीं देता। तो तूने उन जीवों को जीवित कैसे किया? और जीव अपने आयु कर्म के उदय से जीता है, ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं। सो हे भाई पर जीव तुझे आयु कर्म नहीं देता। तो उन्होंने तेरा जीवन कैसे किया? ॥ २५१-२५२ ॥

आगे—दुख सुख के अध्यवसान को प्रगट रीति से कहते हैं।

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो॥ २५३ ॥

पर को सुख दुख मैं करूं, गावे ऐसे गीत।
ते मोही अज्ञान है, ज्ञानी है विपरीत ॥ २५३ ॥

अर्थ—जो जीव ऐसा मानता है कि मैं अपने कर पर जीवों को दुःखी और सुखी करता हूँ। वह जीव मोही है अज्ञानी है। क्यों कि ज्ञानी ऐसा नहीं मानता है॥ २५३ ॥

आगे—यह अध्यवसान अज्ञान कैसे हैं? उत्तर

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिद, सुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं चण देसि तुमं, दुक्खिद सुहिदा कहं कया ते॥२५४॥

कम्मोदयेण जीवा, दुक्खिद सुहिदा हवंदि जदि सव्वे।
कम्मं चण दिंति तुहं, कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं॥२५५॥

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं, कहतं सुहिदो कदो तेहिं ॥२५६॥

कर्म उदय सुख दुख मिले, कर्म देय नहि कोय ।
सुख दुख मैं पर को करूं, जिनवर कहें न होय २५४।

कर्म उदय सुख दुख मिले, कर्म दये नहि कोय ।
पर मुझ को दुख देसकें, जिनवर कहें न होय२५५॥

कर्म उदय सुख दुख मिले, कर्म देय नहि कोय ।
पर मुझ को सुख देसकें. जिनवर कहें न होय२५६॥

अर्थ—सब जीव अपने कर्म के उदय से दुखी सुखी होते हैं । जो ऐसा है तो हे भाई तू उन जीवों को कर्म नहीं देता फिर तूने वे दुःखी सुखी कैसे किये ? सब जीव अपने कर्म के उदय से दुःखी सुखी होते हैं जो ऐसा है तो हे भाई वे जीव तुझ को कर्म तो नहीं देते फिर उन्होंने तुझे दुःखी कैसे किया तथा सभी जीव अपने कर्म के उदय से दुःखी सुखी होते हैं सो हे भाई ऐसा है तो वे जीव कर्मों को तुझे नहीं दे सकते तो उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया । ॥ २५४—२५६ ॥

आगे—उसी आशय को और स्पष्ट करके मिथ्या ठहराते हैं ।

जो मरइ जो य दुहिदो, जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो, चेदि ण हु मिच्छा ॥२५७॥

जो ण मरदि ण य दुहिदो, सोवियकम्मोदयेण चेवखलु।
तह्मा ण मरिदो णो, दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥२५८॥

जीव मरे या दुख सहे, कर्म उदय से जान।
मैं मारा दुखित किया, यह विकलप अज्ञान २५७॥

मरे न अथवा दुक्ख हो, कर्म उदय से जान।
मारा गया न दुख मिला, यह विकलप अज्ञान २५८

अर्थ—जो मरता है और जो दुखी होता है वह सब कर्म के उदय कर होता है इसलिये तेरा "मैं मारा मैं दुःखी किया गया" ऐसा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है और जो नहीं मरता दुःखी नहीं होता वह भी कर्म के उदय कर ही होता है इसलिये तेरा यह अभिप्राय कि "मैं मारा नहीं गया न दुःखी किया गया" ऐसा भी क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है ॥ २५७-२५८ ॥

आगे—अध्यवसाय बंध का कारण है ऐसा कहते हैं।

एसा दु जा मई दे दुःखिद, सुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥ २५६ ॥

मैं पर को सुख दुख करूं, जीव मानता कोय।
ते मोही बांधे अवस, कर्म शुभा शुभ दोय २५६॥

अर्थ—हे आत्मन ! तेरी जो यह बुद्धि है कि मैं जीवों को सुखी दुःखी करता हूँ यह तेरी मूढ़ बुद्धि मोह स्वरूप होकर शुभाशुभ कर्म

को बांधती है ॥ २५९ ॥

आगे—अध्यवसान में पुण्य पाप रूप बंध के भेद दिखाते हैं।

दुक्खिद सुहदे सत्ते, करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पाव बंधगं वा, पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६० ॥

मारिमि जीवावेमि य सत्ते, जं एवमज्झ वसिदं ते ।
ते पावबंधगं वा, पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६१ ॥

मैं सब को सुख दुख करूं, ऐसा जो सरधान ।
पाप पुण्य बन्धक तने, भाव सर्व ही मान॥२६०॥

मारूँ या जिन्दा करूं, ऐसा जो सरधान ।
पाप पुण्य बन्धक तने, भाव सर्व ही मान॥२६१॥

अर्थ—हे आत्मन ! जो तेरा यह अभिप्राय है कि में जीवों को दुःखी सुखी करता हूँ। यह ही अभिप्राय पाप का बंधक है तथा पुण्य का बंधक है अथवा मैं जीवों को मारता हूँ अथवा जिवाता हूँ यह अभिप्राय पाप बंधक है अथवा पुण्य बंधक है ॥२६०-२६१॥

आगे—जीवों को मारो अथवा मत मारो हिंसा व बंध कारण अध्यवसान है।

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंध समासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२ ॥

जीव मरो या मत मरो, वन्ध भाव सों होय।
मुख्य वन्ध कारण कहो, निश्चय नय को जोय २६२।

अर्थ—निश्चय नय का यह पक्ष है कि जीवों को मारो या मत मारो कर्म बंध जीवों के अध्यवसान से होता है यह ही बंध का संक्षेप है ॥ २६२ ॥

आगे—अन्य कार्यों में भी पुण्य पाप के बंध का कारण अध्यवसान दिखाते हैं।

एवमलिये अदत्ते अबंभचेरे, परिग्गहे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं, तेण दु वज्झए पावं ॥ २६३ ॥

तहवि य सच्चे दत्ते, वंभे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं, तेण दु वज्झए पुण्णं ॥ २६४ ॥

चोरी झूंट कुशील में, और परिग्रह जान।
इन के अध्यवसान में, पाप वंध पहिचान॥२६३॥

सत्य शील अनतश्करी, विना परिग्रह मान।
इन के अध्यवसान में, पुण्य वंध पहिचान॥२६४॥

अर्थ—पहिले हिंसा का अध्यवसान कहा था उसी तरह असत्य: चोरी आदि से विना दिया पर धन लेना, स्त्री का संसग, धन धान्यादिक इनमें जो अध्यवसान किया जाता है उस से तो पाप वंध होता है और उसी तरह सत्य में: दिये हुये लेने में: ब्रह्मचर्य में, परिग्रह के त्याग में जो अध्यवसान किया जाता

है उससे पुण्य का वंध होता है ॥ २६३-२६४ ॥

आगे—वंध का कारण एक अध्यवसान ही है ।

वत्थुं पडुच्च जं पुण, अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं ।
ण य वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण वंधोत्थि॥२६५॥

वाह्य वस्तु अवलंब से, होवे अध्यवसान ।
नहीं वस्तु से बंध है, बन्धक अध्यवसान॥२६५॥

अर्थ—जीवों के जो अध्यवसान है वह वस्तु को अवलम्वन करके होता है पर वस्तु से वंध नहीं है अध्यवसान कर ही बंध है ॥२६५॥

आगे—अध्यवसान का किया कुछ होता नहीं इसलिये मिथ्या है ।

दुक्खिद सुहिदे जीवे, करेमि वंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढ़मई, णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥ २६६ ॥

मैं पर को सुख दुख करूं, बांध छोड़ के गात ।
ते निरथक मम कार है, निश्चय सत्य न बात२६६।

अर्थ--हे भाई ! जो तेरी ऐसी मूढ़ बुद्धि है कि मैं जीवो को दुःखी सुखी करता हूँ वांधता हूँ और छोड़ता हूँ वह मोह स्वरूप बुद्धि निरर्थक है क्यों कि जिसका विषय सत्यार्थ नहीं है वह निश्चय कर मिथ्या है ॥ २६६ ॥

आगे—अध्यवसान का किया कैसे नहीं होता ? उत्तर ।

अज्झवसाणनिमित्तं, जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्ख मग्गे, ठिदा य ता किं करोसि तुमं॥२६७॥

अध्यवसान निमित्त से, कर्म बांधते भूत।
मोक्ष मार्ग में छूटते, तू क्या करता कूत॥२६७॥

अर्थ—हे भाई जीव अध्यवसान के निमित्त से कर्म से बंधते हैं और मोक्ष मार्ग में तिष्टते हुये कर्म से छूटते हैं ऐसा जब है तब तू क्या करता है? तेरा तो बांधने छोड़ने का अभिप्राय निरर्थक ही ठहरा॥ २६७॥

आगे—अध्यवसान के और भी भेदों को दिखाते हैं।

सव्वे करेइ जीवो, अज्झव साणेण तिरियणेरयिये।
देव मणुए य सव्वे, पुण्णं पावं, च णेय विहं ॥ २६८ ॥

धम्माधम्मं च तहा, जीवाजीवे अलोयलोयं च।
सव्वे करेइ जीवो, अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९ ॥

प्राणी अध्यवसान से, नर नारक खग देव।
कर्ता और अनेक विधि, पाप पुण्य की सेव२६८

धर्माधर्म अजीव जिय, और अलोकालोक।
सब को अध्यवसान से, करता अपना थोक२६९।

अर्थ— जीव अध्यवसान कर अपने सबतिर्यञ्च नारक देव मनुष्य सभी परयायोंको अपनी करता है और अनेक प्रकार के पाप पुण्यों

को अपने करता है और धर्म अधर्म जीव अजीव और लोक अलोक इन सभी को जीव अध्यवसान कर अपने स्वरूप करता है ॥ २६८— २६९ ॥

आगे —यह अध्यवसान जिन के नहीं है वे मुनि कर्म से लिप्त नहीं होते।

एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण, व कम्मेण, मुणी ण लिप्पंति ॥२७०॥

जहां न अध्यवसान हैं, पूर्व कहे अरु और।
ते न शुभाशुभ कर्म से, लिपें श्रमण शिर मौर २७०

अर्थ— ये पूर्वोक्त अध्यवसान तथा इस तरह के अन्य भी अध्यवसान जिन के नहीं हैं वेमुनिराज शुभाशुभ कर्म को नहीं बांधते ॥ २७० ॥

आगे अध्यवसान कई वार कहा वह क्या है ?

बुद्धी ववसाओवि, य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं।
एक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तं भावो य परिणामो ॥ २७१ ॥

बुद्धि भाव व्यवसाय अरु चित्त और परिणाम।
एकार्थिक विज्ञान माति, अध्यवसानक नाम२७१॥

अर्थ—बुद्धि व्यवसाय अध्यवसान, विज्ञान, चित्त, मति, भाव और परिणाम ये सव एकार्थ ही हैं। केवल नाम भेद है। इनका अर्थ जुदा नहीं ॥ २७१ ॥

आगे—व्यवहार को निश्चय से निषेधते है।

१-अज्ञान

एवं ववहारणओ, पड़िसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।
णिच्छय ण यासिदा, पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं२७२

सर्व रीति व्यवहार की, निश्चय करे निषेध।
जो मुनि निश्चय लीन हैं,शिव पावें विनखेद २७२।

अर्थ—पूर्व कथित सब रीति से अध्यवसान रूप व्यवहार नय है। वह निश्चय से निषेध रूप जानना। जो मुनिराज निश्चय के आश्रित हैं वे मोक्ष को पाते हैं॥ २७२॥

आगे—निषेधने योग्य व्यवहार को दिखवाते हैं।

वदसमिदी गुत्तीओ, सील तवं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
कुव्वंतोवि अभव्वो, अण्णाणी मिच्छ दिट्ठी दु॥२७३॥

समिति गुप्ति व्रत शील तप, पालें वचन प्रमाण।
जिनवर कहें अभव्य सो, मिथ्याती अज्ञान२७३।

अर्थ—व्रत समिति: गुप्ति, शील, तप जिनेश्वर देव ने कहे हैं उनको कर्ता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टी ही है॥ २७३॥

आगे—अभव्य के ग्यारह अंग तक का ज्ञान होता है उसे अज्ञानी क्यों कहा? उत्तर।

मोक्खं असद्दहंतो, अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं, असद्दहंतस्स णाणं तु॥ २७४॥

मोक्ष न रुचे अभव्य जिय एकादश श्रुत ज्ञान ।
पाठ न करता लाभ कुछ, जो बिन श्रद्धा ज्ञान २७४।

अर्थ--वह अभव्यजीव शास्त्र का पाठ भी पढ़ता है परन्तु मोक्ष तत्त्व का श्रद्धा नहीं करता अतः ज्ञान का श्रद्धान नहीं कर ने वाले उस अभव्य का शास्त्र पढ़ना लाभ नही करता ॥ २७४ ॥

आगे--उस अभव्य के धर्म का श्रद्धान तो होता है फिर उसका कैसे निषेध करते हो ? उत्तर ।

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तहपुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥२७५॥

वह प्रतीति श्रद्धा करे, गहे और रुचिठान ।
धर्म भोग के हेतु है, नहीं हेतु निर्वाण ॥२७५॥

अर्थ-- नहीं अभव्य जीव धर्म का श्रद्धान करता है प्रतीति करता है रूचि करता है और स्पर्श करता है । वह संसारभोग के निमित्त जो धर्म है उसी को श्रद्धान आदि करता है परन्तु कर्म क्षय होने का निमित्त रूप धर्म का श्रद्धान आदि नहीं करता ॥ २७५ ॥

आगे--निश्चय और व्यव हार के अन्तर को स्पष्ट करते हैं

आयारादी णाणं जीवादी, दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकंच तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥ २७६ ॥

आदा खु मज्झणाणं, आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे, संवरो जोगो ॥ २७७ ॥

शब्द शास्त्र यह ज्ञान है, दर्शन लखि जीवादि ।
जीव दया चारित्र है, यह व्यवहार अनादि २७६॥

आप आतमा ज्ञान है, दर्श चरन है आप ।
पच्चखान निज आतमा, अन्त ध्यान है आप २७७

अर्थ—अचाराङ्ग आदि शास्त्र तो ज्ञान है तथा जीवादि तत्त्व हैं, वे दर्शन और चारित्र हैं, आत्माही प्रत्याख्यान है, मेरा आत्मा ही समाधि ध्यान है, ऐसा निश्चय नय कहता है ॥ २७६-२७७ ॥

इति मासिक पाठ में अष्टम दिवस–गाथा नं. २४७ से २७७ तक।

अथ मासिक पाठ में नवम दिवस–

आगे—बन्ध में अध्यवसान का कारण जो पर द्रव्य है उस को दूषण देते हैं

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु, सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥ २७८ ॥

एवं णाणी सुद्धो ण, सयं परिणमई रायमाईहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं दु, सो रागादीहिं दोसेहिं ॥२७९॥

फटक मणी जिमि शुक्ल है, स्वयं न पलटे रंग ।
अन्य रंग रक्तादि कर होय ललाई अंग ॥२७८॥

ज्ञानी शुद्ध उसी तरह, स्वयं न पलटे रूप ।
अन्य भाव रागादि कर, होता राग स्वरूप ।२७९॥

अर्थ—जैसे स्फटिक मणि आप शुद्ध है ललामी आदि रंग स्वरूप आप तो नहीं परिणमती परन्तु वह दुसरे लाल काले आदि द्रव्यों से ललाई आदि रंग स्वरूप दिखाई पड़ती है। उसी तरह ज्ञानी आप शुद्ध है। वह रागादि भावों से आप तो नहीं परिणमता परन्तु अन्य रागादि दोषों से रागादि रुप किया जाता हैं। ॥ २७८-२७९ ॥

आगे--ज्ञानी स्वयं राग भाव नहीं करता इसी लिये अकर्ता है।

ण य रायदोममोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं॥२८०॥

स्वयं न भाव कषाय के; राग द्वेष अरु मोह।
इससे ज्ञानी के विषें कर्ता पन का द्रोह॥२८०॥

अर्थ— ज्ञानी आपही अपने राग द्वेष मोह तथा कषाय भाव नहीं करता। इस कारण वह ज्ञानी उन भावों का करने वाला नहीं है॥२८० ॥

आगे—अज्ञानी राग भाव को स्वयं करता है

रायह्मि य दोसह्मि य कसाय कम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो, रायाई बंधदि पुणोवि ॥ २८१ ॥

राग द्वेष अरु मोह से, होवें जैसे भाव।
उन में रत हो बांधता, पुनि पुनि राग स्वभाव२८१।

अर्थ—राग द्वेष और कषाय कर्म इन के होने पर जो भाव होते हैं, उन

कर परिणमता हुआ अज्ञानी रागादिकों को बार बार बांधता है ॥ २८१ ॥

आगे—उसी अर्थ को और समर्थन करते हैं।

रायह्मि य दोसह्मि य कासाय कम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदे चेदा ॥ २८२ ॥

राग द्वेष अरु मोह से, होवें जैसे भाव ।
उन में रत हो बांधता, प्राणी राग स्वभाव२८२॥

अर्थ—राग द्वेष और कषाय कर्मों के होने पर जो भाव होते हैं उन कर परिणमता हुआ आत्मा रागादिकों को बांधता है ॥ २८२ ॥

आगे—ज्ञानी को अकर्ता और अज्ञानी को करता कारण सहित दिखाते हैं।

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८३॥

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे, भावे तहा अपच्चखाणं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८४॥

जावं अपडिक्कमणं अपच्चखाणं च दव्व भावाणं ।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होइ णायव्वो ॥ २८५ ॥

दो विधि अप्रति क्रमण लखि,तथा अप्रत्याख्यान।
ये न जहां तहँ देशना,जीव अकर्ता जान २८३॥

अप्रतिक्रमण द्रव भाव द्वय, तथा अप्रत्याख्यान।
ये न जहां तहँ देशना, जीव अकर्ता जान ॥२८४॥

जब तक अप्रातिक्रमण द्वय, अपचखान द्रव भाव।
यह कर्ता है आतमा, तबतक कर्ता राव ॥२८५॥

अर्थ—अप्रतिक्रमण दो प्रकार का जानना उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो तरह का जानना। ये जहां नहीं होते वहां आत्मा अकारक कहा है। अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है-एक तो द्रव्य में, दूसरा भाव में। उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो तरह का है-एक द्रव्य में; एक भाव में। ये जहां नहीं हैं तहां आत्मा अकारक कहा है। जब तक यह आत्मा द्रव्य और भाव में अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करता है तब तक वह आत्मा कर्ता होता है; ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है ॥ २८३–२८५ ॥

आगे—द्रव्य और भाव के निमित्त नैमित्तिक भाव का उदाहरण कहते हैं।

आधा कम्याई आ पुद्गल दव्वस्स जे इमे दोसा।
कहते कुव्वइ णाणी पर दव्व गुणा उ जे णिच्चं ॥२८६॥

आधा कम्मं उद्देसियं च पुद्गल मयं इमं दव्वं।
कहतं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥ २८७ ॥

अधःकर्म आदिक सरब, पुद्गल द्रव्यी दोष।
इनको ज्ञानी क्यों करे, ये पुद्गल गुण कोष२८६।

कर परिणमता हुआ अज्ञानी रागादिकों को वार बार बांधता है ॥ २८१ ॥

आगे—उसी अर्थ को और समर्थन करते हैं।

रायह्मि य दोसह्मि य कासाय कम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदे चेदा ॥ २८२ ॥

राग द्वेष अरु मोह से, होवें जैसे भाव ।
उन में रत हो बांधता, प्राणी राग स्वभाव२८२॥

अर्थ—राग द्वेष और कषाय कर्मों के होने पर जो भाव होते हैं उन कर परिणमता हुआ आत्मा रागादिकों को बांधता है ॥ २८२ ॥

आगे—ज्ञानी को अकर्ता और अज्ञानी को करता कारण सहित दिखाते हैं।

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८३॥

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे, भावे तहा अपच्चखाणं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८४॥

जावं अपडिक्कमणं अपच्चखाणं च दव्व भावाणं ।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होइ णायव्वो ॥ २८५ ॥

दो विधि अप्रति क्रमण लखि,तथा अप्रत्याख्यान।
ये न जहां तहँ देशना,जीव अकर्ता जान २८३॥

अप्रतिक्रमण द्रव भाव द्वय, तथा अप्रत्याख्यान।
ये न जहां तहँ देशना, जीव अकर्ता जान ॥२८४॥

जब तक अप्रातिक्रमण द्वय, अपचखान द्रव भाव।
यह कर्ता है आतमा, तबतक कर्ता राव ॥२८५॥

अर्थ—अप्रतिक्रमण दो प्रकार का जानना उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो तरह का जानना। ये जहां नहीं होते वहां आत्मा अकारक कहा है। अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है—एक तो द्रव्य में, दूसरा भाव में। उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो तरह का है—एक द्रव्य में; एक भाव में। ये जहां नहीं हैं तहां आत्मा अकारक कहा है। जब तक यह आत्मा द्रव्य और भाव में अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करता है तब तक वह आत्मा कर्ता होता है; ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है ॥ २८३—२८५ ॥

आगे—द्रव्य और भाव के निमित्त नैमित्तिक भाव का उदाहरण कहते हैं।

आधा कम्याई आ पुद्गल दव्वस्स जे इमे दोसा।
कहते कुव्वइ णाणी पर दव्व गुण। उ जे णिच्चं ॥२८६॥

आधा कम्मं उद्देसियं च पुद्गल मयं इमं दव्वं।
कहतं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं ॥ २८७ ॥

अधःकर्म आदिक सरब, पुद्गल द्रव्यी दोष।
इनको ज्ञानी क्यों करे, ये पुद्गल गुण कोष२८६।

अधःकरम उद्देशिका, हैं पुद्गल मय दर्व।
सो मम कृत किमि हो सकें, नित्य अचेतन सर्व२८७

अर्थ—अधः कर्म को आदि लेकर जो ये पुद्गल द्रव्य के दोष हैं उनको ज्ञानी कैसे करे ? क्योंकि यह सदा ही पुद्गल द्रव्य के गुण हैं और यह अधः कर्म व उद्देशिक हैं वे पुद्गल मय द्रव्य हे उनको यह ज्ञानी जानता है कि जो सदा अचेतन कहे हैं, वे मेरे किये कैसे हो सकते हैं ॥ २८६–२८७ ॥

आगे—आगे वंध का स्वरूप ही जान जो संतुष्ट हैं वे मोक्ष नहीं पाते ऐसा कहते हैं।

इति वंधाधिकारः ॥ ७ ॥

अथ मोक्षाधिकारः ॥ ८ ॥

जहणाम कोवि पुरिसो वंधणयह्मिचिरकालपडिवद्धो।
तिव्वंमंदसहावं कालंच, वियाणए तस्स ॥ २८८ ॥

जइणवि कुणइच्छेदं ण मुचए तेणवंधणवसोसं।
कालेण उ वहुएणवि ण सो, णरो पावइ विमोक्खं ॥२८९

इय कम्म वंध णाणं पएसठिइपयडिमेवमणुभागं।
जाणंतो विणमुचइ मुचइ सो चेव जइ सुद्धो ॥ २९० ॥

चित्र नं० ७

समयसार गाथा २८८-२९६ तक का भाव व भावार्थ

बंध का ज्ञान बंध की चिंता

बंधमें असतपुरुषार्थ बंधमें सत पुरुषार्थ

जैसे कोई है पुरुष, बन्धन करे प्रतीत।
तीव्र मन्द अरु काल की, जाने सब ही रीत२८८

जो बन्धन छेदे नहीं, तो बन्धन के माहिं।
बहुत काल बीते यद्यपि;बन्धन छूटे नाहिं॥२८९॥

कर्म बंध लखि उस तरह, चार भेद संयुक्त।
ज्ञात मात्र छूटे नहीं, राग हरे ते मुक्त ॥२९०॥

अर्थ--अहो देखो ! जैसे कोई पुरुष बन्धन में बहुत काल का बंधा हुआ उस बन्धन के तीव्र मन्द (गाढ़े ढीले) स्वभाव को और काल को जानता है कि इतने काल का बन्ध है। उस बन्धन को आप काटता नहीं है तो उस बन्धन के वश हुआ ही रहता है उस कर छूटता नहीं है। ऐसा वह पुरुष बहुत काल में भी उस बन्ध से छूटने रूप मोक्ष को नहीं पाता। उसी प्रकार जो पुरुष कर्म के बन्धनों के प्रदेश स्थिति प्रकृति और अनुभाग ये भेद हैं ऐसा जानता है तो भी वह कर्म से नहीं छूटता। जो आप रागादिक को दूर कर शुद्ध हो वही छूटता है ॥२८८-२९०॥

आगे—बन्ध की चिन्ता करने पर भी बन्ध नहीं कटता यह दिखाते हैं।

जह बंधेचिंततोबंधणए, वद्धोण पावइ विमोक्खं।
तह बंधेचिंततोजीवोवि, ण पावइ विमोक्खं ॥ २९१ ॥

यथा बंध चिंता करे, नहीं बंध से मुक्त।
तथा बंध चिंता करे जीव न पावे मुक्त ॥२९१॥

अर्थ—जैसे कोई वन्धन से वंधा हुआ पुरुष उन वन्धनों को विचारता हुआ भी मोक्ष को नहीं पाता उसी तरह कर्म वन्ध की चिन्ता करता हुआ जीव भी मोक्ष को नहीं पाता ॥ २९१ ॥

आगे—मोक्ष कैसे होय ? उत्तर वन्ध के छेदने से

जह वंधे छित्तूणय वंधण, वद्धोउ पावइ विमोक्खं।
तह वंधे छित्तूणय जीवो, संपावइ विमोक्खं ॥ २९२ ॥

यथा वन्ध जो छेदता, ते वन्धन से मुक्त।
तथा वन्ध जो छेदता, जीव पावता मुक्त॥२९२॥

अर्थ—जैसे वन्धन से वंधा पुरुष वन्धन को छेद कर मोक्ष को पाता है उसी तरह वन्धन को छेद कर जीव मोक्ष को पाता है ॥२९२॥

आगे—वन्धन कैसे छिदे ? उत्तर आत्मा और वन्ध के स्वभाव जानने से।

वंधाणंच सहावं वियाणिओ, अप्पणो सहावंच।
वंधेसु जो विरज्जदि सो कम्म विमोक्खणंकुणई ॥२९३॥

वन्ध स्वभाव हि जानत, आप रूप संयुक्त।
ते विरक्त वन्धन सहज. होंय कर्म से मुक्त॥२९३॥

अर्थ—वन्धों का स्वभाव और आत्मा का स्वभाव जान कर जो पुरुष वन्धों में विरक्त होता है वह पुरुष कर्मों का मोक्ष करता है ! ॥ २९३ ॥

आगे—आत्मा और वंध किस से जुदे करना चाहिये ? उत्तर प्रज्ञा से

जीवो बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥२९४॥

जीव बन्ध निश्चय छिदे, लक्षण लेय मिलाय।
प्रज्ञा छेदे इस तरह, भिन्न भिन्न हो जाय ॥२९४॥

अर्थ—जीव और बन्ध ये दोनों निश्चित अपने अपने लक्षणों कर बुद्धि रूपी छेनी से इस तरह छेदने चाहिये कि जिसतरह छेदेहुये नानापनको प्राप्त हो जांय अर्थात जुदे २ हो जांय ॥ २९४ ॥

आगे—आत्मा और बंध को भेद कर क्या करना ? उत्तर आत्मा को ग्रहण करना।

जीवो बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधोछेएवव्वो, सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥ २९५ ॥

जीव बन्ध निश्चय छिदे, लक्षण लेय मिलाय।
बन्ध छिदे रागादि सब, निर्मल आप दिखाय २९५

अर्थ—जीव और बन्ध इन दोनों को निश्चित अपने २ लक्षणों कर इस तरह भिन्न करना कि बन्ध तो छिदकर भिन्न हो जाय और आत्मा ग्रहण हो जाय ॥ २९५ ॥

आगे—आत्मा और बन्ध को प्रज्ञा से तो भिन्न किया परन्तु आत्मा को ग्रहण किससे किया जाय ? उत्तर प्रज्ञा से।

कह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।
जह पण्णाइ विहत्तो, तह पण्णाएव घित्तव्वो ॥२९६॥

शुद्धातम किम ग्रहण हो, प्रज्ञा कर ही होय।
यथा भिन्न प्रज्ञा किया, तथा ग्रहण भी होय२९६।

अर्थ—यह शुद्ध आत्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है आचार्य उत्तर कहते हैं कि यह शुद्धात्मा प्रज्ञा कर ही ग्रहण किया जाता है। जिस तरह पहिले प्रज्ञा से भिन्न किया था उसी तरह प्रज्ञा से ग्रहण करो॥ २९६ ॥

आगे—ग्रहण करने का उपाय बताते हैं।

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९७॥

प्रज्ञा करि निश्चय करो, मैं चेतियता ऐन।
शेष भाव मेरे नहीं, यही जिनेश्वर वैन ॥२९७॥

अर्थ—जो चेतन स्वरूप आत्मा है निश्चय से वह मैं हूं इस तरह प्रज्ञा कर ग्रहण करने योग्य है और शेष भाव जो हैं वह मुझ से पर हैं इस प्रकार आत्मा को ग्रहण करना चाहिये॥ २९७ ॥

आगे—उसी अर्थ को विशेष कर कहते हैं।

पण्णाए घित्तव्वो, जो दट्ठा सो अहंतु णिच्छयओ।
अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९८॥

पण्णाए घित्तव्वो, जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥ २९९ ॥

प्रज्ञा कर निश्चय करो, मैं दृष्टा हूँ ऐन।
शेष भाव मेरे नहीं, यही जिनेश्वर वैन ॥२९८॥

प्रज्ञा कर निश्चय करो, मैं ज्ञाता हूं ऐन।
शेष भाव मेरे नहीं, यही जिनेश्वर वैन ॥२९९॥

अर्थ--प्रज्ञा कर ऐसे ग्रहण करना कि जो देखने वाला हैं वह तो निश्चय से मैं हूँ और शेष जो भाव हैं वे मुझ से पर हैं ऐसा जानना तथा प्रज्ञा कर ही ग्रहण करना कि जो जानने वाला है वह तो निश्चय से मैं हूँ शेष जो भाव हैं वह मुझ से पर हैं ॥ २९८-२९९ ॥

आगे—कहते हैं कि अपने को जानकर पर को कोई ग्रहण नहीं करता

को णाम भणिज्ज, वुहो णाउं सव्वे पराइये भावे।
मज्झ मिणंति य, वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥३००॥

शुद्ध भाव को जान के, सर्व भाव परमान।
ये मेरे परभाव हैं, कौन कहे बुधवान ॥३००॥

अर्थ—ज्ञानी अपने स्वरूप को जान और सभी पर के भावों को जान कर ये मेरे हैं ऐसा वचन कौन बुद्धिवान कहेगा? ज्ञानी तो नहीं कह सकता कैसा है ज्ञानी? अपनी आत्मा को शुद्ध जानने वाला है ॥ ३०० ॥

आगे—अपराधी निरपराधी का स्वरूप दृष्टान्त से दिखाते हैं।

थेयाई अवराहे, कुव्वदि जो सो उ संकिदो भमई।
मावज्झेज्जं केणवि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥३०१॥

जो ण कुणइ अवराहे, सो णिस्संको दु जणवए भमदि।
ण वि तस्स वज्झिदुं, जे चिंता उप्पजदि कयाइ ॥३०२॥

एवंहिसावराहो, वज्झामि अहं तु संकिदो चेया।
जइ पुण णिरवराहो, णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥ ३०३ ॥

चोरी जिमि अपराध को, जो नर कर्ता होय।
भ्रमण करे शंका सहित, पकड़ न लेवे कोय३०१।

चोरी जिमि अपराध को, करे न जो नर कोय।
भ्रमण करे शंका रहित,पकड़ सके को मोय३०२॥

जो मैं हूं अपराध में, बन्धन निश्चित होय।
जो न करूं अपराध मैं,पकड़ सके नहि कोय३०३

अर्थ—जो पुरुष चोरी आदि अपराधों को करता है वह ऐसी शङ्का सहित भ्रमता है कि लोक में विचरता हुआ मैं चोर ऐसा मालूम होने पर किसी से पकड़ा न जाऊं। जो कोई भी अपराध नहीं करता वह पुरुष देश में निशङ्क भ्रमता है। उसको बंधने की चिन्ता कभी भी नहीं उपजती। ऐसे मैं जो अपराध सहित हूँ तो बंधूंगा ऐसी शङ्का युक्त आत्मा होता है और जो निरपराध हूँ तो मैं निशङ्क हूँ कि नहीं बंधूंगा ऐसे ज्ञानी विचारता है ॥ ३०१-३०३ ॥

आगे—अपराध किसको कहते हैं? उत्तर

चित्र नं० ८

समयसार गाथा ३०६-३०७ का भावार्थ

[illegible] का उपाय, स्वर्ग का उपाय, मुक्ति का उपाय
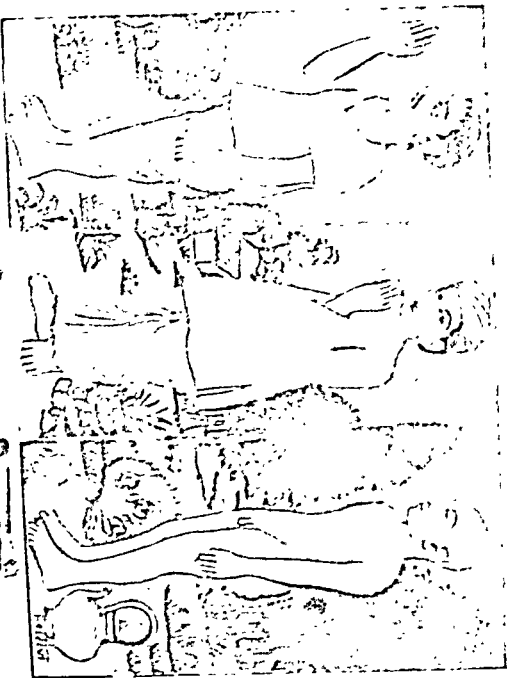
अप्रतिक्रमण । व्यवहारप्रतिक्रमण । निश्चयप्रतिक्रमण

संसिद्धिराधसिद्धं, साधियमाराधियं च एयट्ठं।
अवगयराधो जो खलु, चेया सो होइ अवराधो ॥३०४॥

जो पुण णिरवराधो, चेयाणिस्संकिओ उ सो होइ।
आराहणए णिच्चं, वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥ ३०५ ॥

मुक्त राध इक सिद्ध अरु, शुद्ध पूज्य इक वैन।
राध रहित जो जीव हैं, ते अपराधी ऐन॥३०४॥

निरअपराधी जीव जे, तिन्हें न शंका कोय।
अपने को पहिचानता, आराधन मय होय॥३०५॥

अर्थ—संसिद्ध (मुक्त) राध (निरपराध) सिद्ध (पूर्ण) साधित (शुद्ध) और आराधित (पूज्य) ये शब्द एकार्थ हैं इसलिये जो आत्मा आराधना से रहित है वह अपराधी है और जो आत्मा अपराधी नहीं है वह शङ्का रहित है और अपने को मैं हूँ ऐसा जानता हुआ आराधना कर हमेशा वर्तता है ॥ ३०४–३०५ ॥

आगे—कर्तापन के भावों को निषेध कर साक्षात् अकर्तापन के भावों को स्पष्ट करते हैं।

पडिकमणं पडिसरणं, परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही, अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥३०६॥

अपडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणाचेव।
अणियत्ती य अणिंदा, गरहा सो ही अमय कुंभो॥३०७॥

सरण हरण अरु प्रतिक्रमण, निंदा गर्हा थान ।
शुद्धि निवृति अरु धारणा, अठ घट विषमय जान ३०६

सरण हरण नहिं प्रतिक्रमण, निंदा गर्हा हान ।
शुद्धि निवृति नहिं धारण, अठ घट अमृत जान ३०७

अर्थ—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि इस तरह आठ प्रकार तो विष कुम्भ हैं क्यों कि इन में कर्तापन की बुद्धि सम्भवती है और अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि इस तरह आठ प्रकार अमृत कुम्भ हैं क्योंकि यहां कर्तापने का निषेध है कुछ भी नहीं करना इसलिये बन्ध से रहित हैं ॥ ३०६–३०७ ॥

इति मोक्षाधिकारः ॥ ८ ॥

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ॥ ९ ॥

अथ मासिक पाठ में दशम दिवस :–

आगे—आत्मा का अकर्तापन दृष्टान्त पूर्वक सिद्ध करते हैं ।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं, तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु, पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥३०८

जीवस्साजीवस्स दु, जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा, तेहि मणण्णं वियाणाहि ॥ ३०९ ॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो, जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि, तेण ण स होइ॥३१०॥

कम्मं पडुच्च कत्ता, कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पंजंति य णियमा, सिद्धीदु ण दीसए अण्णा॥३११॥

जो उपजे जिस गुण सहित, द्रव्य वही नहि अन्य।
कड़े आदि पर्याय जिमि, ते सब सुवरण जन्य ३०८

जड़ चेतन परिणाम जे, कहे सूत्र के मांहि।
उन परिणामों से जुदे, जड़ चेतन है नांहि॥३०९॥

इस कारण यह आतमा, स्वयं शक्ति उत्पन्न।
इसी तरह पर द्रव्य को, नहीं करे उत्पन्न॥३१०॥

कर्म साथ कर्ता रहे, करता आश्रय कर्म।
अन्य तरह सिद्धी नहीं, यही जिनेश्वर मर्म३११॥

अर्थ—जो द्रव्य जिन अपने गुणों कर उपजता है वह उन गुणों से अन्य नहीं जानना, उन गुण मय ही है। जैसे सुवर्ण अपने कड़े आदि आभूषणों से अन्य नहीं है जो कड़े आदि है वे सुवर्ण ही हैं। उसी तरह जीव अजीव के जो परिणाम सूत्र में कहे हैं, उन परिणामों से जीव अजीव अन्य नहीं जानना, जो परिणाम हैं वह द्रव्य ही हैं। जिस कारण वह आत्मा किसी से भी नहीं उत्पन्न हुआ है इससे किसी का कार्य नहीं

है और किसी अन्य को भी उत्पन्न नहीं करता इसलिये वह किसी का कारण भी नहीं है। क्योंकि यह न्याय है कि कर्म के आश्रय कर तो कर्ता होता है और कर्ता के आश्रय कर कर्म उत्पन्न होता है। अन्य तरह कर्ता कर्म की सिद्धि नहीं देखी जाती ॥ ३०८-३११ ॥

आगे—वस्तु स्वरूप तो पूर्वोक्त प्रकार है फिर भी अज्ञान की महिमा को प्रगट करते हैं।

चेया उ पयडीयट्ठं, उपज्जइ विणस्सइ ।
पयडीवि चेययट्ठं, उप्पज्जइ विणस्सइ ॥ ३१२ ॥

एवं बंधो उ दुण्हंपि, अण्णोण्णप्पच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य, संसारो तेण जायए ॥ ३१३ ॥

जीव प्रकृति के निमित्त से, उपजे विनसे जान ।
और प्रकृति जिय निमित से, उपजी विनसी मान ३१२

वंध दोय में इस तरह, निमित परस्पर जान ।
उसी जीव अरु प्रकृति से, यह संसार महान॥३१३॥

अर्थ—चेतने वाला आत्मा तो ज्ञाना वरणादि कर्म की प्रकृतियों के निमित्त से उत्पन्न होता है और विनशता है उसी तरह प्रकृति भी उस चेतने वाले आत्मा के लिये उत्पन्न होती है और विनाश को प्राप्त होती हैं। आत्मा के परिणामों के निमित्त से उसी तरह परिणमती है। इस तरह दोनों आत्मा और प्रकृति के परस्पर निमित्त से बंध होता है और उस बंध कर संसार उत्पन्न होता है ॥ ३१२-३१३ ॥

आगे—जब तक आत्मा प्रकृति के निमित्त से उपजना विनशना न छोड़े
तब तक अज्ञानी है !

जा एसो, पयडीयट्ठं चेयाणेव विमुंचए ।
अयाणओ हवे ताव, मिच्छाइट्ठी असंजओ ॥ ३१४ ॥

जया विमुंचये चेया, कम्मप्फलमणंतयं ।
तया विमुत्तो हवइ, जाणओ पासओ मुणी ॥ ३१५ ॥

जब तक नहिं यह आतमा, तजे प्रकृति का संग।
तब तक शठ मिथ्यामती, करे असंयम रंग॥३१४॥

जब छोड़े यह आतमा, सर्व कर्म फल संग।
बंध मुक्त है उस समय, ज्ञाता दृष्टा अंग॥३१५॥

अर्थ—यह आत्मा जब तक प्रकृति के निमित्त से उपजना विनशना नहीं छोड़ता तब तक अज्ञानी हुआ मिथ्यादृष्टी असंयमी होता है। और जब आत्मा अनंत कर्म फल को छोड़ देता है उस समय बंध से रहित हुआ ज्ञाता दृष्टा संयमी होता है॥३१४॥ ३१५॥

आगे—ज्ञानी अज्ञानी के भाव को दिखाते हैं !

अण्णाणी कम्मफलं, पयडि सहावट्ठिओ दु वेदेइ ।
णाणी पुण कम्मफलं, जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥ ३१६ ॥

मूरख प्रकृति स्वभाव में, करे करम फल भोग।
ज्ञानी करम विपाक में, रमें न साधे योग॥३१६॥

अर्थ—अज्ञानी कर्म के फल को प्रकृति के स्वभाव में तिष्ठा हुआ भोगता है और ज्ञानी उदय में आये हुए कर्म के फल को जानता है परन्तु भोगता नहीं है ॥ ३१६ ॥

आगे--अज्ञानी भोक्ता ही है ऐसा दिखाते हैं!

ण मुयइ पयडिम भव्वो, सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थणि।
गुड़ दुद्धंपि पिवंता, ण पण्णया णिव्विसा हुंति ॥३१७॥

त्यों स्वभाव वदले नहीं, पढ़ अभव्य नव अंग।
ज्यों पीवे गुड़ दूध को, विष नहि तजत भुजंग ३१७

अर्थ--अभव्य अच्छी तरह शास्त्रों को पढ़ता हुआ भी कर्म के उदय स्वभाव को नहीं छोड़ता अर्थात प्रकृति नहीं वदलती जैसे सर्प गुड़ सहित दूध को पीते हुए भी निर्विष नहीं होता ॥ ३१७ ॥

आगे—ज्ञानी कर्म फल का अवेदक ही है ऐसा दिखाते हैं!

णिव्वेयसमावण्णो, णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ।
महुरं कडुयं बहुविह, मवेयओ तेण सो होई ॥ ३१८ ॥

ज्ञानी है वैराग्य में, इस से वेदक नांहि।
खट्टा मीठा विविधि विधि, लखे करम फल मांहि ३१८

अर्थ—ज्ञानी वैराग्य को प्राप्त हुआ कर्म के फल को जानता है कि जो मीठा तथा कड़वा इत्यादि अनेक प्रकार है इस कारण वह भोक्ता नहीं है ॥ ३१८ ॥

आगे उसी अर्थ को फिर पुष्ट करते हैं !

णवि कुव्वइ णवि वेयइ, णाणी, कम्माइं बहुपयाराइं।
जाणइ पुण कम्मफलं, बंधं पुण्णं च पावं च ॥ ३१९ ॥

ज्ञानी करम अनेक को, करे न भोगे आप ।
केवल जाने करम फल, बन्ध पुण्य अरु पाप ३१९॥

अर्थ—ज्ञानी बहुत प्रकार के कर्मों को न तो कर्ता है और न भोक्ता है परन्तु कर्म के बंध को और कर्म के फल पुण्य पाप को जानता ही है ॥ ३१९ ॥

आगे—उसी अर्थ को दृष्टान्त में दिखाते हैं !

दिट्ठी जहेव णाणं, अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंध मोक्खं, कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

नेत्र जिस तरह जानते, कर्ता हर्ता नांहि ।
उसी तरह से ज्ञान भी, बन्ध मोक्ष के मांहि ३२०॥

अर्थ—नैत्र है वह देखने योग्य पदार्थ को देखता ही है उनका कर्त्ता भोक्ता नहीं है उसी तरह ज्ञान भी बंध मोक्ष, कर्म का उदय और निर्जरा को जानता ही है करने वाला भोगने वाला नहीं है॥३२०॥

आगे—जैसे लोकिक जन विष्णू को कर्त्ता मानते हैं वैसे श्रमण आत्मा को परका कर्ता माने तो उनके मोक्ष कैसा यह दिखाते है।

लोयस्स कुणइ विह्नू, सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणंपिय, अप्पाजइ कुव्वइ छव्विहे काये॥३२१॥

लोग समणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसइ विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू, समणाणवि अप्पश्रो कुणइ॥३२२

एवं ण कोवि मोक्खो, दीसइ लोयसमणा ण दोण्हंपि।
णिच्चं कुव्वंताणं, सदेवमणुयासुरे लोए॥ ३२३ ॥

लोक कहें विष्णू करे, नर नारक सुर ढोर।
श्रमण कहें कर्ता जिया, नहिं विष्णू इस ओर ३२१

लोक श्रमण का एक मत, भेद न दीसे अन्य।
विष्णु कर्ता जन कहें, श्रमण कहें चैतन्य॥३२२॥

लोक श्रमण जे इस तरह, मुक्ति न पावे कोय।
कर्ता पन छांडे नहीं; मुक्ति कहां से होय॥३२३॥

अर्थ—देव नारक तिर्यंच मनुष्य प्राणियों को लोक के तो विष्णू परमात्मा करता है ऐसा मंतव्य है इस तरह जो यतियों के भी ऐसा मानना हो कि छह काय के जीवों को आत्मा करता है तो लोक और यतियों का एक सिद्धान्त ठहरा तो कुछ विशेषता नहीं दीखती। क्यों कि लोक के जैसे विष्णू करता है, उस तरह श्रमणों के भी आत्मा करता है, इस तरह कर्ता के मानने में दोनों समान हुए, इस तरह लोक और श्रमण इन दोनो में से कोई भी मोक्ष जाता नहीं दीखता। क्यों कि जो देव मनुष्य असुर सहित लोकों के,

जीवों को नित्य दोनों ही करते हुए प्रवर्तते हैं उन के मोक्ष कैसा ॥ ३११-३२३ ॥

आगे--व्यवहार नय के वचन को ही निश्चय स्वरूप मान लेते हैं उन को दृष्टान्त देकर निषेधते हैं।

ववहारभासिएण, उ परदव्वं मम भणंति अवदियत्था।
जाणंति णिच्छएण, उ ण य, मह परमाणुमिच्चिमवि किंचि।

जह कोवि णरो, जंपइ अह्मं गामविसयणयररट्ठं।
ण य होंति ताणि तस्स, उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ३२५॥

एमेव मिच्छदिट्ठी, णाणी णिस्संसयं हवइ एसो।
जो पर दव्वं मम इदि, जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥३२६॥

तह्मा णमेत्ति णिच्चा, दोह्वि एयाण कत्तविवसायं।
परदव्वे जाणंतो, जाणिज्जो दिट्ठिरहियाणं ॥ ३२७ ॥

मूढ़ कहें व्यवहार सुन, मेरा है पर सर्व।
निश्चय जानें यों कहें, अंश न मम पर दर्व३२४।

जैसे कोई नर कहे, यह मेरा पुर ग्राम।
है नहि उसका मोह से, मेरा मेरा राम ॥३२५॥

तैसे यदि ज्ञानी कहे, पर वस्तू के मांहि।
मैं ये ये मैं एक हैं, तो समदृष्टी नांहि ॥

अह जीवो पयडी तह, पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं।
तह्मा दोहि यंकदतं, दोण्णवि भुंजंति तस्स फलं॥३३०॥

अह ण पयडी ण, जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।
तह्मा पुग्गलदव्वं, मिच्छत्तं तंतु ण हु मिच्छा॥ ३३१ ॥

यदि जु प्रकृति मिथ्यात से, है मिथ्याती जीव।
सुनों सांख्य कर्ता भया, पुद्गल द्रव्य सदीव३२८।

यदि पुद्गल मिथ्यात का कर्ता माने जीव।
मिथ्याती पुद्गल भया, निर्मल जीव सदीव३२९।

या पुद्गल मिथ्यात को. करें दोय जड़ जन्तु।
तो दोनों फल भोगवे, इसमें कछू न तन्तु३३०॥

यदि जु प्रकृति अरु जीव भी,करें न जड़ मिथ्यात।
फिर पुद्गल मिथ्यात है,यह क्या झूंट न बात३३१

अर्थ—जो मिथ्यात्व नामा मोह कर्म की प्रकृति पुद्गल द्रव्य है वह आत्मा को मिथ्या दृष्टी करती है ऐसा माना जाय तो सांख्य मती से कहते हैं अहो सांख्यमती तेरे मत में प्रकृति तो अचेतन है वह अचेतन प्रकृति जीव के मिथ्यात्व भाव को करने वाली ठहरी ऐसा बनता नहीं। अथवा ऐसा मानिये कि वह जीव ही पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करता है तो ऐसा मानने से पुद्गल द्रव्य मिथ्या दृष्टी सिद्ध हुआ जीव मिथ्यादृष्टि नहीं

ठहरा ऐसा भी नहीं बन सकता। अथवा ऐसा माना जाय कि जीव और प्रकृति ये दोनों पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करते हैं तो दोनों कर किया गया उसका फल दोनों ही भोगें ऐसा ठहरा सो यह भी नहीं बनता। अथवा ऐसा मानिये कि पुद्गल द्रव्य नामा मिथ्यात्व को न तो प्रकृति करती है और न जीव करता है तो भी पुद्गल द्रव्य ही मिथ्यात्व हुआ सो ऐसा मानना क्या झूठ नहीं है? इसलिये यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्व नामा जीव का जो भाव कर्म है उसका कर्ता तो अज्ञानी जीव है परन्तु इस के निमित्त से पुद्गल द्रव्य में मिथ्यात्व कर्म की शक्ति उत्पन्न होती है॥ ३२८-३३१॥

आगे—सांख्य के आशय को निषेधते हैं (जो सर्व लोक प्रकृति से ही उत्पन्न मानता है और जीव को रागादिक से अकर्ता मानता है)

कम्मेहि दु अण्णाणी, किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं सुवाविज्जइ,जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ३३२॥

कम्मेहि सुहाविज्जइ, दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि य मिच्छत्तं, णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ३३३॥

कम्मेहिं भमाडिज्जइ, उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य।
कम्मेहि चेव किज्जइ, सुहासुहं जित्तियं किंचि॥ ३३४॥

जह्मा कम्मं कुव्वइ, कम्मं देई हरत्ति जं किंचि।
तह्मा उ सव्वेजीवा, अकारया हुंति आवण्णा॥३३५॥

पुरुसिच्छियहिलासी, इच्छीकम्मं च पुरिसमहिलसइ।
एसा आयरिय, परंपरागया एरिसी दु सुई॥ ३३६॥

तह्मा ण कोवि जीवो, अवंभचारी उ अह्म उवएसे।
जह्मा कम्मं चेव हि, कम्मं अहिलसइ इदि भणियं॥३३७॥

जह्मा घाएइ परं, परेण घाइज्जए य सा पयडी।
एएणच्छेण किर, भण्णइ परघायणामित्ति॥३३८॥

तह्मा ण कोवि जीवो, वघायओ अत्थि अह्म उवदेसे।
जह्मा चेव हिं कम्मं, घाएदि इदि भणियं॥ ३३९ ॥

एवं संखुवएसं, जे उ परूविंति एरीसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वइ, अप्पा य अकारया सव्वे॥३४०॥

अहवा मण्णसि मज्झं, अप्पा मप्पाणमप्पणो कुणई।
एसो मिच्छसहावो. तुह्मं एयं मुणंतस्स॥ ३४१ ॥

अप्पा णिच्चो असंखिज्ज, पदेसो देसिओ उ समयम्हि।
ण विसो सक्कइ तत्तो, हीणो अहिओ य काउं जे॥३४२॥

जीवस्सजीव रुवं. विच्छरदो जाण लोग मित्तं हि।
तत्तो सो किं हीणो, अहिओ व कहं कुणइ दव्वं॥३४३॥

अह जाणओ उ भावो, णाण सहावेण अत्थि इत्ति मयं।
तह्मा णवि अप्पा, अप्पयं तु सय मप्पणो कुणइ॥३४४॥

कर्महि अज्ञानी करे, कर्महि ज्ञानी जान।
कर्म सुलावे जीव को, और जगावे आन॥३३२॥

अब्रह्मचारी नहीं है हमारे उपदेश में तो ऐसा है कि कर्म ही कर्म को चाहता है ऐसा कहा है। जिस कारण दूसरे को मारता है और पर कर मारा जाता है यह प्रकृति ही है इसी अर्थ को लेकर कहते हैं कि यह पर घात नामा प्रकृति है इस लिये हमारे उपदेश में कोई भी जीव उपघात करने वाला नहीं है क्योंकि कर्म ही कर्म को घातता है। ऐसा कहा है इस तरह जो कोई यति ऐसा सांख्य मत का उपदेश निरूपण करते हैं उनके प्रकृति ही करती है और आत्मा सब अकर्ता ही हैं ऐसा हुआ। आचार्य कहते हैं कि जो आत्मा के कर्ता पने का पक्ष साधने को तू ऐसा मानेगा कि मेरा आत्मा अपने आत्मा को कर्ता है ऐसा कर्तापन का पक्ष मानों तो ऐसे जानने का तेरा यह मिथ्या स्वभाव है क्योंकि आत्मा नित्य असंख्यात प्रदेशी सिद्धान्त में कहा है उससे वह हीनाधिक करने को समर्थ नहीं हो सकते। जीव का जीव रूप विस्तार अपेक्षा निश्चय कर लोक मात्र जानों ऐसा जीव द्रव्य उस परिमाण से क्या हीन तथा अधिक कैसे कर सकता है? अथवा ऐसा मानिये जो ज्ञायक भाव ज्ञान स्वभाव कर तिष्ठता है तो उसी हेतु से एसा हुआ कि आत्मा अपने आप को स्वय मेव नहीं करता। इसलिये कर्तापन साधने को विवक्षा पलट कर पक्ष कहा था सो नहीं बना। यदि कर्म का कर्ता कर्म को ही माने तो स्याद्वाद से विरोध ही आयेगा इसलिये कथंचित अज्ञान अवस्था में अपने अज्ञान भाव रूप कर्म का कर्ता जीव को मान ने में स्याद्वाद से विरोध नहीं है॥ ३३२–३४४ ॥

आगे—क्षणिक वादी को नित्य अनित्य कर्ता भोक्ता के विषय को स्याद्वाद से समझा कर कर्ता सोही भोक्ता सिद्ध करते हैं।

केहिचिदु पज्जयेहिं, विणस्सये णेवकेहिचि दु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि, सो वा अण्णो व णेयंतो॥ ३४५ ॥

केहिंचि दु पज्जेहिं, विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा वेददि, सो वा अरणाव णेयंतो ॥ ३४६ ॥

जो चेव कुणइ सोचिय, ण वेयए जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णायव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिदो ॥ ३४७ ॥

अण्णो करेइ अण्णो, परि भुंजइ जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३४८॥

जीव कई पर्याय से, नष्ट होय अरु नाहिं ।
निज करता या अन्य है, सो दृष्टी के मांहि ३४५॥

जीव कई पर्याय से, नष्ट होय अरु नाहिं ।
निज वेदक या अन्य है, सो दृष्टी के मांहि ३४६॥

कर्ता सो नहिं भोगता, ऐसा जो मत होय ।
जीव न हव अरहंत का, मिथ्यादृष्टी कोय ३४७

अन्य करे अरु भोगवे, ऐसा जो मत होय ।
जीव न वह अरहंत का, मिथ्यादृष्टी कोय ३४८।

अर्थ—जिस कारण जीव नामा पदार्थ कितनी एक पर्यायों कर तो विनाश को पाता है और कितनी पर्यायों से नहीं विनष्ट होता इस कारण वह ही कर्ता है अथवा अन्य कर्ता होता है एकान्त नहीं स्याद्वाद है जिस कारण जीव कितनी एक पर्यायों से विनशता है और कितनी एक पर्यायों से नहीं विनशता इस कारण

वही जीव भोक्ता होता है अथवा अन्य भोक्ता है वह नहीं भोक्ता ऐसा एकान्त नहीं है स्याद्वाद है। और जिसका ऐसा सिद्धान्त है कि जो जीव करता है वह नहीं भोक्ता अन्य ही भोगने वाला होता है वह जीव मिथ्या दृष्टि जानना अरहंत के मत का नहीं है। तथा जिसका ऐसा सिद्धान्त है कि अन्य कोई कर्ता है और दूसरा कोई भोगता है वह जीव मिथ्या दृष्टि जानना अरहंत के मत का नहीं है ॥ ३४५-३४८ ॥

आगे—उपरोक्त आशय को दृष्टान्त से दिखाते हैं।

जह सिप्पिओ उ कम्मं, कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवोवि य कम्मं, कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ३४९॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं, कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥३५०॥

जह सिप्पिओ उ करणाणि, गिह्लइ ण सो उ तम्मओ होइ।
जह जीवो करणाणि उ, गिह्लइ ण य तम्मओ होइ॥३५१॥

जह सिप्पिउ कम्मफलं, भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो कम्मफलं, भुंजइ ण य तम्मओ होइ॥३५२॥

एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं, दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं, परिणामकयं तु जं होई॥३५३॥

जह सिप्पिओ उ चिट्ठं, कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णोसे।
तह जीवोवि य कम्मं, कुव्वइ हवइ य अणण्णोसे॥३५४॥

जह चिट्ठं कुव्वंतो उ, सिप्पिओ णिच्च दुक्खिओ होई।
तत्तोसिया अणण्णो, तह चेट्ठं तो दुही जीवो ॥ ३५५ ॥

ज्यों शिल्पी भूषण करे, तदपि न तन्मय होय।
जीव करे पुद्गल कर्म, तदपि न तन्मय होय३४६

शिल्पी करणों से करे, तदपि न तन्मय होय।
योगों से प्राणी करे, तदपि न तन्मय होय ३५०॥

करण ग्रहण शिल्पी करे, तदपि न तन्मय हो।
योग ग्रहण प्राणी करे,तदपि न तन्मय होय३५१।

शिल्पी भोगे कर्म फल, तदपि न तन्मय होय।
जीव कर्म फल भोगवे,तदपि न तन्मय होय३५२।

इस प्रकार संक्षेप से, कथन समझ व्यवहार।
अब सुन निश्चय के वचन,जो हैं निज आधार३५३।

शिल्पी तन चेष्टा करे, तन्मय उसमें होय।
भाव कर्म प्राणी करें, दुखी निरन्तर होय॥३५४॥

तन चेष्टा शिल्पी करे, दुखी निरन्तर होय।
भाव कर्म प्राणी करे, दुखी निरन्तर होय।३५५॥

अर्थ—जैसे सुनार आदि कारीगर आभूषणादिक कर्म को करता है परन्तु वह आभूषणादिकों से तन्मय नहीं होता। उसी तरह जीव भी पुद्गल कर्म को करता है तो भी उस से तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी हथौड़ा आदि करणों से कर्म करता है परन्तु वह उन से तन्मय नहीं होता। उसी तरह जीव भी मन वचन काय आदि करणों से कर्म को करता है तो भी उन में तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी करणों को ग्रहण करता है तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी तरह जीव मन वचन काय रूप करणों को ग्रहण करता है तो भी उनसे तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी आभूषणादि कर्मों के फल को भोगता है तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता। उसी तरह जीव भी सुख दुःख आदि कर्म के फल को भोगता है परन्तु उनसे तन्मय नहीं होता। इस तरह से तो व्यवहार का मत संक्षेप से कहने योग्य है और निश्चय के वचन हैं वे अपने परिणामों से किये होते हैं उनको सुनों। जैसे शिल्पी अपने परिणाम स्वरूप चेष्टा रूप कर्म को करता है परन्तु वह उस चेष्टा से जुदा नहीं होता, तन्मय है उसी तरह जीव भी अपने परिणाम स्वरूप चेष्टा रूप कर्म को करता है, उस चेष्टा से अन्य नहीं है, तन्मय है। जैसे शिल्पी चेष्टा करता हुआ निरन्तर दुःखी होता है। उस दुःख से जुदा नहीं है; तन्मय है। उसी तरह जीव भी चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है ॥ ३४९-३५५ ॥

आगे—आत्मा के सब गुण पराश्रय से रहित स्वाधीन सिद्ध करते हैं।

जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह जाणओ दु ण परस्स, जाणओ जाणओ सोदु ३५६॥

जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया य सा होइ।
जह पासओ दु ण परस्स, पासओ पासओ सोदु ३५७॥

जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया दु सा होइ ।
तह संजओ दु ण परस्स, संजओ संजओ सोदु ॥३५८॥

जह सेडिया दु ण परस्स, सेडिया सेडिया दु सा होइ ।
तह दंसणं दु ण परस्स, दंसणं दंसणं तंतु ॥ ३५९ ॥

एवंतु णिच्छयणयस्स, भासियं णाण दंसण चरित्ते ।
सुणु ववहार णयस्स य, वत्तव्वं से समासेण ॥ ३६० ॥

जह परदव्वं सेडिदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणइ, णाया विसयेण भावेण ॥ ३६१ ॥

जह परदव्वं सेडिदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सइ, जीवोवि सयेण भावेण ॥ ३६२ ॥

जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ, णायावि सयेण भावेण ॥३६३॥

जह परदव्वं सेडदि, हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ, सम्मादिट्ठि सहावेण ॥ ३६४ ॥

एवं ववहारस्सदु, विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसुवि, पज्जए सु एमेव णायव्वो ॥३६५॥

ज्यों खडिया खडिया स्वयं, परसों खडिया नाहिं ।
त्यों ज्ञाता ज्ञाता स्वयं, परसों ज्ञाता नाहिं ३५८॥

ज्यों खडिया खडिया स्वयं, परसों खडिया नाहिं।
त्यों दर्शक दर्शक स्वयं, परसों दर्शक नाहिं३५७॥

ज्यों खडिया खडिया स्वयं, परसों खडिया नाहिं।
त्यों संयत संयत स्वयं, परसों संयत नाहिं ३५८॥

ज्यों खडिया खडिया स्वयं, परसों खडिया नाहिं।
त्यों श्रद्धक श्रद्धक स्वयं, परसों श्रद्धक नाहिं३५६॥

दर्शन ज्ञान चरित्र में, ऐसा निश्चय सेन[1]।
अब सुनिये संक्षेप से; वाह्य दृष्टि के वेन ३६०॥

ज्यों खडिया निज भाव कर, शुक्ल करे पर वस्तु।
त्यों ज्ञाता निज भावसे, जानत है पर वस्तु३६१॥

ज्यों खडिया निज भाव कर, शुक्ल करे पर वस्तु।
त्यों ज्ञाता निज भावसे, देखत है पर वस्तु३६२॥

ज्यों खडिया निज भाव कर, शुक्ल करे पर वस्तु।
त्यों ज्ञाता निज भाव से, त्यागत है पर वस्तु३६३॥

ज्यों खडिया निज भाव कर, शुक्ल करे पर वस्तु।
त्यों ज्ञाता निज भाव से, श्रद्धक है पर वस्तु३६४॥

---

१ भाव

यों निश्चय व्यवहार से, चारित दर्शन ज्ञान।
उसी तरह पर्याय सब, जान लेउ धरि ध्यान३६५॥

अर्थ—जैसे सफेदी करने वाली कलई खडिया मिट्टी चूना आदि सफेद वस्तु वह अन्य जो भीत आदि वस्तु उसको सफेद करने वाली है। इससे खडिया नहीं है। वह तो भीत के वाहर भाग में रहती है। भीत रूप नहीं होती। खडिया तो आप खडिया रूप ही है। उसी तरह जानने वाला है वह पर द्रव्य को जानने वाला है इस कारण से ज्ञायक नहीं है, आप ही ज्ञायक है। जैसे खडिया ...उसी तरह देखने वाला पर द्रव्य देखने वाला होने से दर्शक नहीं है आप ही देखने वाला है। जैसे खडिया... उसी तरह संयत पर को त्यागने से संयत नहीं है। आप ही संयत है। जैसे खडिया... उसी तरह श्रद्धान पर के श्रद्धान से से श्रद्धान नहीं है। आप ही श्रद्धान है। ऐसा दर्शन ज्ञान चारित्र में निश्चय नय का कहा हुआ वचन है तथा व्यवहार नय के वचन हैं उन्हें संक्षेप से कहते हैं उन को सुनों। जैसे खडिया अपने स्वभाव कर भीत आदि द्रव्य को सफेद करती है उसी तरह जानने वाला भी पर द्रव्य को अपने स्वभाव कर जानता है। जैसे खडिया...उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभाव कर पर द्रव्य को देखता है। जैसे खडिया... उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभाव कर पर द्रव्य को त्यागता है। जैसे खडिया... उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभाव कर पर द्रव्य को श्रद्धान करता है इस तरह जो दर्शन ज्ञान चारित्र में व्यवहार का विशेष निश्चय कहा है उसी तरह अन्य पर्यायों में भी जानना चाहिये ॥ ३५६–३६५ ॥

आगे—राग द्वेष से दर्शन, ज्ञान, चारित्र, का ही घात होता है इस लिये ज्ञानी के विषयों की वांच्छा नहीं यह दिखलाते हैं।

दंसणणाण चरित्तं किंचिवि, णत्थिदु अचेयणेविसये।
तह्माकिंघादयदे, चेदयिदा तेसु विसुयेसु ॥ ३६६ ॥

दंसणणाण चरित्तं किंचिवि, णत्थिदु अचेयणे कम्मे।
तह्माकिंघादयदे, चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥ ३६७ ॥

दंसणणाण चरित्तं किंचिवि, णत्थिदु अचेयणे काये।
तह्माकिंघादयये, चेदियिदा तेसु कायेसु ॥ ३६८ ॥

णाणस्स दंसणस्स य, भणिओघाओ तहा चरित्तस्स।
णवि तहिं पुग्गल दव्वस्स, कोविघाओ उ णिद्दिट्ठो ३६९॥

जीवस्स जेगुणाकेइ, णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तह्मासम्माइट्ठिस्स, णत्थि रागोउ विसएसु॥ ३७० ॥

रागो दोसो मोहो, जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एएण कारणेण उ, सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥३७१॥

दर्शन ज्ञान चरित्र नहिं, विपय अचेतन मांहि।
इस कारण उन विपय को, आतम घाते नांहि३६६॥

दर्शन ज्ञान चरित्र नहिं, कर्म अचेतन मांहि।
इस कारण उस कर्म को, आतम घाते नांहि३६७॥

दर्शन ज्ञान चरित्र नहिं, काय अचेतन मांहि।
इस कारण उस काय को, आतम घाते नांहि३६८॥

दर्शन ज्ञान चारित्र को, घात कहा है सर्व ।
नहीं घात करना कहा, कुछ भी पुद्गल दर्व३६६॥

जो कुछ गुण हैं जीव के, निश्चय पर में नांहि ।
समदृष्टा के इस लिये, राग विषय में नांहि३७०॥

रागादिक परिणाम जे, अनन्य आतम मांहि ।
इस प्रकार रागादि ये, शब्दादिक में नांहि ३७१॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र हैं वे अचेतन विषयों में तो कुछ भी नहीं है इसलिये उन विषयों में आत्मा क्या घात करे ? घातने को कुछ भी नहीं । दर्शन; ज्ञान, चारित्र अचेतन कर्म में कुछ भी नहीं है इसलिये उस कर्म में आत्मा क्या घात करे ? कुछ भी घातने को नहीं । दर्शन ज्ञान चारित्र अचेतन काय में कुछ भी नहीं है इसलिये उन कार्यों में आत्मा क्या घाते ? कुछ भी घातने को नहीं ! घात ज्ञान का दर्शन का तथा चारित्र का कहा है वहां पुद्गल द्रव्य का तो कुछ भी घात नहीं कहा । जो कुछ भी जीव के गुण हैं वे निश्चय कर पर द्रव्यों में नहीं हैं इसलिये सम्यग्दृष्टि के विषयों में राग नहीं है । राग द्वेष मोह ये सब जीव के ही एक रूप परिणाम हैं इसी कारण रागादिक शब्दा-दिकों में नहीं हैं ॥ ३६६–३७१ ॥

आगे—अन्य द्रव्य के गुण अन्य द्रव्य कर नहीं उपजाये जाते ऐसा नियम है ।

अण्णदविएण अण्णद, वियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ ।
तह्मा उ सव्वदव्वा, उप्पज्जंते सहावेण ॥ ३७२ ॥

अन्य द्रव्य कर अन्य का, होय न गुण उत्पाद ।
इस कारण सब द्रव्य का, स्वयं शक्ति उत्पाद३७२॥

अर्थ—अन्य द्रव्य कर अन्य द्रव्य के गुण का उत्पाद नहीं किया जा-
सकता इस लिये यह सिद्धान्त है कि सभी द्रव्य अपने अपने
स्वभाव से उपजते हैं ॥ ३७२ ॥

आगे—अज्ञानी निंदा स्तुति के वचन सुन कर हर्ष विषाद करता है उस
को वस्तु स्वरूप दिखाते हैं ।

णिंदियसंथुय, वयणाणि पोग्गला परिणमंति वहुयाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसदि, तूसदि य अहं पुणो भणिदो३७३

पोग्गलदव्वं सद्द, त्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिओ, किंचिवि किं रूससि अवुद्धो३७४

असुहो सुहो व सद्दो, ण तं भणइ सुणसु मंति सो चैव ।
ण य एइ विणिग्गहिंउ, सोयविसयमागयं सद्दं ३७५॥

असुहं सुहं च रूवं, ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं, चक्खुविसयमागयं रूवं ३७६॥

असुहो सुहो व गंधो, ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गइहिउं, घाणविसयमागयं गंधं ॥३७७॥

असुहो सुहो व रसो, ण तं भणइ मंति रसम सो चेव।
णयएइ विणिग्गहिंउ, रसणविसयमागयं तुरसं ३७८॥

असुहो सुहो व फासो, ण तं भणइ फुससु मंति सोचेव।
ण य एइ विणग्गहिंउ, कायविसयमागयं फासं॥३७९॥

असुहो सुहो व गुणो, ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव।
णयएइ विणग्गहिंउं, वुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥३८०॥

असुहं सुहं व दव्वं, ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव।
णयएइ विणग्गहिंउं, वुद्धिविषयमागयं दव्वं ॥ ३८१ ॥

एयं तु जाणिऊण, उवसमं णेव गच्छुई मूढो।
णिग्गहमणा परस्स, य सयंच वुद्धिं सिवमपत्तो॥३८२॥

निंदा स्तुति के वचन, सब पुद्गल परसाद।
उनको सुन कर मूढ़ मति, माने हर्ष विषाद३७३।

शब्द रूप परिणत हुआ, पुद्गल गुण का कोस।
तुझ को मोही नहिं कहा, तू करता क्यों रोष३७४

शब्द शुभा शुभ नहिं कहे, मुझको सुनिये आय।
तज प्रदेश नहिं आतमा, करण विषय पर जाय३७५

रूप शुभा शुभ नहिं कहे, मुझको देखो आय।
तज प्रदेश नहि आतमा, नेत्र विषय पर जाय३७६

गंध शुभा शुभ नहि कहे, मुझको सूंघो आय।
तज प्रदेश नहि आतमा, गंध विषय पर जाय ३७७

नहीं शुभा शुभ रस कहे, मुझको स्वादो आय।
तज प्रदेश नहि आतमा, जीभ स्वाद पे जाय ३७८।

फर्श शुभा शुभ नहि कहे, मुझको छूओ आय।
तज प्रदेश नहि आतमा, काय विषय में जाय ३७९

गुण न शुभा शुभ इम कहें; मुझको जानो आय।
तज प्रदेश नहि आतमा, बुद्धि विषय में जाय ३८०

द्रव्य शुभा शुभ नहिं कहे, मुझको जानो आय।
तज प्रदेश नहिं आतमा, बुद्धि विषय में जाय ३८१

मूढ़ जीव यह जानके, उपशम करे न भाव।
आप स्वयं कल्याण तज, पर इच्छा में चाव ३८२।

अर्थ—बहुत प्रकार के निंदा और स्तुति के वचन हैं। उन रूप पुद्गल परिणमते हैं। उनको सुन कर यह अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मुझ को कहा है इसलिये ऐसा मान रोस करता है और संतुष्ट होता है। शब्द रूप परिणत हुआ पुद्गल द्रव्य है सो यह पुद्गल द्रव्य का गुण है सो अन्य है इसलिये हे अज्ञानी जीव तुझको तो कुछ भी नहीं कहा। तू अज्ञानी हुआ क्यों रोस करता है। अशुभ अथवा शुभ शब्द तुझ को ऐसा नहीं कहता

कि मुझ को सुन और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय में आये हुये शब्द के ग्रहण करने को वह आत्म भी अपने स्वरूपों को छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ अथवा शुभ रूप तुझ को ऐसा नहीं कहता कि तू मुझ को देख और चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए रूप के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेशों को छोड़ नहीं प्राप्त होता अशुभ अथवा शुभ गंध तुझ को ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको सूंघ और घ्राण इन्द्रिय के विषय में आये हुए गंध के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेश को छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ व शुभ रस तुझको ऐसा नहीं कहता कि मुझ को तू आस्वाद कर और रसना इन्द्रिय के विषय में आये रस के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेश को छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ व शुभ स्पर्श तुझ को ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको स्पर्श और स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए स्पर्श के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेश को छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ व शुभ द्रव्य का गुण तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको जान और बुद्धि के विषय में आये हुए गुण के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेश को छोड़ कर नहीं प्राप्त होता है। अशुभ व शुभ द्रव्य तुझको एसा नहीं कहता कि तू मुझे जान और बुद्धि के विषय में आये हुए द्रव्य के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने प्रदेश को छोड़ नहीं प्राप्त होता। यह मूढ़ जीव ऐसा जान कर भी उपशम भाव को नहीं प्राप्त होता और पर के ग्रहण करने को मन करता है क्यों कि आप कल्याण रूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको नहीं प्राप्त हुआ है ॥३७३-३८२॥

आगे—निश्चय चारित्र के विधान को कहते हैं !

अथ मासिक पाठ में द्वादस दिवस :—

कम्मं जं पुव्व कयं, सुहासुहमणेय वित्थर विसेसं ।
तत्तोणियत्तए अप्पयंतु, जो सो पडिक्कमणं ॥ ३८३ ॥

कम्मं जं सुहम सुहं, जह्मिय भा वह्मि वज्झइ भविस्सं ।
तत्तोणियत्तए जो, सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ॥३८४॥

जं सुहम सुह मुदिण्णं संपडिय अणेय वित्थ रविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ, सो खलु अलोयणं चेया ॥ ३८५ ॥

णिच्चंपच्चक्खाणं, कुव्वइ णिच्चं य पडिक्कमदि जो ।
णिच्चं आलोचेयइ, सो हु चरित्तं हवइ चे या ॥ ३८६ ॥

कर्म शुभा शुभ, पूर्व कृत है विस्तार अनेक ।
उन्हें छुड़ावें आप मे, प्रतिक्रमण सो नेक॥३८३॥

कर्म शुभा शुभ आगती, वन्ध कर्म जिम कीन ।
तैसे छोड़े आप से, प्रत्याख्यान सो चीन३८४॥

कर्म शुभाशुभ उदय में, है विस्तार अनेक ।
अनुभवता उस दोप, को, आलोचन सो नेक३८५

पच्चखान नित ही करे, प्रतिक्रमण नित कीन ।
सदा करे आलोचना, सो चारित्री चीन ॥३८६॥

अर्थ—पहिले अतीत काल में किये जो शुभ अशुभ ज्ञानावर्ण आदि

अनेक प्रकार विस्तार विशेष रूप कर्म हैं उन से जो चेतयिता अपने आत्मा को छुड़ाता है वह आत्मा प्रतिक्रमण स्वरूप है। और जो अगामी काल में शुभ तथा अशुभ कर्म जिस भाव के होने पर बंधे उस अपने भाव से जो ज्ञानी छूटे वह आत्मा प्रत्याख्यान रूप है ! और जो वर्तमान काल में शुभ अशुभ कर्म अनेक प्रकार ज्ञाना वरणादि विस्तार रूप विशेषों को लिये हुए उदय आया है उस दोष को जो ज्ञानी अनुभवता है, उस का स्वामीपना कर्ता पना छोड़ता है वह आत्मा निश्चय से आलोचना स्वरूप है। इस तरह जो आत्मा नित्य प्रतिक्रमण करता है, नित्य आलोचना करता है वह चेतयिता निश्चय कर चारित्र स्वरूप है ॥ ३८३–३८६ ॥

आगे – अज्ञान चेतना से ही कर्म का वन्ध होना सिद्ध करते हैं !

वेदंतो कम्म फलं, अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि वंधइ, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ३८७ ॥

वेदंतो कम्म फलं, मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि वंधइ, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८८॥

वेदंतो कम्म फलं, सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणोवि वंधइ, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८९॥

जो जिय भोगे कर्म फल, उन में आपा ठान।
वह फिर भी दुख वीज को, बांधे वसु विधि जान ३८७

जो जिय भोगे कर्म फल, उन्हें आप कृत मान ।
वह फिर भी दुख बीज को, बांधे वसुविधि जान ३८८।

जो जिय भोगे कर्म फल, सुखी दुखी पन ठान ।
वह फिर भी दुख बीज को. बांधे वसुविधि जान ३८९।

अर्थ—जो आत्मा कर्म के फल को अनुभवता हुआ कर्म फल को आप रूप ही करता है, मानता है वह फिर भी दुःख का बीज ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कम को बांधता है। जो कर्म के फल को वेदता हुआ आत्मा उस कम फल को ऐसा जाने कि यह मैंने किया है। वह फिर भी दुःख का बीज.. । जो आत्मा कर्म के फल को वेदता हुआ सुखी और दुखी होता है वह फिर दुख का बीज····· ॥३८७-३८९॥

आगे—ज्ञानी को सब वस्तुओं से भिन्न दिखाते हैं।

सत्थं णाणं ण हवइ, जह्मा सत्थं ण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं सत्थं जिणाविंति ॥ ३९० ॥

सद्दोणाणं ण हवइ जह्मा, सद्दोण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं सद्दं जिणा विंतिं ॥ ३९१ ॥

रूवं णाणं ण हवइ जह्मा, रूवं ण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं रूवं जिणाविंति ॥ ३९२ ॥

वरणो णाणं ण हवइ, जह्मा वरणोण याणए किंचि ।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं वरणं जिणाविंति ॥ ३९३ ॥

गंधो णाणं ण हवइ, जह्मा गंधोण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं गंधं जिणाविंति ॥ ३९४ ॥

ण रसो दु हवदि णाणं, तह्मा दु रसोण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, रसं य अरणं जिणाविंति ॥३९५॥

फासो ण हवइ णाणं, जह्मा फासो ण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं फासं जिणाविंति ॥ ३९६ ॥

कम्मंणाणं ण हवइ, जह्मा कम्मं ण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं धम्मं जिणाविंति ॥ ३९७ ॥

धम्मोणाणं ण हवइ, जह्मा धम्मोण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं धम्मं जिणाविंति ॥ ३९८ ॥

णाणंधम्मोण हवइ, जह्मा धम्मोण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं अरणंधम्मं जिणाविंति ॥ ३९९ ॥

कालोणाणं हवइ, जह्मा कालोण याणए किंचि।
तह्मा अरणं णाणं, अरणं कालं जिणाविंति ॥ ४०० ॥

आया संपिण णाणं, जह्मा यासं ण याणए किंचि।
तह्मा अरणंयासं, अराणं णाणं जिणाविंति ॥ ४०१ ॥

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा।
तह्मा अरणं णाणं अज्झव साणं तहा अरणं ॥ ४०२ ॥

जह्मा जाणइ णिचं तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो, अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥ ४०३ ॥

णाणं सम्मादिट्टी, दु संजमं सुत्तमंग पुव्वगयं ।
धम्माधम्मं चतह्मा, पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥ ४०४ ॥

ज्ञान शास्त्र में है नहीं, कछू न जाने शास्त्र ।
इस कारण जिनवर कहें, अन्य ज्ञान अरु शास्त्र ३६०।

ज्ञान शब्द में है नहीं, कछू न जाने शब्द ।
इस कारण चिनवर कहें, अन्य ज्ञान अरु शब्द ३६१

ज्ञान रूप में है नहीं कछू न जाने रूप ।
इस कारण चिनवर कहें, अन्य ज्ञान अरु रूप॥३६२॥

ज्ञान वर्ण में है नहीं, कछू न जाने वर्ण ।
इस कारण जिनवर कहें, अन्य ज्ञान अरु वर्ण ३६३

ज्ञान गंध में है नहीं; कछू न जाने गंध ।
इस कारण जिनवर कहें, अन्य ज्ञान अरु गंध ३६४।

ज्ञान रसों में है नहीं, रस कछु जाने नांहि ।
इस कारण जिनवर कहें, भेद ज्ञान रस मांहि ३६५।

ज्ञान फर्श में है नहीं, कछू न जाने फर्श ।
इस कारण जिनवर कहें,अन्य ज्ञान अरु फर्श ३९६

ज्ञान कर्म में है नहीं, कछू न जाने कर्म ।
इस कारण जिनवर कहें,अन्य ज्ञान अरु कर्म ३९७।

ज्ञान धर्म में है नहीं, कछू न जाने धर्म ।
इस कारण जिनवर कहें,अन्य ज्ञान अरु धर्म ३९८

अधरम में नहि ज्ञान है, इससे जाने नांहिं ।
इस कारण जिनवर कहें,ज्ञान न अधरम मांहिं ३९९।

ज्ञान काल में है नहीं कछू न जाने काल ।
इस कारण जिनवर कहें,अन्य ज्ञान अरु काल ४००

ज्ञान नहीं आकाश में, जाने नहिं आकाश ।
इस कारण जिनवर कहै,अन्य ज्ञान आकाश ४०१

ज्ञान न अध्यवसान में, जड़ है अध्यवसान ।
ज्ञान अन्य जिनवर कहें.अन्यहिं अध्यवसान ४०२॥

इससे ज्ञाता जीव है, ज्ञाता ज्ञानी होय ।
क्योंकि निरन्तर जानता,जीव ज्ञान नहिं दोय ४०३

जुदा नहीं है ऐसा जानना चाहिए और ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है संयम है अंगपूर्वगत सूत्र है और धर्म अधर्म है तथा दीक्षा भी ज्ञान है ऐसा ज्ञानीजन अंगीकार करते है ॥३९०-४०४॥

आगे—ज्ञान के ज्ञान का आहार है अन्य का नहीं यह दिखाते हैं।

अत्ता जस्सामुत्तो, ण हु सो आहारओ हवइ एवं।
आहारो खलु मुत्तो, जह्मा सो पुग्गलमओ उ ॥४०५॥

णवि सक्कइ घित्तुं जं, ण विमोत्तुं जं य जं परदव्वं।
सो कोविय तस्स, गुणोपाउगिओविस्ससो वावि४०६॥

तह्मा उ जो विशुद्धो, चेया सो णेव गिण्हए किंचि।
णेव विमुंचइ किंचिवि, जीवाजीवाण दव्वाणं॥ ४०७ ॥

मूर्तिवान नहि आतमा, आहरक किमि होय।
क्योंकि मूर्त आहार है, पुद्गल निश्चय सोय४०५

अन्य द्रव्य का इसलिये, ग्रहण त्याग नाहिं होय।
बना स्वभाव विभाव में, गुण ऐसा ही कोय४०६॥

शुद्धआतमा इसलिये किंचित गहे न दर्व।
और न किंचित छोड़ता, जड़ चेतन पर दर्व४०७।

अर्थ—इस प्रकार जिस का आत्मा अमूर्तीक है वह निश्चय कर आहारक नहीं है क्यों कि आहार मूर्तीक है वह आहार तो पुद्गल मय है। जो पर द्रव्य है वह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और छोड़ा भी नहीं जा सकता। वह कोई ऐसा ही आत्मा का गुण प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है। इसलिये जो विशुद्ध आत्मा है वह जीव अजीव पर द्रव्य में से किसी

आगे—उपरोक्त आशय को ही दृढ़ करते हैं।

तह्मा जहित्तु लिंगे, सागारणगारएहिं वा गहिए।
दंसणणाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४११ ॥

इससे श्रावक मुनि लये, सब भेषन को छोड़।
दर्शन ज्ञान चारित्र मय, मोक्ष पंथ को जोड़४११।

अर्थ—इस कारण गृहस्थों कर अथवा गृहत्यागी मुनियों कर ग्रहण किए गए लिंगों को छोड़ कर अपने आत्मा को दर्शन ज्ञान और चारित्र रूप मोक्ष मार्ग में युक्त करो। यह श्री गुरुओं का उपदेश है ॥ ४११ ॥

आगे—उसी में और सावधान करते हैं।

मोक्खपहे अप्पाणं, ठवेहि तं चेवझाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्णदव्वेसु॥४१२॥

मोक्ष मार्ग में आप को, थाप करे निज ध्यान।
फिर आपा अनुभव करे, तज पर वस्तु ज्ञान४१२

अर्थ—हे भव्य तू मोक्ष मार्ग में अपने आत्मा को स्थापन कर उसी का ध्यान कर उसी को अनुभव गोचर कर और उस आत्मा में ही निरन्तर विहार कर अन्य द्रव्यों में मत विहार कर। ॥ ४१२ ॥

आगे—बाह्य लिंग में जो ममकार करता है उसे निषेधते हैं।

पाखंडी लिंगेसु, व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तं, तेहिं ण णायं समयसारं ॥ ४१३ ॥

यति लिंग ग्रह लिंग धर, और अनेक प्रकार।
समय सार नाहिं पावता, बाह्य भेष ममकार४१३॥

अर्थ—जो पुरुष पाखंडीलिंगों में अथवा बहुत भेद वाले गृहस्थ लिंगों में ममता करते हैं—अर्थात हमको ये ही लिंग मोक्ष को देने वाले हैं। उन पुरुषों ने समयसार को नहीं जाना ॥ ४१३ ॥

आगे - व्यवहार नय के कहे हुये लिंगों को निश्चयनय निषेधता है।

ववहारिओ पुण णओ, दोण्णिवि लिंगा णिभणइ मोक्खपहे
णिच्छयणओ ण, इच्छइमोक्खपहे सव्वलिंगाणि॥४१४॥

मोक्ष मार्ग व्यवहार से, मुनि श्रावक के भेद।
सर्व लिंग शिव पंथ में, निश्चय करे निषेध॥४१४॥

अर्थ—व्यवहार नय तो मुनि श्रावक के भेद से दोनों ही प्रकार के लिंगों को मोक्ष के मार्ग कहता है और निश्चय नय सभी लिंगों को मोक्ष मार्ग में इष्ट नहीं मानता ॥ ४१४ ॥

आगे—ग्रन्थ पढ़ने की महिमा को दिखाते हैं।

जो समयपाहुड़, मिणं पड़ि हूणं अत्थ तच्चदो णाउं।
अत्थे ठाहीचेया, सो होही उत्तमं सोक्खं ॥ ४१५ ॥

समय कथन पढ़ जो पुरुष, तत्व अर्थ ले जोय।
अरु ठहरे इस अर्थ में, उत्तम सुख सम होय॥४१५॥

अर्थ—जो चेतयिता पुरुष भव्य जीव इस समय प्राभृत को पढ़ कर अथ से और तत्व से जान कर-इसके अर्थ में ठहरेगा वह उत्तम सुख स्वरूप होगा ॥ ४१५ ॥

इति सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ॥ ९ ॥

पंचास्तिकाय

ज्ञानाराधना

श्री परमात्मने नमः

श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचितः

अध्यात्म वाणी भाग २

पंचास्तिकायः

अथ मासिक पाठ में त्रयोदश दिवस—

अक्षर अर्थ विरोध है, भाव लखें अविरोध।
ऐसे जिनवर वचन को, नमों योग त्रय शोध ॥१॥

आगे—प्रथम सर्वज्ञ वीतराग प्रभू की महिमापूर्वक नमस्कार करते हैं।

इंदसदवंदियाणं, तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अनातीदगुणाणं णमो, जिणाणं जिदभवाणं ॥ १ ॥

इन्द्र शतक वन्दित त्रिजग, हितमित निर्मल वैन।
जितभव जिनवर को नमूं, अंत रहित गुण सेन ॥१॥

सामान्यार्थ—सौ इन्द्रों से वन्दनीक तीन जगत को हितकारी मधुर और स्पष्ट वचन को कहनेवाले अनन्त गुणों के धारी पंचपरावर्तन रूप संसार को जीतने वाले अरहंतों को नमस्कार हो ॥ १ ॥

आगे—जिनागम को नमस्कार कर पंचास्तिकाय को कहते हैं।

समणमुहुग्गदमट्ठं, चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा, समयमियंसुणह वोच्छामि ॥२॥

जिनमुखध्वनि चहुं गति हरे, और करे निर्वाण ।
ताहि वंदि कें मैं कहूं, सुनों समय व्याख्यान ॥ २ ॥

अर्थ—मैं कुन्दकुन्दाचार्य, वीतराग, सर्वज्ञ, महाश्रमण के मुख से प्रगट जो नरकादि चारों गतिओं को दूर करने वाले व सर्व कर्मों के क्षय रूप निर्वाण को देने वाले जीवादि पदार्थ समूह वचन को उत्तम अङ्ग (मस्तक) से नमस्कार करके इस शब्द आगम (पंचास्ति काय) को कहूँगा। हे भव्य जीवो इसको सुनो ॥२॥

आगे—समय शब्द का अर्थ और लोकालोक के भेद दिखाते हैं।

समवाओ पंचसहं, समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोओ, तत्तो अमिओ अलोओ खं॥ ३ ॥

पनसमूह जो समय है, जिनवर किया वखान ।
लोक नाम सोही कहा, अमित अलोक पिछान॥३

अर्थ—पांच जीवादि द्रव्यों का समूह समय है। ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है। वही पाँचों का मेल या समुदाय लोक है। इससे बाहर आलोक मात्र शुद्ध आकाश है ॥ ३ ॥

आगे-पंचास्तिकाय के अस्तित्व स्वरूप को दिखाते हैं।

जीवा पुग्गलकाया, धम्माधम्मा तहेव आगासं ।
अत्थितम्हि य णियदा, अणण्णमइया अणुमहंता ॥४॥

जीव धरम अधरम गगन, पुद्गल काया वन्त ।
अनन्य मय आस्तित्व में, निश्चित अणु महन्त॥४॥

अर्थ--अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, एक धर्म, एक अधर्म एक आकाश ये सब अपने अस्तित्व (सत्ता) में निश्चित हैं और अपनी सत्ता से अपृथंग्भूत (एकमेक) हैं और प्रदेशों में अनेक (बहुप्रदेशी) हैं ॥ ४ ॥

आगे--पंचास्तिकाय के सामान्य विशेष कायत्व को प्रगट करते हैं।

जेसिं अत्थिसहाओ, गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं, जेहिं तइलुक्कं ॥ ५ ॥

नाना गुण पर्याय युत जिनका अस्तिस्वरूप।
अस्तिकाय तिन को कहें, उपजा त्रिभवन रूप॥५॥

अर्थ--जिन पांच अस्तिकायों का नाना प्रकार के गुण और पर्यायों के साथ अस्तित्व भाव है वे अस्तिकाय होते हैं। जिन्हों के द्वारा यह तीन लोक रचा हुआ है ॥ ५ ॥

आगे—पंचास्तिकाय और काल को द्रव्य संज्ञा कहते हैं।

ते चेव अत्थिकाया, ते कालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं, परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥ ६ ॥

अस्तिकाय ध्रुव परिणवे, भाव त्रिकालिक मान।
काल द्रव्य संयुक्त ही, छहूं द्रव्य पहिचान ॥६॥

अर्थ—ये ही ऊपर कहे पाँच अस्तिकाय द्रव्यों का परिवर्तन करना है चिन्ह जिसका ऐसे काल सहित तीन काल सम्बन्धी पर्यायों में परिणमन करते हुये द्रव्य पने को प्राप्त होते है ॥ ६ ॥

आगे—छहों द्रव्य परस्पर मिलाप रखते हुये भी अपने अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते।

अण्णोण्णं पविसंता, दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं, सगं सभावं ण विजहंति ॥ ७ ॥

अन्य अन्य में आय कर, देइं परस्पर थान ।
और सदा मिलते रहें, अपनी करें न हान ॥७॥

अर्थ—अन्य क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में परस्पर सम्बन्ध के लिये आते हुये एक दूसरे को परस्पर अवकाश देते हुये और सर्व काल परस्पर मिलते हुये भी अपने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं ॥ ७ ॥

आगे—सत्ता का स्वरूप कहते हैं ।

सत्ता सव्वपयत्था, सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता, सप्पडिवक्खाहवदि एक्का ॥ ८ ॥

इक सत्ता सब द्रव्य में, बहु पर्यय बहु रूप ।
उतपाति व्यय ध्रुव रूप है, प्रतिपक्षी युत भूप ८॥

अर्थ—अस्ति रूप सत्ता सब पदार्थों में रहने वाली है । नाना स्वरूप को रखने वाली है । अनन्त पर्यायों को धारने वाली है । उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है । एक है अर्थात महा सत्ता की की अपेक्षा एक है और अपने प्रतिपक्ष सहित है ॥ ८ ॥

आगे—सत्ता और द्रव्य का स्वरूप दिखाते हैं ।

दवियदि गच्छदि ताइं, ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।
दवियं तं भण्णंते, अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥ ९ ॥

निज निज गुण पर्याय में, प्राप्त होय जो कोय ।
उसे द्रव्य जिनवर कहें, जो सत्ता मय होय ॥९॥

चित्र नं० ९

पंचास्ति काय गाथा ७ का भाव

परस्पर स्थान दान

अर्थ--जो अपने अपने स्वभाव रूप पर्यायों को द्रवण करे प्राप्त करे उसको द्रव्य कहते हैं परन्तु वह द्रव्य सत्ता से अभिन्न है ॥९॥

आगे—द्रव्य के तीन प्रकार लक्षण दिखाते हैं।

दव्वं सल्लक्खणियं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं, वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥ १० ॥

सत्ता लक्षण द्रव्य है, उतपाति व्यय ध्रुव युक्त ।
गुण पर्यय आधार है, कहै केवली मुक्त ॥ १० ॥

अर्थ—जो सत लक्षण वाला है उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है अथवा गुण और पर्यायों का आश्रय रूप है उसको सर्वज्ञ भगवान द्रव्य कहते है ॥ १० ॥

आगे - द्रव्य के लक्षण को दिखाते हैं।

उप्पत्तीव विणासो, दव्वस्स यणत्थि अत्थि सब्भावो ।
विगमुप्पादधुवत्तं, करेंति तस्सेव पज्जाया ॥ ११ ॥

उतपति व्यय नहिं द्रव्य में, सत्तामात्र स्वरूप ।
तिसकी ही पर्याय है उतपाति व्यय ध्रुव रूप ११॥

अर्थ—द्रव्य का उपजना और विनसना नहीं होता किन्तु उस का सत्ता मात्र अस्तिपना है उस ही की पर्यायें व्यय उत्पाद तथा ध्रुवपना करती हैं ॥ ११ ॥

आगे द्रव्य और पर्यायों को अभेद दिखाते हैं।

पज्जयविजुदं दव्वं, दव्व विजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति ॥ १२ ॥

द्रव्य विना पर्यय नहीं, पर्यय विना न दर्व।
श्रमण द्रव्य पर्याय को, अनन्य भाषेसर्व ॥ १२ ॥

अर्थ—पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं मुनि गण दोनों का एक अभेद रूप भाव कहते हैं ॥ १२ ॥

आगे—द्रव्य और गुण में अभेद दिखाते हैं।

दव्वेण विणा ण, गुणगुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो, दव्वगुणाणं हवदि तह्मा ॥ १३ ॥

द्रव्य विना नाहिं गुण मिलें, गुण विन द्रव्य न होय।
इस कारण गुण द्रव्य में, जुदा न दीसे कोय ॥१३॥

अर्थ—द्रव्य के विना गुण नहीं हो सकते तथा गुणों के विना द्रव्य नहीं है इसलिये द्रव्य और गुणों का अभिन्न भाव होता है ॥१३॥

आगे—सप्त भङ्गवाणी का स्वरूप कहते हैं।

सिय अत्थि णत्थि उहयं, अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं, आदेसवसेण संभवदि ॥ १४ ॥

है ना उभयी वचन विन, फेर भंग त्रय ठान।
द्रव्यविवित्ता वस कथन, सप्त भंग परमान १४॥

अर्थ—द्रव्य प्रगट पने विवक्षा या प्रश्नोत्तर के कारण से सात भेद रूप होता है जैसे स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् उभय, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य स्यात्, नास्ति अवक्तव्य; स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ॥ १६ ॥

आगे—द्रव्य विना सप्त भङ्ग कैसे ? उसका समाधान।

भावस्स णत्थि णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जएसु भावा, उप्पादवए पकुव्वंति ॥ १५ ॥

नहीं वस्तु का नाश है, नाहिं अवस्तु उत्पाद।
वस्तुहिं गुण पर्याय में, करती व्यय उत्पाद ॥१५॥

अर्थ--सत् रूप पदार्थ का नाश नहीं होता है। वैसे ही असत् का उत्पाद या जन्म नहीं होता। पदार्थ अपने गुण पर्यायों में उत्पाद व व्यय करते रहते हैं ॥ १५ ॥

आगे--छहों द्रव्यों में जीव के गुण पर्यायों को कहते हैं।

भावा जीवादीया, जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणर णारय तिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥१६॥

छहों वस्तु में जीव गुण, चेतनता उपयोग।
नर नारक पशु देव बहु, जीव अवस्था योग१६॥

अर्थ--सत् रूप पदार्थ जीव आदि छह है। उन में जीव के गुण चेतना और उपयोग हैं और देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच ये जीव की बहुत सी पर्यायें हैं ॥ १६ ॥

आगे--पदार्थ के नाश और उत्पाद को निषेधते हैं।

मणुसत्तणेण णट्ठो, देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्त जीवभावो, ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥१७॥

जीव मनुज नस देव हो, या नारक तिर्यंच।
जीव वस्तु दोनों जगह, नसा न उपजा रंच १७॥

अर्थ यह जीव मनुष्य पर्याय से नष्ट होता है देव अथवा दूसरा कोई पर्याय पैदा हो जाता है दोनों ही अवस्था में जीव द्रव्य न तो नाश होता है न दूसरा कोई उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

आगे निश्चय से न उपजता है न विनशता है ऐसा कहते हैं।

सो चेव जादि मरणं, जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो ।
उप्पण्णो य विणट्ठो, देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥ १८ ॥

वह उपजा जो मरा था, मरा न उपजा कोय ।
उपजा विनशा देव नर, हैं ते पर्यय दोय ॥१८॥

अर्थ—वही जीव उत्पन्न होता है जो मरण को प्राप्त होता है वास्तव में जीव न नष्ट हुआ और न पैदा हुआ देव या मनुष्य पर्यायें ही उत्पन्न और नाश होती हैं ॥ १८ ॥

आगे—निश्चय नय से सत का नाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं यह कहते हैं ।

एवं सदो विणासो, असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो ।
तावदिओ, जीवाणं, देवो मणुसोत्ति गदिणामो ॥१९॥

सत स्वरूप को नाश नहि नहीं असत उत्पाद ।
यह जीवों का देव नर, गती नाम विख्यात।१९॥

अर्थ – इस तरह जैसे पहले कह चुके हैं सत पदार्थ जीव का नाश और असत् पदाथ जीव नहीं है उसका जन्म नहीं होता संसारी जीवों की जो इतने प्रमाण स्थित है सो उनके देव या मनुष्य गति नाम कर्म के उदय का विपाक है ॥ १९ ॥

आगे—सर्वथा प्रकार से संसार का अभाव रूप सिद्ध पद को दिखाते हैं

णाणावरणादीया, भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ।
तेसिमभावं किच्चा, अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥२०॥

अष्ट कर्म के भाव सब, पूरव बांधे जीव ।
उनको क्षय कर मूल से, अनुपम सुःख सदीव२०

चित्र नं० १०

पंचास्तिकाय गाथा १९-२० की टीका का भाव

अर्थ—इस संसारी जीव के ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार कर्म की अवस्थायें गाढ रूप से बंधी हुई हैं। उन सब को नाश कर के जो पहिले कभी नहीं हुआ ऐसा सिद्ध हो जाता है॥ २० ॥

आगे—जीव अपने विद्यमान पर्याय का नाश तथा अविद्यमान पर्याय का उत्पाद कर्ता है यह दिखाते हैं।

एवम् भावमभावं, भावाभावं अभावभावं च ।
गुणपज्जयेहिं सहिदो, संसरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥

गति में भाव अभाव अरु, करता भावाभाव ।
अरु अभाव भावहिं सहित गुण पर्याय स्वभाव२१

अर्थ—इसी तरह अपने गुण और पर्यायों के साथ में रहता हुआ यह जीव इस संसार में भ्रमण करता हुआ उत्पाद और नाश को (वर्तमान पर्याय के नाश को व भविष्य की पर्याय के उत्पाद को) करता रहता है॥ २१ ॥

आगे—पंचास्तिकाय के नाम स्थापन करते हैं।

जीवापुग्गलकाया, आयासं अत्थिकाइयासेसा ।
अमया अत्थित्तमया, कारण भूदा हि लोगस्स ॥२२॥

काय वंत पुद्गल जिया, अरु नभ धर्म अधर्म ।
स्वयं सिद्ध सत्ता मई, लोक निमित्तक पर्म ॥२२॥

अर्थ—अनन्त जीव अनन्त पुद्गल एक आकाश शेष दो धर्म और अधर्म द्रव्य ये पांच अस्तिकाय अकृतिम हैं अपनी सत्ता को रखने वाले है तथा निश्चय से इस लोक के कारण रूप हैं॥२२॥

आगे—काल को द्रव्य संज्ञा कहते हैं।

सब्भावसभावाणं, जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टन संभूदो, कालोणियमेण पराणत्तो॥ २३ ॥

उतपाति व्यय ध्रुव रूप में, प्राणी पुद्गल दोय।
नव जीरण परिणाम यह, समझ काल से होय२३

अर्थ—सत्ता रूप स्वभाव को रखने वाले जीवों को वैसे ही पुद्गलों के परिणमन में जो निमित्त कारण हो सो निश्चय करके काल द्रव्य कहा गया है॥ २३ ॥

आगे—निश्चय काल का स्वरूप कहते हैं।

ववगदपण वरणरसो, ववगददो गंध अट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो, वट्टन लक्खो य कालोत्ति॥२४॥

फर्श वर्ण रस गंध के, सव भेदों को टाल।
अगुरुलघू युत रूप विन, परिवर्तन गुण काल२४

अर्थ—जो पांच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध व आठ स्पर्श से रहित है अगुरु लघु गुण के द्वारा षट् गुणी हानि वृद्धि सहित है। अमूर्तीक होने से सूक्ष्म है इन्द्रियगोचर नहीं है तथा जो वर्तना लक्षण कर युक्त है ऐसा काल द्रव्य है॥ २४ ॥

आगे—व्यवहार काल का स्वरूप कहते हैं।

समओणिमिसो कट्ठा, कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासो दु अयण संवच्छरोत्ति कालोपरायत्तो॥ २५ ॥

समय निमिष कष्ठा कला, घड़ी और दिन रात।
महिना ऋतु सवम्त विविधि, बाह्य काल की जात२५

अर्थ—समय, निमिष काष्ठा कला और दिन, रात, मास व

अयन, संवत आदि काल के भेद पराश्रय से कहे सो जानना २५

आगे—व्यवहार काल की पराधीनता दिखाते हैं।

णत्थि चिरं वा खिप्पं, मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पुग्गलदव्वेण विणा, तह्मा कालो पडुच्चभवो ॥ २६ ॥

बिना काल परिणाम के, बने विलंब न हाल।
पुद्गळ परिणति के बिना, सिद्धि न सत्ता काल२६

अर्थ—काल परिणाम के विना देर या जल्दी का व्यवहार नहीं होता है। निश्चय से वह काल भी पुद्गल द्रव्य के विना नहीं होता। इसलिये काल पुद्गल के निमित्त से हुआ ऐसा कहा जाता है २६

इति सामान्यस्वरूपाधिकारः

अथ विशेषस्वरूपाधिकारः—

आगे—विशेष व्याख्यान में पहिले जीव का स्वरूप दिखाते हैं।

जीवोत्ति हवदि चेदा, उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो, ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ २७ ॥

जीव रूप चैतन्य गुण, प्रभु उपयोग विशेष।
कर्ता भोक्ता देह वत; कर्म सहित विन भेष॥२७॥

अर्थ—यह जीव जीने वाला है, चेतना सहित चेतने वाला है, उपयोग सहित है, प्रभू है, करने वाला और भोगने वाला है, शरीर प्रमाण आकारधारी है: निश्चय से अमूर्तीक है तथा कर्म सहित है इन नौ अधिकारों को रखने वाला है ॥ २७ ॥

आगे—मोक्ष प्राप्त जीवों के स्वरूप को दिखाते हैं।

कम्ममलविप्पमुक्को, उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरसी, लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥२८॥

कर्म मैल से मुक्त तब, लोक शिखर विश्राम।
सर्व ज्ञान दर्शी भया, है अनन्त सुख धाम॥२८॥

अर्थ--वह संसारी जीव कर्मों के मल से मुक्त होकर सर्वज्ञ और सर्व दर्शी होता हुआ लोकाकाश के अन्त में प्राप्त होकर इन्द्रिय रहित व अन्तरहित सुख को अनुभवता है॥ २८ ॥

आगे--इसी अर्थ को विशेष समझाते हैं।

जादो सयं स चेदा, सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पप्पोहि सुहमणंतं, अव्वावाधं सगममुत्तं ॥ २९ ॥

हुआ स्वयं यह आतमा, ज्ञाता दृष्टा वन्त।
मूर्त विना वाधा रहित, पावे सुःख अनन्त॥२९॥

अर्थ—वह आत्मा अपने आप ही सर्वज्ञ और सर्व लोक का देखने वाला होता हुआ अन्त रहित वाधा रहित अपने आत्मा से ही उत्पन्न तथा अमूर्तीक सुख को पाता है अनुभवता है २९

आगे—जीवत्व गुण का व्याख्यान करते हैं।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि, जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण, वलमिंदियमाउ उस्सासो ॥३०॥

जिया जिये अव जी रहा, चार प्राण आधार।
आयू इन्द्रिय स्वास वल, जीव प्राण ये चार॥३०॥

अर्थ—जो चार प्राणों से प्रगटपने जीता है जीवेगा व पूर्व में जीता था वह जीव है तथा प्राण, वल, इन्द्रिय, आयु स्वासोस्वास है॥ ३० ॥

आगे—जीवों का प्रदेशों की अपेक्षा प्रमाण कहते हैं और संसारी मुक्त के भेद दिखाते हैं।

अगुरुलहुगा अणंता, तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
देसेहिं असंखादा, सियलोगं सव्वमावण्णा ॥ ३१ ॥

केचित्तु अणावण्णा, मिच्छादंसण कसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं बहुगा, सिद्धा संसारिणो जीवा ॥३२॥

अगुरुलघू गुण नंत है, तिन कर सब जिय युक्त।
कोई असंख्य प्रदेशवत, समुद्घात संयुक्त ॥३१॥

निज शरीर वत नंत है, राग द्वेष कर युक्त।
संसारी ते जीव हैं, शेष अनंते मुक्त ॥ ३२ ॥

अर्थ--अगुरुलघु गुण अनन्त हैं तिन अनन्त गुणों से परिणमन करते हुये सब जीव प्रदेशों में असंख्यात प्रदेशी हैं। किसी (समुद्घात) अपेक्षा से सर्व लोक में व्याप्त होते हैं परन्तु कितने ही व्याप्त नहीं होते हैं। मिथ्यादर्शन कषाय व योग सहित बहुत संसारी जीव हैं तथा उन से रहित सिद्ध हैं ॥ ३१-३२ ॥

आगे—देह मात्र जीव किस तरह हैं उसका दृष्टान्त कहते हैं।

जह पउमरायरयणं, खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो, सदेहमत्तं पभासयदि ॥ ३३ ॥

पद्म राग मणि दूध में, जैसे करे प्रकाश।
त्यों प्राणी निज देह में, करता सदा निवास ३३।

अर्थ—जैसे पद्मराग मणि दूध में डाली दूध को प्रकाश करती है तैसे संसारी जीव शरीर में तिष्ठा हुआ अपने शरीर मात्र को प्रकाश करता है ॥ ३३ ॥

अथ मासिक पाठ में चतुरदश दिवसः—

आगे—जीव को देह से अन्य देह में अस्तित्व और जुदा दिखाते हैं।

सवत्थ अत्थि जीवो, ण य एक्को एक्ककाय एक्टो।
अज्भवसाणविसिट्ठोचिट्ठदि, मलिणो रजमलेहिं।३४।

यदपि देह में जीव है, तदपि भिन्न पहिचान।
कर्म मैल अज्ञान से, भ्रमे मीलनता ठान॥३४॥

अर्थ—यह जीव सर्वत्र अपनी सर्व भूत भावी वर्तमान पर्यायों में अस्ति रूप है। वही किसी एक शरीर में एकमेक होकर रहता है तथापि उससे एकमेक होकर उसमा नहीं हो जाता है। रागादि (अध्यवसान) सहित जीव कर्म रूपी रज के मैल के कारण अशुद्ध होता हुआ संसार में भ्रमण करता है॥ ३४॥

आगे—सिद्ध के जीव का स्वभाव दिखाते हैं।

जेसिं जीवसहाओ, णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमदीदा॥३५॥

प्राण रहित जे जीव हैं, प्राण रहित नहि रीत।
सिद्ध देह से भिन्न हैं, उपमा वचनातीत॥३५॥

अर्थ—सिद्धों के संसारी जीवों जैसा अशुद्ध स्वभाव (प्राण) नहीं है किन्तु उस जीव के अस्तित्व का सर्वथा अभाव भी नहीं होता चेतन्य प्राण होते हैं वे सर्व देहों से जुदे वचनों से अगोचर ऐसे सिद्ध भगवान होते है॥ ३५॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो,जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि,कारणमवि तेण ण स होदि३६।

सिद्ध न उपजा काहु से, इससे कार्य न कोय।
और न उपजावे कछु, पर कारण मत जोय३६॥

अर्थ--वे किसी से भी उत्पन्न नहीं हैं इस कारण से वह सिद्ध भगवान कार्य नहीं है तथा किसी को भी उत्पन्न नहीं करते इस कारण से वह सिद्ध भगवान कारण भी नहीं होते ॥ ३६ ॥

आगे--जीव का अभाव मोक्ष में जो मानते हैं उसको समझाते हैं।

सस्सदमध उच्छेदं, भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णा णमविण्णाणं, णवि जुज्जदि असदि सब्भावे॥३७

सिद्ध विना किसके बने, भाव ज्ञान अज्ञान।
थिर व्यय भव्य अभव्य अरु, सून्य असून्य विज्ञान३७

अर्थ--शाश्वतपना और व्ययपना, भव्यपना और अभव्यपना, शून्यपना और अशून्यपना विज्ञान तथा अविज्ञान सिद्ध जीव की सत्ता विद्यमान न रहते हुये नहीं हो सकते और यदि सत्ता है तो वे सब हैं ॥ ३७ ॥

आगे--चेतना के भेदों को दिखाते हैं।

कम्माणंफलमेक्को, एक्को कज्जं तु णाण मध एक्को।
चेदयदि जीवरासी, चेदगभावेण तिविहेण ॥ ३८ ॥

एक कर्म फल भोगवे, दूजे उद्यमवान।
त्रितिय ज्ञान में लीन हैं, त्रिविधि चेतना जान३८।

अर्थ- एक जीवों का समुदाय कर्मों के फल को और एक जीव राशि कार्य को तथा एक जीव राशि ज्ञान को वेदती है या अनुभव करती है इस तरह तीन तरह की चेतना के भाव से जीवों के अनुभव होता है ॥ ३८ ॥

आगे चेतनाधारी जीवों को फल सहित दिखाते हैं।

सव्वे खलु कम्मफलं, थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता, णाणं विंदंति ते जीवा ॥ ३९ ॥

थावर भोगे कर्म फल, उद्यम से त्रस काय।
प्राण रहित जे जीव हैं, ज्ञान चेतना राय ॥३९॥

अर्थ—वास्तव में सर्व स्थावर काय धारी जीव कर्मों के फल को निश्चय से त्रस जीव कार्य सहित कर्म फल को और जो प्राणों से रहित हैं वे जीव ज्ञान को अनुभव करते हैं ॥ ३९ ॥

आगे—उपयोग गुण का व्याख्यान करते हैं।

उवओगो खलु दुविहो, णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं, अणण्णभूदं वियाणीहि ॥ ४० ॥

द्विविधि रूप उपयोग है, दर्शन ज्ञान पिछान।
सदा जीव में एक है, भिन्न प्रदेश न मान ॥४०॥

अर्थ—उपयोग वास्तव में दो प्रकार हैं ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग सो सर्व काल इस जीव से एक रूप हैं जुदा नहीं है ऐसा जानो४०।

आगे—ज्ञानोपयोग के भेद दिखाते हैं।

आभिणिसुदोधिमण, केवलाणि णाणाणि पंजभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि, य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्तो॥४१

मति श्रुत मनपर्यय अवधि, केवल पांचो ज्ञान।
कुमति विभंगा श्रुतइतर, अष्ट भेद पहिचान४१

अर्थ—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ये पांच सम्यग्यज्ञान हैं और कुमति कुश्रुत विभंगा ऐसे तीन अज्ञानों से संयुक्त सर्व आठ भेद ज्ञान के होते हैं ॥ ४१ ॥

आगे—दर्शनोपयोग के भेद और स्वरूप को कहते हैं।

दंसणमवि चक्खु जुदं, अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं
अणिधणमणंत विसयं, केवलियं चाविपरणत्तं ॥४२ ॥

दर्शन चक्षु अचक्षु कर; और अवधि पहिचान।
अंत रहित वस्तू लखे, केवल दर्शन मान ॥४२॥

अर्थ—दर्शन भी चक्षु अचक्षु और अवधि सहित तैसे ही अंत रहित अनंत को विषय करने वाला केवल दर्शन कहा गया है ॥ ४२ ॥

आगे - एक आत्मा के अनेक ज्ञान होते हैं।

ण वियप्पदि णाणादो, णाणीणाणाणि होंतिणेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूवं, भणियं दवियत्ति णाणीहिं ॥ ४३ ॥

ज्ञानी ज्ञान अभेद है, ज्ञान अनेक प्रकार।
इससे द्रव्य अनेक विधि, कहें बोध विस्तार॥४३॥

अर्थ—ज्ञानी आत्मा ज्ञान गुण से भिन्न नहीं हैं तथा ज्ञान अनेक प्रकार मति आदि रूप से होते हैं इस लिये ही ज्ञानियों के द्वारा नाना जीव द्रव्य है ऐसा कहा गया है ॥ ४३ ॥

आगे—द्रव्य गुण भिन्न होवें तो उसके दोष को दिखाते हैं।

जदि हवदि दव्वमरणं, गुणदो य गुणा य दव्वदो अरणे।
दव्वाणंतियमधवा, दव्वा भावं पकुव्वंति ॥ ४४ ॥

यदि गुण द्रव्य विभिन्न हों, तो अंशी बिन अंश।
धारे द्रव्य अनेकता, नशे द्रव्य का वंश ॥४४॥

अर्थ—द्रव्य, गुण से अन्य होवे और गुण भी द्रव्य से भिन्न हो तो द्रव्यों के अनन्त पने को अथवा द्रव्य के नाश को कर डालें ४४

आगे—गुण गुणी में भेद नहीं है एकता है यह दिखाते हैं।

अविभत्तमणएणत्तं, दव्वगुणाणं विभत्तमरणत्तं।
णिच्छंति णिचयएहूं, तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥ ४५ ॥

ऐक्य अभेद जु द्रव्य गुण, तिन में अन्य विभाग।
निश्चयवादी नहिं चहें, तदविपरीत विभाग४५॥

अर्थ—द्रव्य और गुणों का एक भाव है इसलिये अभेद है और एक प्रदेशी हैं। इन का अन्य भेद (जो सम्बोधन के लिये किया है) निश्चय के ज्ञाता उस से विपरीत (प्रदेश भेद) नहीं चाहते ४५

आगे—नामादिक भेदों से द्रव्य और गुण में भेद दिखाते हैं।

ववदेसा संठाणा, संखा विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणएणत्ते, अरणत्ते चावि विज्जंते ॥ ४६ ॥

नाम रूप गणना विषय, बहु प्रकार से जान।
ते उन भेद अभेदमें, घट सकते पहिचान ॥४६॥

अर्थ—कथन (संज्ञा) के भेद, आकार के भेद, संख्या (गणना) और विषय (आधार) ये बहुत प्रकार के होते हैं। ये चारों उस द्रव्य और गुणों की एकता में तैसे ही भिन्न पने में होते हैं ४६

आगे—भेद अभेद का स्वरूप दृष्टान्त से दिखाते हैं।

णाणंधनं च कुव्वदि, धणिणं जह णाणिणं च दु विधेहिं।
भएणंतितह पुधत्तं, एयत्तं चावि तच्चएहू ॥ ४७ ॥

ज्ञानी ज्ञानरु धन धनी जैसे दो विधि भेद।
त्यों एकात्व पृथक्त्व में ज्ञानी करें प्रभेद ॥४७॥

अर्थ—जैसे ज्ञान ज्ञानी में प्रदेश अभेद है और धन धनी में प्रदेश भेद है तैसे तत्वज्ञानी अभेद को एकत्व और भेद को प्रथकत्व कहते हैं ॥ ४७ ॥

आगे—ज्ञानी और ज्ञान में भेद माना जाय तो बड़ा दोष आता है।

णाणी णाणं च सदा, अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स ।
दोण्हं अचेदणत्तं, पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ४८ ॥

ज्ञानी ज्ञान अभेद विन, है जड़ दोनों ऐन ।
भेद सर्वथा मत करो, यही जिनेश्वर वैन ॥४८॥

अर्थ—ज्ञानी आत्मा और उसका ज्ञान एक दूसरे से हमेशा यदि भिन्न पदार्थ हों तो दोनों आत्मा और ज्ञान को अचेतनापन प्राप्त हो जायगा। यह भले प्रकार जिनेन्द्र देव का कथन है ॥ ४८ ॥

आगे—ज्ञान और ज्ञानी मिलाप कर एक हैं ऐसी एकता का निषेध करते हैं।

णहि सो समवायादो, अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी ।
अण्णाणीति य वयणं, एगत्तप्प साधगं होदि ॥ ४९ ॥

ज्ञानी ज्ञान विभिन्न है, मिलाप से यदि एक ।
अज्ञानी इस कथन से, होवे एकमएक ॥४९॥

अर्थ—ज्ञानी और ज्ञान भिन्न हैं। मिलाप (समवाय) से एकता है ऐसा माना जाय तो अज्ञानी अज्ञान से एकमेक ठहरे (अज्ञान से कभी मुक्त न हो) यह दोष आता है। इसलिये ज्ञान और ज्ञानी (गुण गुणी) मिलाप से एक नहीं हैं अनादि एकता है ॥४९॥

आगे—गुण गुणी की अनादि एकता को प्रगट करते हैं।

समवत्ती समवाओ, अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।
तम्हा दव्वगुणाणं, अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा ॥ ५० ॥

सम वृत्ती समवाय है, अंग भेद नहिं कोय।
इस कारण गुण द्रव्य में, आदि एकता होय ५०॥

अर्थ—द्रव्य और गुण का साथ साथ रहना समवाय है यही अप्रथग्भूत (अभिन्न) है तथा यही अयुत सिद्धपना (कभी मिलकर नहीं हुआ) है इसलिये द्रव्य और उसके गुणों का अयुत सिद्धपना है ऐसा कहा गया है ॥ ५० ॥

आगे—गुण गुणी की एकता का दृष्टान्त दार्ष्टान्त से दिखाते हैं।

वण्ण रसगंध फासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि।
दव्वादो य अणण्णा, अण्णत्तपगासगा होंति ॥ ५१ ॥

दंसणणाणाणि तहा, जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं, कुव्वंति हि णो सभावादो ॥ ५२ ॥

फर्श वर्ण रस गंध जिमि, परमाणू के मांहि।
सम्बोधन के भेद त्यों, जुदे द्रव्य से नांहि ॥५१॥

दर्शन ज्ञान निबद्ध हैं, जीव रूप में एन।
भेद किया सम्बोधने, यही जिनेश्वर वैन ॥५२॥

अर्थ—वर्ण रस गन्ध, स्पर्श परमाणु में कहे हुए गुण पुद्गल द्रव्य से अभिन्न हैं तो भी व्यवहार से संज्ञादि की अपेक्षा भेद पने के प्रकाशक हैं। तैसे जीव से तादात्म्य सम्बन्ध रखने वाले दर्शन और ज्ञान गुण जीव से अभिन्न हैं सो संज्ञा आदि से परस्पर भिन्न पना करते हैं। निश्चय से स्वभाव से पृथक पना नहीं कर

ते ॥ ५१-५२ ॥

आगे—जीवों में भावों की अपेक्षा अनादि अनन्त पना आदि दिखाते हैं

जीवा अणाइणिहणा, संता णंता य जीवभावादो।
सब्भावदो अणंता, पंचग्गगुणप्पधाणा य ॥ ५३ ॥

जीव अनादि अनंत हैं, वे ही सादि अनंत।
संख्या सर्व अनंत है, पंच भाव वरतंत ॥५३॥

अर्थ—पारिणामिक भाव की अपेक्षा जीव अनादि निधन है। उपशम भाव की अपेक्षा जीव सादिसांत है। औदयिक और क्षायोपशमिक भाव की अपेक्षा भी सादि सांत है क्योंकि कर्म बंधे हैं और निर्जरे हैं। उनको सन्तान उत्पत्ति की अपेक्षा देखा जाय तो भव्य के अनादि सांत हैं, अभव्य के अनादि निधन हैं। सब जीवों की संख्या अनन्त है और ये पाँचभावों की प्रधानता से प्रवर्ते हैं ॥ ५३ ॥

आगे—उपरोक्त विरोध को अविरोध कर दिखाते हैं।

एवं सदो विणासो, असदो जीवस्स होइ उप्पादो।
इदिजिणवरेहिं भणिदं, अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ५४॥

इस प्रकार सत द्रव्य नशि, होय असत पर्याय।
यह विरोध अविरोध कर, जिनवर दिया दिखाय५४॥

अर्थ—ऊपर कहे प्रमाण पर्याय की अपेक्षा से जीव के विद्यमान पर्याय का नाश व अविद्यमान पर्याय का जन्म होता है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है यह बात परस्पर विरोध रूप है तथापि विरुद्ध नहीं है ॥ ५४ ॥

आगे—जीव के उत्पाद व्यय में कारण कर्म उपाधि को दिखाते हैं।

नादि नंत जिय भाव निज, उपशम सादी सांत।
क्षापक भाव अनंत है, शेषअनादी सांत॥ दो०५३॥

णेरइ यतिरियमणुआ, देवा इदिणाम संजुदा पयडी।
कुव्वंति सदो णासं,असदो भावस्स उप्पादं ॥ ५५ ॥

नर नारक खग देव ये, कर्म प्रकृति हैं नाम।
व्यय सत उतपाति असत में,करती इनका काम ५५

अर्थ-- नारक तिर्यञ्च मनुष्य देव ये गति नाम कर्म की प्रकृतियां हैं सो विद्यमान पर्याय का नाश और अविद्यमान पर्याय का जन्म करती हैं ॥ ५५ ॥

आगे— जीव के पांच भावों का वर्णन करते हैं ।

उदयेण उवसमेण य,खयेण दुहिं मिस्सि देहिं परिणामे
जुत्ता ते जीव गुणा, बहुसुय अत्थेसु विच्छिण्णा ॥५६॥

कर्म उदय उपशम क्षयी, मिश्र और जीवत्व।
कहे जीव गुण पांच ये, इन में बहु विधि सत्व ५६

अथ—वे परमागम में प्रसिद्ध हैं जीव के परिणाम कर्मों के उदय से हो ने वाले औदयिक कर्मों के उपशम से होने वाले औप शमिक और कर्मों के क्षयसे होने वाले क्षायिक दोनों क्षय और उपशम के मिश्र से होने वाले क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक भावों से संयुक्त बहुत से भेदों में फैले हुए हैं ॥ ५६ ॥

आगे—औदयिक आदि पांच भावों का कर्ता जीव को दिखाते हैं।

कम्मं वेदयमाणो, जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता,हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥५७॥

जीव कर्म के उदय से करता जो परिणाम।
उसका कर्ता जीव को, माने ज्ञानी राम ॥५७॥

अर्थ—कर्मोंको भोगता हुआ यह जीव जिस तरह का भाव करता है वह जीव उसी कारण से उसी भाव का कर्ता होता है ऐसा व्याख्यान जिन शासन में किया गया है॥ ५७ ॥

आगे--द्रव्य कर्म का निमित्त पाकर औदयिकादि चार भावों का कर्ता जीव होता है।

कम्मेण विणा उदयं, जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा ।
खइयं खओवसमियं, तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥ ५८ ॥

द्रव्य कर्म बिन जीव के, उपशम उदय न जान ।
क्षायक वेदक भाव ये, किये कर्म नें मान ॥५८॥

अर्थ--द्रव्य कर्मों के सम्बन्ध बिना इस जीव के औदयिक औपशमिकक्षायक या क्षयोपशमिक भाव नहीं होता है इस लिये ये सब भाव कर्म कृत हैं ॥ ५८ ॥

आगे जो भावों का कर्ता द्रव्य कर्म कहा जाय तो दूषण है सो दिखाते हैं।

भावो जदि कम्मकदो, अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता, अण्णं सगं भावं॥५९॥

होंय भाव यदि कर्म कृत जीव अकर्ता भेष ।
यासो कर्ता भाव निज, पर को गहे न लेष५९॥

अर्थ यदि रागादि भाव कर्म कृत ही हों तो किस तरह आत्मा भाव कर्मों का कर्ता होवे क्योंकि यह आत्मा अपने ही भाव को छोड़ कर और कुछ भी द्रव्य कर्म आदि को नहीं करता है ॥ ५९ ॥

आगे जीव कर्म में परस्पर निमित्त मात्रत्वको सिद्ध करते हैं।

भावो कम्मणिमित्तो, कम्मं पुण भाव कारणं हवदि ।
ण दु तेसिं खलु कत्ता, ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥ ६० ॥

कर्म निमित से भाव हैं, भाव निमित से कर्म।
कर्ता कर्म न परस्पर, कर्ता विना न कर्म ॥६०॥

अर्थ रागादि भाव तो कर्म के निमित्त से और कर्म भाव के निमित्त से होते हैं। उन द्रव्य और भाव कर्म का निश्चय से परस्पर उपादान कर्ता पना नहीं है परन्तु उपादान कर्ता के विना ये नहीं हुवे हैं ॥ ६० ॥

आगे जीव अपने भावों का कर्ता है पर का नहीं।

कुव्वं सगं सहावं अत्ता, कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पौग्गल कम्माणं, इदि जिण वयणं मुणेयव्वं६१॥

निज स्वभाव प्राणी करे, ताको कर्ता एन।
पुद्गल कर्म नहीं करे, यही जिनश्वर वैन ॥६१॥

अर्थ आत्मा अपने ही स्वभाव को कर्ता हुआ अपने ही भाव का कर्ता होता है पुद्गल कर्मों का कर्ता नहीं होता है एसा जिनदेव का वचन मानना योग्य है ॥ ६१ ॥

आगे निश्चय से कर्म अपने स्वरूप का कर्ता है।

कम्मं पि सगंकुव्वदि, सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ,कम्मसहावेण भावेण ॥ ६२ ॥

आप कर्म निज भाव से, करे बरावर काम।
कर्म रूप फिर जीव भी, करता निज परिणाम६२

अर्थ कर्म भी अपने स्वभाव से आप ही अपने द्रव्य कर्म पने का भले प्रकार करता है तैसे ही यह जीव भी रागादि कर्म रूप अपने भाव से अपने भावों को करता है ॥ ६२ ॥

आगे—अपना २ कर्म करते हैं तो जीव कर्म फल कैसे भोगता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो, अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्सफलं भुंजदि अप्पाकम्मंच देदि फलं ॥६३॥

कर्म कर्म यदि करत है, चेतन भी निज कर्म।
भोगे फल किमि आतमा, देवे फल किमि कर्म६३।

अर्थ--यदि द्रव्य कर्म अपने द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि को करता हैं और वह आत्मा अपने चेतन कम को करता है द्रव्य कर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा उस विना किये हुए कर्म के फल को भोगता है और वह जीव से विना किया हुआ कर्म फल कैसे देता है ॥ ६३ ॥

आगे—कर्म योग्य पुद्गल समस्त लोक में भरे हैं यह दिखाते हैं

ओगाढगाढणिचिदो, पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं वादरेहिं, य णंताणंतेहि विविहेहिं ॥ ६४ ॥

सर्व लोक पुद्गल भरे, गाढ़ागाढ़ महान।
सूक्षम वादर भेद वहु, नन्तानंत प्रमान ॥६४॥

अर्थ—यह लोक सब तरह से सूक्षम और स्थूल नाना प्रकार के अनंतानंतपुद्गल के स्कंधों से पूर्ण रूप से भरा हुआ है॥ ६४ ॥

आगे जब रागादि भावों से आत्मा परिणमता है तब पुद्गल बंध होता है।

अत्ता कुणदि सहावं, तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छन्ति कम्मभावं, अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥ ६५ ॥

जीव मोह कर्ता जहां, पुद्गल निज परिणाम।
कर्म रूप परिणत हुआ, एक क्षेत्र विश्राम॥६५॥

अर्थ—आत्मा अपने रागादि भाव करता है तब वहां प्राप्त पुद्गल स्कंध अपने ही स्वभाव से आत्म प्रदेशों के साथ परस्पर अवगाह रूप होकर अत्यन्तगाढ़पने के साथ द्रव्य कर्म पने को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

आगे कर्म स्वयं बन्धते हैं उसे दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं।

जह पुग्गलदव्वाणं, बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती।
अकदा परेहिं दिट्ठा, तह कम्माणं वियाणाहि ॥ ६६ ॥

जैसे पुद्गल द्रव्य में, बहुत भेद के खंध।
विना किये दीसे बहुत, जान कर्म त्यों फंध॥६६॥

अर्थ—जैसे पुद्गल द्रव्यों की बहुत प्रकार से स्कन्धों की रचना दूसरों से बिना की हुई दिखलाई पड़ती है तैसे कर्म वर्गणा स्वतः कर्म रूप परिणमन करती हैं ॥ ६६ ॥

आगे—जीव व्यवहार से कर्म द्वारा सुख दुःख भोगता है। इसमें कोई विरोध नहीं।

जीवा पोग्गलकाया, अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा, सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥ ६७ ॥

चेतन पुद्गल परस्पर, गाढ़ बंध चिर जान।
उदय काल रस दे खिरें, भोगे सुख दुख मान६७।

अर्थ—संसारी जीव और द्रव्य कर्म वर्गणाओं के पुन्ज परस्पर एक दूसरे में गाढ़ रूप से बंध रहे हैं। उदय काल में वे पुद्गल जीव से वियोग पाते हुए साता या असाता रूप सुख दुःख देते हैं तब जीव उनको भोगता है ॥ ६७ ॥

आगे—कर्ता कर्म पने को संक्षेप से कहते हैं।

तम्हा कम्मं कत्ता, भावेण हि संजुदोध जीवस्स ।
भोत्ता दु हवदि जीवो, चेदगभावेण कम्मफलं ॥६८॥

उभय करम निज निज करें, निमित परस्पर जान
राग भाव से भोगता; जीव कर्म फळ मान॥६८॥

अर्थ—इसलिये द्रव्य कर्म जीव के भाव से संयोग पाता हुआ निश्चय से अपनी कर्मरूप अवस्थाओं का कर्ता है। ऐसे ही जीव भी द्रव्य कर्म के उदय के निमित्त से अपने रागादि भावों का कर्ता है परन्तु जीव अकेला अपने अशुद्ध चेतन भाव से कर्मों के फल का भोगने वाला हो जाता है ॥ ६८ ॥

आगे—कर्म संयुक्त जीव की मुख्यता से प्रभुत्व गुण को कहते हैं।

एवं कत्ता भोत्ता, होज्झं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं ।
हिंडति पारमपारं, संसारं मोहसंछण्णो ॥ ६९ ॥

कर्म उदय से इसतरह, कर्ता भोक्ता जान ।
भ्रमे अंत अरु अंत विन, मोह आवरन ठान६९।

अर्थ—जैसा ऊपर कह चुके हैं इस तरह यह संसारी आत्मा अपने ही शुभ अशुभ द्रव्य भाव कर्मों के द्वारा कर्ता और भोक्ता होकर के मोह या मिथ्या दर्शन से छाया हुआ अन्त होने योग्य अथवा न होने योग्य संसार में परिभ्रमण किया करता है ॥ ६९ ॥

आगे—कर्म संयोग रहित जीव की मुख्यता से प्रभुत्व गुण को कहते हैं

उवसंतखीणमोहो, मग्गं जिण भासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी, णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥ ७० ॥

उपशम क्षायक धीर ही, जिन भाषित मग पाय ।
ज्ञान मार्ग चारी भये, शिवपुर गमन लहाय७०।

अर्थ--उपशम क्षायक सम्यग्दृष्टि हो जिन उपदेश को पाकर ज्ञान मार्गचारी होते हुये निर्वाण पाते हैं॥ ७० ॥

आगे—जीव द्रव्य के संयोग से भेद कहते हैं।

एक्को चेव महप्पा, सो दुवियप्पो त्ति लक्खणो होदि।
चदु चंकमणो भणिदो, पंचग्गगुणप्पधाणो य ॥ ७१ ॥
छक्कापक्कमजुत्तो, उवउत्तो सत्तभंगसब्भावो।
अट्ठासओ णवत्थो, जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥ ७२ ॥

एक दृष्टि से सिद्ध सम, दर्श ज्ञान कर दोय।
तीन चेतना चार गति, पांच भाव पन होय॥७१॥
दिशा गमन से भेद छह, सप्त भंग से सात।
अठ गुण अरु नव पद सहित, दस थानक दस जात७२

अर्थ—आत्मा जाति रूप से एक है। वही जीव उपयोग से दो प्रकार है। वही चेतना से तीन लक्षण वाला है। वही चार गति में घूमने से चार प्रकार है। यही पांच मुख्य भावों को धारने से पांच रूप है। वही छह दिशाओं में गमन करने से छह भेद रूप है। यही सात भङ्गों से सिद्ध होता है इससे सात रूप है। वही आठ गुणों का आश्रय होनेसे आठ रूप है। वही नव पदार्थों में व्यापक होने से नव रूप है। वही पृथिवी आदि दश स्थानों में प्राप्त है इससे यह जीव दश रूप कहा गया है ॥ ७१-७२ ॥

आगे--मुक्त जीव की ऊर्ध्व गति शेषों को छहों दिशा सिद्ध करते हैं।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेशबंधेहिं, सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ ७३ ॥

प्रकृति देश अनुभाग थिति. बंध मुक्त सब अंग।
ऊर्ध जांय अरु शेष सब, करें न विदिशा लंघ॥७३॥

अर्थ--प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध इन चार प्रकार के बन्धों से सर्व प्रकार छूट कर जीव ऊपर को सीधा जाता है शेष संसारी जीव चार विदिशाओं को छोड़ कर शेष छः दिशाओं में (अन्य गति में जाने की अपेक्षा) जाते हैं ७३॥

अथ मासिक पाठ में पंच दश दिवस :—

आगे—पुद्गल के भेद कहे जाते हैं।

खंधा य खंधदेसा, खंदपदेसा य होंति परमाणू।
इदि ते चदुव्वियप्पा, पोग्गलकाया मुणेयव्वा ॥७४।

खंद देश पर देश अरु, परमाणू चउ मान।
इस प्रकार सब भेद ये. पुद्गल काया जान॥७४॥

अर्थ--स्कन्ध और स्कन्ध देश तथा स्कन्ध प्रदेश ऐसे तीन प्रकार स्कन्ध तथा परमाणु ये चार भेद रूप पुद्गल काय जानने ॥ ७४ ॥

आगे--इन चार प्रकार के पुद्गलों का लक्षण कहते हैं।

खंधं सयलसमत्थं. तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो, परमाणू चेव अविभागी ॥ ७५ ॥

बहु समुदायक खंध है, अर्ध भाग है देश।
चौथाई पर देश है, परमाणू है शेष ॥७५॥

अर्थ—स्कंध बहुत से परमाणुओं का समुदाय है। उस के ही आधे परमाणुओं का स्कंध देश होता है। और उस आधे के भी आधे का स्कंध प्रदेश होता है और परमाणु विभाग रहित सब से सूक्ष्म होता है ॥ ७५ ॥

आगे—स्कन्धों का नाम व्यवहार से पुद्गल कहा जाता है।

वदरसुहुमगदाणं, खंधाणं पुग्गलोत्ति ववहारो।
ते होंति छप्पयारा, तेलोक्कं जेहिं णिप्पणं॥ ७६॥

वादर शूक्षम खंध जे, ते पुद्गल व्यवहार।
वे होते हैं छह तरह, तिन कर लोक विचार ७६

अर्थ—वादर और शूक्षम परिणमन को प्राप्त स्कन्धों को ये पुद्गल ऐसा कहना व्यवहार है। वे स्कन्ध छह प्रकार के होते हैं जिन से यह तीन लोक रचा हुआ है॥ ७६॥

आगे—परमाणु का स्वरूप कहते हैं।

सव्वेसिं खंधाणं, जो अंतो तं वियाण परमाणू।
सो सस्सदो असद्दो, एक्को अविभागी मुत्तिभवो ७७॥

अन्त भेद सव खंध का, परमाणु को मान।
अविनाशी अरु शब्द विन, अखंड मूरत वान ७७

अर्थ—सर्व स्कन्धों का जो अन्तिम भेद है उसको परमाणु जानो वह अविनाशी है शब्द रहित है एक है विभाग रहित है तथा मूर्तीक है॥ ७७॥

आगे—पृथ्वी आदि जाति के परमाणु जुदे नहीं यह दिखाते हैं।

आदेसमत्तमुत्तो, धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो॥ ७८॥

मूर्त युक्त वरणादि से, कारण धातू चार।
परमाणू परिणमन गुण, अशब्द ज्ञेया कार॥७८॥

अर्थ—जो कोई मूर्तीक कहलाता है वह चार धातुओं का कारण है परिणमन होना जिस का स्वभाव है और स्वयं शब्द रहित है सो परमाणु जानना चाहिये ॥ ७८ ॥

आगे—शब्द को पुद्गल की पर्याय सिद्ध करते हैं

सद्दो खंधप्पभवो, खंधो परमाणु संगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि, सद्दो उप्पादगो णियदो ॥ ७९ ॥

शब्द खंद से होत है, परमाणू मिल खंध।
प्रगट शब्द जब होत है, भिड़ें परस्पर खंध७९॥

अर्थ—शब्द स्कंध से उत्पन्न होता है। यह स्कंध अनंत परमाणुओं के समूह के मेल से बनता है। उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्श होने पर निश्चय से शब्द उत्पन्न होता है ॥ ७९ ॥

आगे—परमाणु को एक प्रदेशी सिद्ध करते हैं।

णिच्चो णाणवकासो, ण सावकासो पदेसदो भेत्ता।
खंधाणं पि य कत्ता, पविहत्ता कालसंखाणं ॥ ८० ॥

थान रखे अरु नहिं रखे, प्रदेश भेदक खंध।
भेद काल संख्या विविध, करत प्रवर्त्ते खंध॥८०॥

अर्थ—परमाणु नित्य है क्यों कि एक प्रदेश पना इस का कभी मिटता नहीं है। किसी को अवकाश नहीं दे ऐसा नहीं है अवकाश नहीं भी देने वाला है क्यों कि एक प्रदेश मात्र है। स्कन्धों का कर्ता तथा भेदने वाला है व काल की समय आदि संख्या का विभाग करने वाला है ॥ ८० ॥

आगे—परमाणु का विशेष स्वरूप कहते हैं।

एयरसवरणगंधं, दो फासं सद्दकारणमसद्दं ।
खधंतरिदं दव्वं, परमाणुं तं वियाणेहि ॥ ८१ ॥

धुनि कारण द्वय फर्श इक, गंध वर्ण रस मान ।
भिन्न खंध से शब्द बिन, परमाणू सो जान॥८१॥

अर्थ—जिस में एक कोई रस एक कोई वर्ण एक कोई गंध व दो स्पर्श हों, जो शब्द का कारण हो स्वयं शब्द रहित हो जो स्कंध से जुदा हो उस द्रव्य को परमाणु जानो ॥ ८१ ॥

आगे—पुद्गलों के भेद संक्षेप से दिखाते हैं ।

उवभोज्जमिंदिएहिं, य इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं, तं सव्वं पोग्गलं जाणे ॥ ८२ ॥

इन्द्रिय के उपभोग अरु, तन मन इन्द्रिय कर्म ।
मूर्तवन्त जे अन्य हैं, ते पुद्गल के धर्म ॥८२॥

अर्थ—इन्द्रयों से भोगने योग्य पदार्थ, और पांच इन्द्रियें पांच प्रकार के शरीर और मन तथा आठ कर्म इत्यादि जो कुछ दूसरा मूर्तिक पदार्थ हैं उस को पुद्गल द्रव्य जानो ॥ ८२ ॥

आगे—धर्म द्रव्य का स्वरूप कहते हैं ।

धम्मत्थिकायमरसं, अवरणगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगागाढं पुट्ठं, पिहुलमसंखादियपदेसं ॥ ८३ ॥

धर्म द्रव्य ध्वनि फरस रस, गंध वर्ण नहिं लेश ।
अखंड व्यापक लोक सम, संख्या रहित प्रदेश॥८३

अर्थ—धर्मास्तिकाय पांच रस, पाँच वर्ण: दो गन्ध आठ स्पर्श और शब्द रहित है लोकाकाश में व्यापक है सर्व लोक को स्पर्श किए हुए है अखण्ड प्रदेशी है फैला हुआ है व असंख्यात प्रदेशों का रखने वाला है ॥ ८३ ॥

आगे—फिर भी धर्म द्रव्य का स्वरूप कहते हैं।

अगुरुलघुगेहिं सया, तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।
गदिकिरियाजुत्ताणं, कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ८४ ॥

अगुरुलघू गुण से सदा, अमित नित्य परिणाय।
गमनवान को निमित है, स्वयं सिद्ध जिन गाय८४

अर्थ—यह धर्म द्रव्य उन अनन्त अगुरुलघु गुण के द्वारा सदा परिणमन करने वाला है अविनाशी है गमन क्रिया संयुक्त जीव पुद्गलों के लिये निमित्त कारण है और स्वयं किसी का कार्य नहीं है ॥ ८४ ॥

आगे—धर्म द्रव्य को दृष्टान्त कर गति का कारण बताते हैं।

उदयं जह मच्छाणं, गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं, धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ८५ ॥

जैसे कारण मीन को, गमन विषे जल जान।
तैसे पुद्गल जीव को धर्म द्रव्य पहिचान ॥८५॥

अर्थ—जैसे जल इस लोक में मछलियों के लिये गमन में उपकारक है वैसे ही धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को गमन में उपकारक जानो ॥ ८५ ॥

आगे—अधर्म द्रव्य का स्वरूप कहते हैं।

जह हवदि धम्म दव्वं, तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं, कारणभूदं तु पुढवीव॥ ८६॥

धर्म द्रव्य जिमि कथन है, त्यों अधर्म का जान।
थिति कारण है अन्य को, जैसे पृथिवी मान॥८६॥

अर्थ--जैसे धर्म द्रव्य है तैसे अधर्म द्रव्य को जानो जो पृथ्वी के समान स्थिति क्रिया (ठहरने की इच्छा) करते हुये जीव पुद्गलों को निमित्त कारण है॥ ८६॥

आगे—कोई कहे धर्म अधर्म द्रव्य हैं ही नहीं ? उसका समाधान

जादो अलोगलोगो, जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो विय मया विभत्ता, अविभत्ता लोगमेत्तो य॥८७॥

जिन से लोक अलोक है, गति थिति कारणखाश।
भिन्न भिन्न हैं लोक वत, एक क्षेत्र में वास॥८७॥

अर्थ--जिन धर्म अधर्म द्रव्यों की सत्ता होने से अलोक और लोक हुये हैं और जीव पुद्गलों की गमन स्थिति जिन से होती है वे दोनों ही धर्म अधर्म परस्पर भिन्न हैं और लोकाकाश प्रमाण माने गये हैं। ॥८७॥

आगे—धर्म और अधर्म द्रव्य गति स्थिति में प्रेरक नहीं है।

ण य गच्छदि धम्मत्थी, गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गती स प्पसरो, जीवाणं पोग्गलाणं च॥ ८८॥

धर्म द्रव्य चलता नहीं, पर प्रेरक नहिं कोय।
चलते पुद्गल जीव को, गमन सहाई होय॥८८॥

अर्थ—धर्मास्ति काय न तो स्वयं गमन करता है न दूसरे द्रव्यों को गमन कराता है तो भी वह जीवों की और पुद्गलों की गति में सहायक (निमित्त) होता है ॥ ८८ ॥

आगे—धर्म अधर्म द्रव्य को वाह्य निमित्त वताते हैं।

विज्जदि जेसिं गमणं, ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि।
ते सगपरिणामेहिं, दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥ ८९ ॥

जिन का गति थिति रूप है, होती उन में ऐन।
वे करते निज शक्ति से यही जिनेश्वर वैन ॥८९॥

अर्थ--जिन जीव और पुद्गलों का गमन व तथा तिष्ठना (ठहरना) होता है उन्हीं का गमन व स्थान सम्भव है। वे जीव और पुद्गल अपनी ही गमन और स्थिति के परिणमन की शक्ति से गमन और तिष्ठना करते रहते हैं ॥ ८९ ॥

आगे—आकाश द्रव्य का स्वरूप कहते हैं।

सव्वेसिं जीवाणं, सेसाणं तह य पोग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं, तं लोए हवदि आयासं ॥ ९० ॥

सर्व जीव या शेष जे, अनन्त पुद्गल रास।
जो उन को अवकाश दे, वही द्रव्य आकाश९०।

अर्थ— सर्व ही जीवों को तथा पुद्गलों को और शेष धर्म अधर्म व काल को जो अवकाश देता है सो संपूर्ण आकाश इस लोक में होता है ॥ ९० ॥

आगे—अलोकाकाश का स्वरूप कहते हैं।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा य लोगदोऽणण्णा।
तत्तो अणण्णमण्णं, आयासं अंतवदिरित्तं ॥ ९१ ॥

अर्थ—धर्म, अधर्म, और आकाश समान परिमाण को रखने वाले हैं अतएव अलग नहीं हैं परन्तु अलग अलग अपने अपने द्रव्य पने को रखते हैं इस लिये एक पने व अनेक पने को करते हैं ॥ ९६ ॥

आगे—द्रव्यों में मूर्ति अमूर्ति चेतन अचेतन पना दिखाते हैं

आगासकालजीवा, धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा।
मुत्तं पोग्गलदव्वं, जीवो खलु चेदणो तेसु ॥ ९७ ॥

जीव काल धर्माधर्म, नभ विन मूर्ति सदीव।
मूर्त वंत पुद्गल दरव, तिन में चेतन जीव।९७॥

अर्थ—आकाश काल जीव धर्म और अधर्म अमूर्तिक हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। इन छहों में निश्चय से जीव द्रव्य चेतन है ॥ ९७ ॥

आगे— क्रिया सहित और क्रिया रहित द्रव्यों को दिखाते हैं।

जीवा पुग्गलकाया, सहसक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पुग्गलकरणा जीवा, खंदा खलु कालकरणा दु ॥ ९८ ॥

शेष न पुद्गल जीव ही, पर कर किरिया वान।
पुद्गळ कारण जीव का, खंद काल से जान९८॥

अर्थ—जीव और पुद्गल पर द्रव्य के निमित्त से क्रिपा वान होते हैं। शेप द्रव्य निष्क्रिय (निष्क्रय) हैं, जीव द्रव्य को पुद्गल का निमित्त हैं पुद्गल को काल का निमित्त जानना ॥ ९८ ॥

आगे—मूर्त अमूर्त का लक्षण कहते हैं।

जे खलु इंदियगेज्झा, विसया जीवेहि हुंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं, चित्तं उभयं समादियदि ॥ ९९ ॥

जीव विषय इन्द्रिय जिते, ते सब मूरतवान।
शेष द्रव्य मूर्तिक नहीं, उभय ग्रहण मन जान॥९९

अर्थ—जीवों के द्वारा निश्चय करके जो जो पदार्थ इन्द्रियों की सहायता से ग्रहण योग्य होते हैं वे मूर्तीक हैं। शेष सर्व जीवादि पाँच द्रव्य अमूर्तीक होते हैं। मन मूर्तीक अमूर्तीक दोनों को ग्रहण करता है॥ ९९ ॥

आगे—काल द्रव्य का स्वरूप कहते हैं।

कालो परिणाम भवो, परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहावो, कालो खणभंगुरो णियदो॥१००॥

काल भेद पर से बने, वे पर निश्चय काल।
अविनाशी क्षण भंगुरी, दोय काल की चाल १००

अर्थ—व्यवहार काल जीव पुद्गलों के परिणमन से उत्पन्न होता है। पुद्गलादि का परिणमन काल द्रव्य के द्वारा होता है दोनों का ऐसा स्वभाव है। यह व्यवहार काल क्षण भंगुर है परन्तु निश्चयकाल अविनाशी है॥ १०० ॥

आगे—काल की नित्य अनित्य भेद स्वरूप दिखाते हैं।

कालो त्ति य ववदेसो; सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी, अवरो दीहंतरट्ठाई ॥ १०१ ॥

व्यय उतपाति संतान से, समय नित्य पहिचान॥१०१
काल नाम के शब्द से, चिरस्थाई मान।

अर्थ—काल ऐसा जो नाम है सो निश्चय काल का बताने वाला है यह काल अविनाशी होता है दूसरा व्यवहार काल ...

और विनशता रहता है तथा यह समय की परम्परा से नित्य कहा जाता है ॥ १०१ ॥

आगे—काल की द्रव्य संज्ञा है काय संज्ञा नहीं यह बताते हैं।

एदे कालागासा, धम्माधम्मा पुग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं, कालस्स दु णत्थि कायत्थं। १०२

जीव काल अधरम धरम; पुद्गल अरु आकाश।
द्रव्य नाम ये पावते, कालकाय विन वास ॥१०२॥

अर्थ—ये पूर्व में कहे हुये काल, आकाश, धर्म, अधर्म पुद्गल और जीव द्रव्य, नाम को पाते हैं परन्तु काल द्रव्य के काय पना नहीं है ॥ १०२

आगे—पंचास्तिकाय के मथन से ज्ञान फल होता है।

एवं पवयणसारं, पंचत्थियसंग हं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे, सो गहदि दुक्खपरिमोक्खं१०३

पंचकाय संक्षेप से, पूर्व भली विधि जान।
तजे राग अरु द्वेष को, दुक्ख मुक्त शिव थान १०३॥

अर्थ—इस तरह पंचास्तिकाय का स्वरूप इस परमागम से जान करके जो कोई राग और द्वेप को छोड़ देता है सो दुःखों से मुक्ति पाता है ॥ १०३ ॥

आगे—दुखों के नाश करने का क्रम दिखाते हैं।

मुणिऊण एतदट्ठं, तदणुगमणुज्झदो णिहदमोहो।
पसमियरागदोसो, हवदि हदपरावरो जीवो ॥ १०४ ॥

जो जाने इस अर्थ को, मोह आवरन खोय।
साम्य राग अरु द्वेष से, नष्ट बंध शिव होय॥१०४॥

अर्थ—इस ग्रन्थ के सार भूत आत्म पदार्थ को जान कर (अनुभव कर) उद्यमी जीव मिथ्यादर्शन का नाश करके राग और द्वेष को शान्त करता है वह संसार से पार हो जाता है ॥ १०४ ॥

इति पंचास्तिकाय विशेष स्वरूपाधिकारः-॥२॥

अथ नवपदार्थाधिकारः ॥३॥

अर्थ मासिक पाठ में षोडश दिवसः—

आगे—मंङ्गलाचरण कर के नव पदार्थ रूप भेद को कहते हैं।

अभिवंदऊण सिरसा, अपुणब्भवकारणं महावीरं।
तेसिं पयत्थभंगं, मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥ १०५ ॥

शिव कारण अति वीर को, वन्दों शीश नवाय।
द्रव्य भेद आगे कहूं, शिव कारण दर्शाय॥१०५॥

अर्थ—जिस पद के पाने से फिर जन्म न लेना पड़े ऐसे मोक्ष के लिये जो निमित्त कारण है ऐसे श्री महावीर भगवान को मस्तक झुका कर नमस्कार करके उन पहिले कहे गए पांच अस्तिकाय को और छह द्रव्य नव पदार्थ मई भेद को जो मोक्ष का मार्ग बताता है आगे कहूँगा ॥ १०५ ॥

आगे—मोक्ष मार्ग का संक्षेप से कथन करते हैं।

सम्मत्तणाणजुत्तं, चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥

दर्श ज्ञान युत चरन ही, राग द्वेष से हीन ।
उसी भव्य के मोक्ष मग, लब्धि बुद्धि से चीन १०६

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित चारित्र मोक्ष का मार्ग है कैसा है वह चारित्र जिससे भव्य जीवों के स्वपर विवेक की बुद्धि प्राप्त होती है ॥ १०६ ॥

आगे—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, का स्वरूप कहते हैं।

सम्मत्तं सद्दहणं, भावणं तेसिमधिगमो णाणं ।
चारित्तं समभावो, विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥ १०७ ॥

समकित है नव तत्व रुचि उनका अधिगम ज्ञान ।
संयम है समभाव में, विषय न वृत्ति प्रधान १०७॥

अर्थ—पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है, उन का जानपना सम्यग्ज्ञान है मोक्ष मार्ग में आरूढ़ जीवों का इन्द्रियों के विषयों में समता भाव रहना सम्यक चारित्र है ॥ १०७ ॥

आगे—नव पदार्थ का संक्षेप स्वरूप और नाम कहते हैं।

जीवाजीवा भावा, पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।
संवरणिज्जरबंधो, मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ॥ १०८ ॥

जीव अजीव पदार्थ, मिल पुण्य पाप संयोग ।
आश्रव संवर निर्जरा, बंध मोक्ष नव योग ॥१०८॥

अर्थ—जीव अजीव पुण्य पाप आश्रव संवर, निर्जरा, बंध व मोक्ष ये नव पदार्थ होते हैं ॥ १०८ ॥

आगे—संक्षेप से जीव का स्वरूप कहते हैं।

आवश्यक परिवर्तन

पंचास्तिकाय

आगे—थावरों को चलाचल रूप व वचन से रहित दिखाते हैं।

ति त्थावरतणुजोगा, अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
वच्चपरिणामविरहिदा, जीवा एइंदिया णेया ॥ १११ ॥

चलें न भू जल और तरु, चलते अग्नी व्यार।
वच परिणाम विहीन जे, एकेन्द्रिय तन धार १११।

अर्थ—इन पांचों में से पृथ्वी जल वनस्पति काय स्थिर शरीर होने के कारण चलते नहीं हैं। तथा वायु काय और अग्निकाय धारी जीव चलते हैं। ये एकेन्द्रिय जीव वचन के परिणमन से रहित असैनी हैं ऐसा जानने योग्य है ॥ १११ ॥

आगे—मन के विषय को स्पष्ट करते हैं।

ए वे तेचउ इंदिय, मण परिणाम विरहदा जीवाडु
सेसा रहिदा सहिदा, जिण समये सव्व पयडत्तं ११२

इक से चौइन्द्रिय तलक, मन परिणाम विहीन
शेष रहित अरु सहित है, जिन शासन से चीन ११२

अर्थ—एक इन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक के जीव मन से रहित होते हैं और शेष मन से रहित भी है और सहित भी हैं इस का खुलासा जिनागम से जानना चाहिये।

नोटः—गा० नं० ११२ का भाव गा० नं० ११० और १११ में आगया है अतः यह अनावश्यक है। द्विन्द्रियादिक जीवों के मन के विषय को स्पष्ट करने के लिए मैं ने इस नवीन गाथा की रचना की है। अतः गाथा नं० १११ व ११२ को उपरोक्त प्रकार पाठ करना चाहिये।

—सं० वीर०

जीवा संसारत्था, णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।
उवओगलक्खणा, वि य देहादेहप्पवीचारा ॥ १०६ ॥

संसारी अरु मुक्त से, द्विविधि चेतना रूप ।
लक्षण है उपयोग मय, देहादेह स्वरूप ॥१०६॥

अर्थ—जीव दो प्रकार के हैं एक संसारी दूसरे सिद्ध ये चैतन्यमई हैं उपयोग रूप लक्षण के धारी हैं जो शरीर सहित हैं वे संसारी हैं तथा जो शरीर रहित हैं वे सिद्ध हैं ॥ १०९ ॥

आगे--पृथ्वी कायादि स्थावर के पांच भेद दिखाते हैं ।

पुढवी य उदगमगणी, वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया ।
देंति खलु मोहबहुलं, फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥११०॥

भू जल अग्नी वायु तरु, जीव इकेन्द्रिय काय ।
ते निश्चय से मोह वश, फर्श विषय के राय११०।

अर्थ--पृथ्वी, जलअग्नि, वायु, और वनस्पति काय के शरीर जीवों को मोह गर्भित स्पर्शन इन्द्रिय के विषय को देते हैं ॥ ११० ॥

आगे—स्थावरों को एकेन्द्रिय जाति बतलाते हैं ।

ति त्थावरतणुजोगा, अणिलाणलकाइया य तेसु तसा ।
मणपरिणामविरहिदा, जीवा एइंदिया णेया ॥१११॥

चलें न भू जल और तरु, चलते अग्नी ब्यार ।
मन परिणाम विहीन जे, एकेन्द्रिय तन धार१११।

अर्थ— इन पांचों में से पृथ्वी जल वनस्पति काय स्थिर शरीर होने के कारण चलते नहीं हैं । तथा वायु काय और अग्निकाय कायी जीव चलते हैं । ये एकेन्द्रिय जीव मन के परिणाम से रहित

असैनी हैं ऐसा जानना योग्य है ॥ १११ ॥

आगे—एकेन्द्रिय को मन से रहित दिखाते हैं।

एदे जीवणकाया, पंचविहा पुढविकाइयादीया ।
मणपरिणामविरहिदा, जीवाएगेंदियाभणिया ॥ ११२ ॥

पृथ्वी आदिक पांच विधि, जीवों के जे भेद ।
मनो योग से रहित हैं, एकेन्द्रिय लख वेद ११२

अर्थ—ये पृथ्वी कायिक आदि पांच प्रकार के जीव मन से शून्य एकेन्द्रिय जीव कहे गए हैं ॥ ११२ ॥

आगे—एकेन्द्रिय जीवों के चैतन्यता का अस्तित्व दिखाते हैं।

अंडेसु पवड्ढंता, गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया ।
जारिसिया तारिसिया, जीवा एगेंदिया णेया॥ ११३ ॥

जिस प्रकार अण्डा बढ़े, बढ़े इकेन्द्रिय जीव ।
गर्भ और मूर्छा विषें, देखो बढ़ें सदीव ॥११३॥

अर्थ—जिस प्रकार अण्डों में जीव बढ़ते हैं, गर्भ में तिष्ठते हुये और मूर्छा को प्राप्त हुये मनुष्य जीते हैं उसी तरह एकेन्द्रिय जीव जानना ॥ ११३ ॥

आगे—दो इन्द्रिय जीवों के भेद दिखाते हैं।

संबुक्कमादुवाहा, संखा सिप्पी अपादगा य किमी ।
जाणंति रसं फासं, जे ते वे इंदिया जीवा ॥ ११४ ॥

सीप संख छोटे बड़े, लट गिडोल पग नांहिं ।
फर्श जीभ से जानते, जीव द्विइन्द्रिय मांहि॥११४॥

अर्थ—संबूक एक जाति का क्षुद्र संख, मातृवाह संख सीप और पांव रहित गिंडोला (केंचुआ) कृमि, लट आदिक जीव रस व स्पर्श को जानते हैं वे जीव दोइन्द्रिय हैं ॥ ११४ ॥

आगे—तेइन्द्रिय जीवों के भेद दिखाते हैं।

जूगागुंभीमक्कण, पिपीलिया विच्छियादिया कीड़ा।
जाणंति रसं फासं, गंधं तेइंदिया जीवा ॥ ११५ ॥

खटमल जूं बिच्छू चिंटी, कुम्भी आदिक जीव।
फर्श जीभ अरु नाक युत, हैं तेइन्द्रिय जीव११५॥

अर्थ—जूं, कुंभी, खटमल, चिंटी, बिच्छू आदि जीव रस, गन्ध और स्पर्श को जानते हैं इसलिये तीन इन्द्रिय धारी जीव हैं ॥११५॥

आगे—चौइन्द्रिय जीवों के भेद दिखाते हैं।

उद्दंसमसयमक्खिय, मधुकरभमरा पतंगमादीया।
रूपं रसंच गंधं फासं पुण ते वि जाणंति ॥ ११६ ॥

मच्छर मक्खी डांस अरु, पतंग आदिक जीव।
फर्श जीभ दृग नाक युत, ते चौइन्द्रिय जीव११६॥

अर्थ—डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भौंरा, पतङ्ग आदिक जीव वर्ण रस और गन्ध तथा स्पर्श को जानते हैं इस कारण चौ-इन्द्रिय जीव हैं ॥ ११६ ॥

आगे—पंचेन्द्रिय जीवों के भेद कहते हैं।

सुरणरणारयतिरिया, वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू।
जलचरथलचरखचरा, बलिया पंचेंद्रिया जीवा ॥ ११७ ॥

नर नारक तिर्यंच सुर, भूजल नभचर जान ।
फर्श आदि अरु कर्ण युत, पंचेन्द्रिय वलवान ११७

अर्थ—देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यञ्च ये जलचर भूमिचर तथा आकाशगामी होते हैं ऐसे वलवान जीव वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को समझने वाले पंचेन्द्रिय होते हैं ॥ ११७ ॥

आगे—उन्हीं जीवों को चार गति के भेदों में दिखाते हैं ।

देवा चउणिणकाया, मणुया पुण कम्मभोगभूमीया ।
तिरिया वहुप्पयारा, णेरइया पुढविभेयगदा ॥ ११८ ॥

चार भेद हैं देव के, कर्म भोग नर भेद ।
बहु प्रकार तिर्यंच हैं, नारक पृथ्वी भेद ॥११८॥

अर्थ—देव गति वाले जीव चार समूह रूप से चार प्रकार हैं और मनुष्य कर्मभूमि और भोगभूमि वाले हैं तिर्यञ्च गति वाले बहुत तरह के हैं। नारकी पृथ्वी के भेद प्रमाण हैं ॥ ११८ ॥

आगे—पूर्व आयु गति क्षीण होने पर नवीन आयु गति बांधते हैं ।

खीणे पुव्वणिबद्धे, गदिणामे आउसे च ते वि खलु ।
पापुण्णंति य अण्णं, गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥११९॥

पूरव बांधे आयु गति, होवे रस दे क्षीण ।
निज लेश्या वस आयु गति बांधे अन्य नवीन ११९

अर्थ—पूर्व में बांधे हुये गति नामा नामकर्म के और आयु कर्म के क्षय हो जाने पर वे ही जीव वास्तव में अपनी अपनी लेश्या के वश से अन्य गति को और आयु को पाते हैं ॥ ११९ ॥

आगे—जो देह पलटते रहते हैं वे जीव भव्य और अभव्य हैं इनसे परे सिद्ध हैं ।

एदे जीवणिकाया, देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा।
देहविहूणा सिद्धा, भव्वा संसारिणो अभव्वा य १२०।

पूर्व जीव जिनवर कहे, रहें पलटते देह।
भव में भव्य अभव्य हैं, सिद्ध रहित विन देह१२०

अर्थ - ये जीवों के समूह शरीर के पलटने वाले कहे गये हैं। जो शरीर से रहित हैं वे सिद्ध हैं। संसारी जीव भव्य और अभव्य दो प्रकार हैं॥ १२० ॥

आगे—निश्चय से जीव का स्वरूप दिखाते हैं।

ण हि इंदियाणि जीवा, काय पुण छप्पयार पण्णता।
जं हवदि तेसु णाणं, जीवो त्ति य तं परूपवंति ॥१२१॥

इन्द्री इक नहिं जीव के, पट विधि काय न ऐन।
जहां ज्ञान तहँ जीव है, यही जिनेश्वर वैन १२१॥

अर्थ—पांच इन्द्रिय तथा छह प्रकार के काय निश्चय नय से जीव में नहीं हैं। उन इन्द्रिय तथा कायों में जो ज्ञान है उसको जीव ऐसा कहते हैं॥ १२१ ॥

आगे—जानना देखना आदि कार्य जीव में ही संभवता है।

जाणदि पस्सदि सव्वं, इच्छदि सुक्खं विभेद दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा, भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥१२२॥

जाने देखे सर्व को, दुख भय सुख की चाह।
करे हिताहित जीव यह, फल भोगे उस राह १२२

अर्थ—यह जीव सर्व पदार्थों को देखता जानता है सुख को चाहता

और दुख से डरता है, हिताहित रूप काम करता है और उन भले बुरे कामो का फल भोगता है ॥ १२२ ॥

आगे--जीव अजीव का स्वरूप संक्षेप से दिखाते हैं ।

एवं भिग्गम जीवं, अरणेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं ।
अभिगच्छ दु अज्जीवं णाणंतरदेहि लिंगेहिं ॥ १२३ ॥

इस प्रकार से अन्य भी, जानि जीव पर्याय ।
ज्ञान भिन्न जे चिन्ह हैं सब अजीव जिन गाय१२३

अर्थ—इस प्रकार दूसरी भी पर्यायों के द्वारा इस जीव को समझ करके ज्ञान से भिन्न जड़पना आदि चिन्हों से अजीव को जानो ॥ १२३ ॥

आगे--अजीव का स्वरूप चेतनता रहित सिद्ध करते हैं ।

आगास काल पुग्गल, धम्माधम्मेसु णत्थिजीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं, भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥ १२४ ॥

पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल जीव गुण नांहि ।
उन्हें अचेतन जिन कहें, चेतन चेतन मांहिं ॥१२४

अर्थ—आकाश, काल, पुद्गल, धर्म, अधर्मास्तिकाय इन पाँच प्रकार के अजीव द्रव्यों में अचेतनपना कहा गया है और जीव का गुण चैतन्य है ॥ १२४ ॥

आगे--अजीव में नहीं पाई जाने वाली विशेषताओं को दिखाते हैं ।

सुहदुक्खजाणणा वा, हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं, तं समणा विंति अज्जीवं ॥१२५

सुख दुख ज्ञान न दुख भय, चहें न सुख को ऐन ।
ते अजीव जानो सरव, यही जिनेश्वर बैन ॥१२५॥

अर्थ–जिस द्रव्य में सुख दुख का ज्ञान (हित की चाह अहित से भय) नहीं है उस को श्रमण सदैव अजीव कहते हैं ॥ १२५ ॥

आगे—पुद्गल से उत्पन्न गुण पर्यायों को दिखाते हैं।

संठाणा संघादा, वण्णरसफ्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा, होंति गुणा पज्जया य बहू ॥१२६

संसथान सहनन वरण, शब्द फर्श रस गंध ।
पुद्गल द्रव्य प्रताप से, गुण पर्याय प्रबन्ध १२६॥

अर्थ समचतुरस्र आदि छः संस्थान ,औदारिक आदि पांच शरीर और पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध, आठ स्पर्श तथा शब्द ये पुद्गल द्रव्य से उत्पन्न बहुतसे गुण तथा पर्याय विशेष हैं ॥ १२६ ॥

आगे--जीव का स्वरूप दिखाते हैं।

अरसमरूवमगंध, मव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १२७ ॥

फर्श वर्ण रस गन्ध नहिं, चेतन गुण विन वैन ।
किसी चिन्ह ग्राही नहीं, अकथ चिन्ह से ऐन॥१२७

अर्थ—इसजीव को रस वर्ण गंध फर्श गुण रहित शब्द रहित और चेतना गुण सहित जानो और इन्द्रियादि चिन्हों से नहीं ग्रहणकर ने योग्य तथा पुद्गल मई आकार से रहित जानो ॥ १२७ ॥

आगे— इन्हीं जीव अजीव के संयोगसे परिभ्रमणरूप संसार को दिखाते हैं।

जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं, कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥

गदिमधिगदस्स देहो, देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं, तत्तो रागो व दोसो वा ॥१२९॥

जायदि जीवस्सेवं, भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो, अणादिणिधणो सणिधणो वा १३०

या संसारी जीव के, शुद्ध न होते भाव।
उसी भाव के कर्म से, बांधी गति को पाव १२८॥

गति से पावे देह को; तिस में इन्द्रिय जान।
उनसे सेवे विषय को, राग द्वेष कों ठान ॥१२९॥

लोक चक्र में जीव के, होते भाव अशुद्ध।
अन्त रहित या अंत से, दो विधि गाये बुद्ध १३०

अर्थ—वास्तव में जो कोई संसार में परिभ्रमण करने वाला अशुद्ध आत्मा है उस से ही अशुद्ध भाव होता है। अशुद्ध भाव से कर्मों का बंध होता है। और उन कर्मों के उदय से कोई गति (चार गतियों में से) होती है गति को प्राप्त होने वाले जीव के स्थूल शरीर होता है। देह के सम्बन्ध से इन्द्रियें पैदा होती हैं। उनही इन्द्रियों से उनके योग्य स्पर्शनादि विषयों का ग्रहण होता है और विषय के ग्रहण से राग द्वेष भाव होता है। इस प्रकार इस संसार रूपी चक्र के परिभ्रमण में जीव की अवस्था होती रहती हैं ऐसा जिन भगवान ने कहा है। यह अवस्था अभव्यों की अपेक्षा अनादि से अनंत काल तक रहती है तथा भव्यों की अपेक्षा से अंत सहित है॥ १२८॥ १२९॥ १३०॥

आगे—पुण्य और पापके योग्य भावों का स्वरूप कहते हैं।

मोहो रागो दोसो, चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा, असुहो वा होदि परिणामो १३१

मोह राग अरु द्वेष या, मन प्रसन्न जब होय।
वर्ते जब या जीव के, भाव शुभाशुभ कोय १३१॥

अर्थ—जिस जीव के भाव में मोह भाव, राग भाव, द्वेष रूप भाव या चित्त प्रसन्न रूप भाव हो उस जीव के शुभ तथा अशुभ ऐसा भाव होता है ॥ १३१ ॥

आगे—शुभाशुभ भाव के फल को दिखाते हैं।

सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पावंति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो, भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥ १३२ ॥

शुभ भावन से पुण्य हैं, अशुभ भाव से पाप।
दोनों पुद्गल पिंड हैं, कर्म अवस्था थाप १३२॥

अर्थ—जीव का शुभ भाव पुण्य है और अशुभ भाव पाप है। इन दोनों शुभ तथा अशुभ परिणामों के निमित्त से कर्म वर्गणा योग्य पुद्गल पिण्ड रूप ज्ञानावरणादि अवस्था द्रव्य कर्म पने को प्राप्त होती है ॥ १३२ ॥

आगे—मूर्तीक कर्म का स्वरूप दिखाते हैं।

जम्हा कम्मस्स फलं, विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं, तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥१३३॥

जिस कारण जे कर्म फल, मूर्त विषय सुख दुक्ख।
जिय द्वारा भोगे गए, कर्म मूर्त है मुक्ख ॥१३३॥

अर्थ—क्यों कि इस जीव के द्वारा कर्मों का फल सुख और दुख जो पांच इन्द्रियों के विषय रूप हैं वह निश्चित रूप से स्पर्शनादि इन्द्रियों के निमित्त से भोगा जाता है इस लिये द्रव्य कर्म मूर्तीक हैं ॥१३३॥

आगे—मूर्तीक अमूर्तीक का परस्पर बंध सिद्ध करते हैं ।

मुत्तो फासदि मुत्तं, मुत्तो मुत्ते ण बंधमणुहवदि ।
जीवो मुत्तिविरहिदो, गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥१३४॥

मूर्त मूर्त स्पर्श से, मूर्त मूर्त का बन्ध ।
मूर्त विना जिय भाव धर, एक क्षेत्र सम्बन्ध १३४

अर्थ—मूर्तीक कर्म मूर्तीक कर्म को स्पर्श करता है । मूर्तीक कर्म पहिले के बंधे हुए मूर्तीक कर्म के साथ बंध को प्राप्त हो जाता है । अमूर्तीक जीव उन को अवकाश देता है व उन कर्मों से एक क्षेत्रावगाह हो जाता है ॥ १३४ ॥

आगे—आश्रव का स्वरूप कहते हैं ।

रागो जस्स पसत्थो, अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चित्ते णत्थि कलुस्सं, पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥१३५॥

जिसके राग प्रशस्त हो, अरु अनुकम्पा होय ।
मलिन चित्त जिसका नहीं, पुन्य संचयी सोय १३५

अर्थ—जिस जीव के प्रशस्त राग है और दया से भींजा हुआ भाव है तथा चित्त में कलुषपना (मैलापन) नहीं है उस जीव के पुण्य कर्म आता है ॥ १३५ ॥

आगे—शुभ राग का स्वरूप कहते हैं ।

अरहंतसिद्धसाहुसु, भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं पि गुरूणं, पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥

साधु सिद्ध अरहंत रुचि, धर्म भक्ति में ध्यान।
गुरु आज्ञा शिर पर धरे, राग प्रशस्त बखान १३६

अर्थ—अरहंत सिद्ध व साधुओं में भक्ति और शुभराग रूप चरित्र में जो निश्चय करके उद्योग करता है व गुरुओं के अनुकूल चलता है यह प्रशस्त राग है ऐसा आचार्य कहते हैं॥ १३६॥

आगे—दया का स्वरूप कहते हैं।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा, दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया, तस्सेसा होदि अणुकंपा॥१३७॥

दुखित भुखित प्यासा निरख, दुखी होय जो कोय।
कृपा दृष्टि परहित करे, अनुकम्पा है सोय १३७।

अर्थ जो कोई भूके प्यासे तथा दुखी को देखकर अपने मन में दुखी होता हुआ दया भाव से उस का दुख दूर करता है उस को दया कहते हैं॥१३७॥

आगे चित्त की कलुषता का स्वरूप कहते हैं

कोधो व जदा माणो, माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं, कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति। १३८

क्रोध मान माया सहित, चित्त लोभ को प्राप्त।
करे जीव अति क्षोभ जब, मलिन भाव विख्यात१३८

अर्थ जिस समय क्रोध मान, माया, तथा लोभ, चित्त में प्राप्त होकर आत्मा के भीतर क्षोभ या अकुलता या घबराहट पैदा करदेता है। उस क्षोभ को ज्ञानी जन कलुषता संक्लेशपना ऐसा कहते हैं॥ १३८॥

आगे—पापाश्रव का स्वरूप कहते हैं ।

चरिया पमादवहुला, कालुस्सं लोलदा य विसयेसु
परपरितावपवादो, पावस्स य आसवं कुणदि ॥१३६॥

वहु प्रमाद चर्या मलिन, अधिक विषय में प्रीत ।
परनिन्दादिक भावना, पापाश्रव की रीत ॥१३६॥

अर्थ—प्रमाद से भरी हुई क्रिया चित्त का मलिनपना और विषयों में लोलुपता तथा दूसरों को दुःखी करना व उनकी निन्दा करनी पाप कर्म का आश्रव कहा जाता है ॥ १३९ ॥

आगे—पापाश्रव के कारण भूत भावों को दिखाते हैं ।

सण्णाओ य तिलेस्सा, इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं, मोहो पावप्पदा होंति ॥ १४० ॥

लेश्या त्रय संज्ञा सरव, इन्द्रिय वश दुरध्यान ।
ज्ञान अशुभ रत मोह चित, पापाश्रव के थान १४०

अर्थ—तीन लेश्या, चार संज्ञायें, और इन्द्रियों के आधीन होना, आर्त, रौद्र, ध्यान खोटे कार्यों में चित्त को लगाना और मोह भाव, ये पापाश्रव के देने वाले होते हैं ॥ १४० ॥

अथ मासिक पाठ में सप्तदश दिवस :—

आगे—संवर का स्वरूप कहते हैं ।

इंदियकसायसण्णा, णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठमग्गम्मि ।
जावत्तावत्तेहिं, पिहियं पावासवं छिद्दं ॥ १४१ ॥

संज्ञा करण कषाय ये, रोकें संवर राह ।
छिद्र बंद है, उस समय, पापाश्रव का दाह १४१।

अर्थ—जो पुरुष उत्तमरत्नत्रय मार्ग में ठहर कर जबतक इन्द्रिय, कषाय, आहारादि, संज्ञाएं रोकता है तबतक उसके पाप श्रव के छेद बंद रहते हैं ॥ १४१ ॥

आगे—सामान्य संवर का स्वरूप कहते हैं।

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवदि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स१४२

नहीं सर्व पर द्रव्य में, मोह राग अरु द्वेष।
आश्रव पाप न पुण्य है, सम मुनि सुःख कलेश४२

अर्थ—जिस के भीतर सर्व द्रव्यों में राग द्वेष मोह नहीं है और सुख व दुःख में समान भाव हैं उस साधु के शुभ या अशुभ कर्म नहीं आते ॥ १४२ ॥

आगे—संवर का विशेष स्वरूप कहते हैं।

जस्स जदा खलु पुण्णं, जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।
संवरणं तस्स तदा, सुहासुहकदस्सकम्मस्स ॥ १४३ ॥

मुनि के जिस क्षण योग में, पाप पुण्य नहि होय।
संवर होवे उस समय, कर्म शुभाशुभ दोय।१४३॥

अर्थ—जिस समय जिस साधु के योगों में निश्चय करके पुण्य और पाप भाव नहीं होते हैं तिस समय उस साधु के शुभ या अशुभ कर्म का संवर है १४३ ॥

आगे—निर्जरा का स्वरूप कहते हैं।

संवरजोगेहिं जुदो, तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं, बहुगाणं कुणदि सो णियदं।१४४॥

संवर योग नियुक्त अरु, वहु विधि तप में लीन।
वह निश्चय से कर्म की, करे निर्जरा चीन१४४॥

अर्थ—जो साधु भाव संवर और शुद्धोपयोग सहित है नाना प्रकार तपों के द्वारा पुरुषार्थ करता है वह बहुत से कर्मों की निर्जरा करता है ॥ १४४ ॥

आगे—निर्जरा का कारण विशेषता के साथ दिखाते हैं

जो संवरेण जुत्तो, अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं, णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं १४५

जो संवर संयुक्त है, निज को जाने सोय।
सदा विराजे ज्ञान में, देय कर्म रज धोय॥ १४५॥

अर्थ—जो संवरसंयुक्त होकर अत्मा के स्वभाव का साधने वाला है निश्चय से वह अत्मा को जान करके निश्चित होकर आत्मा के ज्ञान को ध्याता है वह कर्मों की रज को दूर करता है ॥ १४५ ॥

आगे—ध्यान का स्वरूप कहते हैं।

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्ससुहासुह डहणो, झाणमओ जायए अगणी १४६॥

राग द्वेष जहँ मोह नाहिं, नहीं योग उत्पन्न।
वहाँ शुभाशुभ दहन को, ध्यान अग्नि उत्पन्न१४६।

अर्थ—जिस महत्मा के भीतर मोह राग द्वेष, तथा मन, वचन, काय, योगों की क्रिया नहीं है उस के अन्दर शुभ या अशुभ भावों को जलाने वाली ध्यान मई अग्नि पैदा होती है ॥ १४६ ॥

आगे बंध का स्वरूप कहते हैं।

जं सुहमसुहमुदिण्णं, भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि वंधो, पोग्गल कम्मेण विविहेण ॥१४७॥

जीव उदय में युक्त हो, करे शुभाशुभ भाव।
पुद्गळ कर्म अनेक विधि, बांधे यही स्वभाव१४७।

अर्थ--जब यह कर्म बंध सहित रागी आत्मा कर्मों के उदय से प्राप्त जिस शुभ अशुभ भाव को करता है तब वह उस भाव के निमित्त से नाना प्रकार पुद्गल कर्मों से बंध रूप होजाता है ॥ १४७ ॥

आगे--बंध के वहिरंग अन्तरंग कारणों का स्वरूप दिखाते हैं।

जोग णिमित्तं गहणं, जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो वंधो, भावो रदिरागदोसमोहजुदो १४८

योग निमित से ग्रहण है,मन वचतन से योग।
बंध भाव के निमित से, भाव मोह संयोग।१४८॥

अर्थ—योग के निमित्त से कर्म पुद्गलों का ग्रहण होता है योग मन, वचन, काय की क्रिया से होता है। उन का बंध भावों के निमित्त से होता है और वह भाव राग, द्वेष व मोह सहित मलीन होता है ॥ १४८ ॥

आगे—द्रव्य मिथ्यात्वादिक बंध के बाह्य कारण हैं।

हेदू चदुव्वियप्पो, अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी, तेसिमभावेण वज्झंति॥ १४९ ॥

कारण चार विकल्प सें, अष्ट कर्म का वंध।
रागादिक से चार हैं, तिन बिन होय न वंध१४९

अर्थ—चार प्रकार के मिथ्यात्वादि कारण, आठ प्रकार कर्मों के बंध के कारण कहे गए हैं। तथा उन द्रव्य कर्म मिथ्यात्वादि के भी कारण रागादि भाव हैं। इन रागादि भावों के न होने पर जीव नही बंधते हैं ॥१४९॥

आगे—मोक्ष के कारण परम संवर को दिखाते हैं।

हेदुमभावे णियमा जायदि,णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसव भावेण विणा, जायदि कम्मस्स दु णिरोधो१५०

कम्मस्साभावेण, य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पावदि इंदियरहिदं, अव्वावाहं सुहमणंतं ॥ १५१ ॥

ज्ञानी हेतु अभाव से, आश्रव होय अभाव।
आश्रव भाव अभाव से, होवे कर्म अभाव॥१५०॥

कर्म नसे सर्वज्ञ पद, अरु सव देखन हार।
इन्द्रिय विन वाधा रहित,चिर सुख भोगन हार१५१

अर्थ--मिथ्यात्वादि द्रव्य कर्मों के उदय रूप कारणों के न रहने पर नियम से भेद विज्ञानी आत्मा के आश्रव भावों का रुकना होता है। और आश्रव भावों के विना नवीन द्रव्य कर्मों का भी रुकना होजाता है तथा चार घातिया कर्मों के नाश होने पर सर्वज्ञ और सर्व लोक को देखने वाला इंद्रियों की पराधीनता से रहित वाधा रहित व अंत रहित आत्मीक सुख को पाता है॥ १५० ॥ १५१ ॥

आगे—मोक्ष का कारण परम निर्जरा और ध्यान का स्वरूप दिखाते हैं।

दंसणणाणसमग्गं, झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदिणिज्जर हेदू, सभावसहिदस्स साधुस्स ॥१५२॥

दर्श ज्ञान परिपूर्ण अरु, रहित ध्यान पर पर्व ।
निज स्वभाव से साधु के, होय निर्जरा सर्व१५२॥

अर्थ—शुद्ध स्वभाव के धारी साधु के निर्जरा का कारण जो ध्यान पैदा होता है वह दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण है और पर द्रव्य के सम्बन्ध से रहित है ॥१५२ ॥

आगे—द्रव्य मोक्ष का स्वरूप दिखाते हैं।

जो संवरेण जुत्तो, णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि ।
ववगदवेदाउस्सो, मुयदि भवं तेण सो मोक्खो १५३॥

जो संवर संयुक्त है, सर्व निर्जरे कर्म ।
अरु अघातिया नाश के, मिले मोक्ष सुख पर्म१५३

अर्थ—जो पुरुष परम संवर सहित होता है वह सर्व कर्मों की निर्जरा करता है और वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्म को क्षय कर वही जीव मोक्षस्वरूप हो जाता है अथवा अभेदनय से वही पुरुष मोक्ष है१५३।

इति नवपदार्थाधिकारः ॥ ३ ॥

अथ मोक्षमार्गाधिकारः ॥ ४ ॥

आगे—मोक्ष मार्ग का स्वरूप दिखाते हैं।

जीवसहावं णाणं, अप्पडिहददंसण अणण्णमयं ।
चरियं च तेसु णियदं,अत्थित्त मणिंदियं भणियं१५४॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान ये, जीव अनन्य स्वभाव ।
उनमें निश्चल विमल ही,कहा चरन का भाव१५४

अर्थ—जीव का स्वभाव अप्रतिहत ज्ञान और दर्शन है। ये दोनों जीव से भिन्न नहीं हैं और इन दोनों में निश्चय रूप रहना सो रागादि दोषों से रहित वीतराग चारित्र कहलाता है। यही चारित्र मोक्षमार्ग है ॥ १५४ ॥

आगे—स्वसमय का ग्रहण और परका त्याग हो तब मोक्ष मार्ग होता है

जीवोसहावणियदो, अणियदगुणपज्जओथ परसमओ।
जदिकुणदि सगं समयंपब्भस्सदि कम्मबंधादो १५५॥

जीव आप में थिर यदपि,पर गुण पर्यय अंध।
जो करता निज समय को,होय कर्म निरबंध१५५

अर्थ—यह जीव निश्चय से स्वभाव में तिष्ठने वाला है तथापि व्यवहार नय से अपने स्वभाव से विपरीत गुण व पर्यायों में परिणमन करताहुआ परसमय पर पदार्थ में रत होजाता है। यदि वही जीव अपने आत्मीक आचरण को करे तो कर्मों के बन्धन से छूट जाता है ॥ १५५ ॥

आगे—परसमय का स्वरूप दिखाते हैं

जो परदव्वम्मि सुहंअसुहं, रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो, परचरियचरो हवदि जीवो १५६॥

अन्य द्रव्य में राग से, करे शुभाशुभ भाव।
आप चरन से भृष्ट है, मोही जीव स्वभाव॥१५६॥

अर्थ—जब कोई राग भाव से आत्मा के सिवाय परद्रव्य में शुभ या अशुभ भाव को करता है तब वह जीव आत्मीक चारित्र से भ्रष्ट होकर पर चारित्र में चलने वाला होजाता है ॥ १५६ ॥

आगे—परसमय में बंध है और मोक्ष मार्ग का निषेध है।

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवंति ॥१५७॥

जीव भाव शुभ अशुभ से, आकर्षण है एन ।
परसमयी ताको कहें, यही जिनेश्वर वैन ।१५७।।

अर्थ—जिस आत्मा के भाव से पुण्य या पाप आता है तिस भाव के कारण यह जीव पर में आचरण करने वाला हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं ।। १५७।।

आगे—स्वसमय में विचरने वाले पुरुष का स्वरूप दिखाते हैं ।

जो सव्वसंगमुक्को, णएणमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदिपस्सदि णियदं, सो सग चरियंचरदि जीवो१५८

सर्व परिग्रह रहित जे, ऐक्य भाव में लीन ।
जाने देखे सर्व को, जीव स्वसमयी चीन ।।१५८।।

अर्थ—जो सर्व परिग्रह से रहित होकर एकाग्रमन होता हुआ आत्मा को स्वभाव रूप से निश्चल होकर जानता है, देखता है, वह जीव स्वचरित को आचरण करता है ।। १५८ ।।

आगे—उसी अर्थ को विशेष तरह से दिखाते हैं ।

चरियं चरिदसगं, सो जो परदव्वप्प भावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पं; अवियप्पं चरदि अप्पादो ।।१५९।।

आप चरन जो आचरे, अन्य भाव नहिं ध्यान ।
दर्श ज्ञान को ऐक्य लख,भेद अभेद न ठान १५९

अर्थ—जो पर द्रव्यों में आत्म पन के भाव से रहित होकर दर्शन और ज्ञान के भेद को अपने आत्म से अभिन्न या एकरूप आचरण करता है वही स्वचारित्र का आचरण करता है ।। १५९ ।।

आगे—निश्चय मोक्षमार्ग का साधनद्वारा व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप दिखाते हैं ।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं, णाणमंगपुव्वगदं ।
चिट्ठा तवंहि चरिया, ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६०॥

समकित है धर्मादिरुचि, ज्ञान शास्त्र आधार ।
तप चेष्टा चारित्र है, मोक्ष मार्ग व्यवहार ।१६०॥

अर्थ—धर्म आदि छह द्रव्यों का श्रद्धान करना सम्यक्त है और ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व का जानना सम्यग्ज्ञान है, बारह प्रकार तप में आचरण करना चारित्र है, यह व्यवहार मोक्ष मार्ग है ॥१६०॥

आगे—निश्चय मोक्ष मार्ग का स्वरूप दिखाते हैं ।

णिच्चयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचिवि,अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति१६१

निश्चय से गुण तीन युत, समरस भाव बखान ।
पर को करे न निज तजे,यही मोक्ष मग जान१६१

अर्थ—जो आत्मा वास्तव में उन तीनों से एकता को प्राप्त करता हुआ कुछ भी अन्य काम को नहीं करता न कुछ आत्मीक स्वभाव को छोड़ता, वह आत्मा ही मोक्ष माग है ऐसा कहा गया है ॥१६१॥

आगे—आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता दिखाते हैं ।

जो चरदि णादिपिच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तंणाणं दंसणमिदि णिच्चिदो होदि ॥ १६२ ॥

जो निज में निज आचरे, जाने लखे अभेद ।
चारित दर्शन ज्ञान में, निश्चल है बिन खेद१६२।

अर्थ—जो कोई अपने आत्मा के द्वारा आत्मा रूप ही आत्मा को श्रद्धान करता है, जानता है, आचरता है वह निश्चय से

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप हो जाता है ॥ १६२ ॥

आगे—अभव्य के मोक्ष मार्ग की योग्यता का निषेध करते हैं।

जेण विजाणदि सव्वं,पेच्छदि सो तेण सोक्खमणु हवदि।
इदि तं जाणदि भविओ,अभव्वसत्तो ण सद्दहदि१६३॥

सब जाने सब देखता, सुख अनुभव सब होय।
उसे भव्य सब जानता, रुचे अभव्य न कोय१६३

अर्थ—वह आत्मा जिस केवल ज्ञान से सब को जानता है, देखता है, तिस ही से सुख को भोगता है भव्य जीव उस सुख को उसी प्रकार जानता है और अभव्य जीव नहीं श्रद्धान करता ॥१६३॥

आगे—दर्शन ज्ञान चारित्र को बन्ध और मोक्ष का कारण सिद्ध करते हैं

दंसणणाण चरित्ताणि,मोक्खमग्गोउत्ति सेवि दव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिंदु, वंधो व मोक्खो वा ॥ १६४ ॥

चारित दर्शन ज्ञान त्रय, सेवहु शिवमगजान।
दोय रूप ये परिणवे, बंध और शिव थान१६४।

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्ष मार्ग हैं वे ही सेवने योग्य हैं। साधुओं ने ऐसा कहा है कि इन्हीं से कर्म बन्ध या मोक्ष होता है ॥ १६४ ॥

आगे—सूक्ष्म परसमय का स्वरूप दिखाते हैं।

अण्णाणादो णाणी, जदि मण्णदि सुद्ध संपओगादो।
हवदित्ति दुक्ख मोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो १६५

जो ज्ञानी अज्ञान वश, माने धर्म सराग।
यों दुख मुक्ति होयगी, ते परसमयी भाग॥१६५॥

अर्थ—यदि शास्त्रों का जानने वाला कोई अज्ञान भाव से शुद्ध आत्माओं की भक्ति से दुःखों की मुक्ति होती है ऐसा मानने लगे तो वह जीव परसमय अर्थात पर पदार्थ में रत है॥ १६५ ॥

आगे—शुभोपयोग को बन्ध का कारण दिखाते हैं।

अरहंत सिद्ध चेदिय, पवयणगणणाणभत्तिसंपरणो।
बंधदि पुरणं बहुसो, ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि॥१६६॥

देव शास्त्र गुरु धर्म में, करता भक्ति महान।
पुराय बंध वहुविधि करे, नहीं कर्म क्षय जान१६६

अर्थ—अरहंत भगवान, सिद्ध परमात्मा, उन की प्रतिमा जैन सिद्धान्त मुनि समूह तथा ज्ञान की भक्ति करने वाला अधिक पुण्य कर्म को बांधता है परन्तु वह कर्मों का क्षय नहीं करता॥ १६६ ॥

आगे—जीव के स्वसमय की जो प्राप्ति नहीं होती उस का राग कारण है

जस्स हिदयेणुमत्तं, वा परदव्वम्हि हविज्जदे रागो।
सोण विजाणदिसमयं, सगस्स सव्वागमधरोवि १६७

अंस मात्र पर द्रव्य में, होवे जिसके राग।
सर्वागम पाठी यदपि, तदपि न आप विराग१६७

अर्थ—जिस हृदय में पर द्रव्य के भीतर अणु मात्र भी राग पाया जाता है वह सर्व शास्त्रों का जानने वाला है तो भी अपने आत्मीक पदार्थ को या स्वसमय को नहीं जानता है॥ १६७ ॥

आगे—राग अंश से दोषों की परम्परा होती है।

धारिदुं जस्स ण सक्कं, चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि, सुहासुहकदस्स कम्मस्स१६८॥

चित्त भ्रमक जिस जीव का, रोध समर्थन सोय।
उसे शुभाशुभ कर्म का, संवर कैसे होय ॥१६८॥

अर्थ—जिसका चित्त भ्रम युक्त या चञ्चल है वह अपनी शुद्ध आत्मा की भावना को धारण नहीं कर सकता तथा उसके शुभ और अशुभ कर्मों का रुकना सम्भव नहीं ॥ १६८ ॥

आगे—सर्व संक्लेश के नाश करने का उपाय बताते हैं।

तम्हा णिव्वुदिकामो, णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं, णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥१६९॥

जो मुमुक्षु ममता तजे, तजे परिग्रह भार।
करे सिद्ध पद भक्ति जो, उतरे भवदधि पार१६९

अर्थ—जो मोक्ष का इच्छुक परिग्रह और ममता रहित होकर सिद्धों में भक्ति करता है वह मोक्ष को पाता है ॥ १६९ ॥

आगे—अरहंतादि भक्ति से निर्वाण की अप्राप्ति दिखाते हैं।

सपदत्थं तित्थयरं, अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं, संजमतवसंपओत्तस्स ॥ १७० ॥

नव पद जिनवर सूत्र में, श्रद्धाबुद्धि प्रधान।
संयम तप संयुक्त यदि, बहुत दूर निर्वान ॥१७०॥

अर्थ—आगम की रुचि हो, संयम और तप का अभ्यासी हो, नव पदार्थ सहित तीर्थंकर की भक्ति में बुद्धि को लगाने वाला हो उसके मोक्ष बहुत दूर है ॥ १७० ॥

आगे—फिर भी उस आशय को दृढ़ करते हैं।

अरहंतसिद्धचेदिय, पवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं, सो सुरलोगं समादियदि १७१

देव शास्त्र गुरु धर्म रुचि, बहु संयम के साथ।
विविध कर्म तप के करे, तोभी सुरपुर हाथ१७१।

अर्थ—जो अरहन्त सिद्ध अरहन्त प्रतिमा व जिणवाणी का भक्त होता हुआ अनेक प्रकार तप के आचरण करता है वह नियम से देवलोक को प्राप्त होता हैं निर्वाण को नहीं पाता ॥ १७१ ॥

आगे—साक्षात् मोक्षमार्ग को संक्षेप से दिखाते हैं।

तम्हाणिव्वुदि कामो रागं, सव्वत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो, भवियो भवसायरं तरदि ॥१७२॥

जो मुमुक्षु शुभ अशुभ में, रखे न राग लगार।
वही भव्य वैराग्य से, भवदधि उतरे पार।१७२॥

अर्थ—इसलिये इच्छा रहित होकर जो सब पदार्थों में कुछ भी राग नहीं करता है वह भव्य जीव वीतराग होता हुआ भव सागर से तरजाता हैं॥ १७२ ॥

आगे—ग्रन्थ कर्ता अपनी प्रतिज्ञा को ग्रन्थ पूर्ण कर पूर्ण करते हैं।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं, पंचत्थिय संगहं सुत्तं ॥ १७३ ॥

मार्ग वृद्धि के अर्थ में, अरु श्रुत भक्ती जान।
पंच काय के सूत्र रच; कहा रहस्य प्रधान१७३॥

अर्थ—मुझ कुन्कुन्दाचार्य ने आगम भक्ति की प्रेरणा से जिनधर्म की प्रभावना के लिये आगम के सार को कहने वाले पंचास्तिकाय का वर्णन किया है ॥ १७३ ॥

इति मोक्षमार्गाधिकारः ॥ ४ ॥

प्रवचनसार

चारित्राधिकार

—— श्री परमात्मनेनमः ——

श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित:

अध्यात्मवाणी भाग ३

प्रवचनसार:

अथ मासिक पाठ में अष्टादश दिवस :—

द्रव्य न चाहें चहें गुण, प्रगट रीति जिय जान ।
मैं वन्दों उन गुणनि कों, जिनसे हो निर्वाण १॥

आगे—कुन्दकुन्दाचार्य मङ्गलाचरण के लिये नमस्कार करते हैं।

एस सुरासुरमणुसिदवंदिदं, धोदघाइकम्ममलं ।
पणमामि वड्ढमाणं, तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥ १ ॥

सेसे पुण तित्थयरे, ससव्वसिद्धे विशुद्धसब्भावे ।
समणेयणाणदंसण, चरित्ततववीरियायारे ॥ २ ॥

ते ते सव्वे समगं, समगं पत्तेगमेव पत्तेयं ।
वंदामि य वट्टंते, अरहंते माणुसे खेत्ते ॥ ३ ॥

किच्चा अरहंताणं, सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।
अज्झावयवग्गाणं, साहूणं चेव सव्वेसिं ॥ ४ ॥

तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं, समासेज्ज ।
उवसंपयामि सम्मं, जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥ ५ ॥

नमें सुरासुर इन्द्र नर, धोये घाती कर्म ।
वर्धमान को मैं नमूँ, तीर्थप्रवर्तक धर्म॥१॥

शेप जिनेश्वर सिद्ध सव, निर्मल शुद्ध स्वभाव ।
अरु मुनि पंचाचारयुत, पुनि वन्दों धरि चाव२।

वर्तमान अरहंत जो, ढाई द्वीप मंझार ।
तिनकों वन्दों क्रम सहित, अथवा एकहि वार३॥

करि सिद्धनि कों वन्दना, वन्दि सर्व अरहन्त ।
गणधर अरु उवझाय.नमि वन्दि साधु गुणवन्त४

जिनका मुख्य स्वभाव है, निर्मल दर्शन ज्ञान ।
ताहि धार मैं सम रहूं, तें साधक निर्वान ॥५॥

सामान्यार्थ—मैं कुन्दकुन्दाचार्य चार प्रकार के देवों और मनुष्यों के इन्द्रों से वन्दनीक, घातिया कर्मों को धोने वाले, धर्म के कर्ता, तीर्थस्वरूप, श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करता हूँ। तथा निर्मलज्ञान, दर्शन स्वभाव धारी शेप २३ तीर्थंकरों और सर्व सिद्धों को व पाँच तरह के आचार को पालने वाले आचार्यः उपाध्याय तथा साधुओं को नमस्कार करता हूँ। फिर मैं मनुष्यों के ढाई द्वीप क्षेत्र में रहने वाले वर्तमान सव अरहन्तों को एक साथ तथा अलग अलग वन्दना करता हूँ। इस प्रकार सब ही अरहन्तों को सिद्धों को सर्व साधुओं को नमस्कार करके उन पाँच परमेष्ठियों के विशुद्ध दर्शन, ज्ञान मई स्वभाव को प्राप्त होकर समता भाव को धारण करता हूँ जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो॥ १-५ ॥

आगे—चारित्र के फल को कहते हैं।

संपज्जदि णिव्वाणं, देवासुरमणुयरायविहवेहिं ।
जीवस्स चरित्तादो, दंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६ ॥

जीव चरित ऐसे बने, दर्शन ज्ञान प्रधान ।
सुर[1] खग नर नृप विभव कर, पद पावे निर्वान ६

अर्थ—इस जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की मुख्यता पूर्वक चारित्र के पालने से देव, असुर तथा मनुष्यों के स्वामियों की सम्पदाओं के साथ मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

आगे—वीतराग चारित्र के स्वरूप को कहते हैं।

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ॥ ७ ॥

केवल चारित धर्म है, धर्म वही समभाव ।
मोह छोभ से रहित जो, समरस जीव स्वभाव ७॥

अर्थ—निश्चय करके अपने आत्मा में स्थित वीतराग चारित्र ही धर्म है और जो धर्म है वही साम्यभाव कहा गया है तथा मोह की आकुलता से रहित जो आत्मा का परिणाम है वही साम्य भाव है ॥ ७ ॥

आगे चारित्र और आत्मा की एकता दिखाते हैं।

परिणमदि जेण दव्वं, तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं ।
तम्हा धम्मपरिणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥ ८ ॥

---

१ असुर ।

द्रव्य करे परिणमन जब, तत्क्षिण तन्मय होय ।
यथाभाव से परिणवे, तथा धर्ममय होय ॥८॥

अर्थ—द्रव्य जिस काल में जिस भाव से परिणमन करता है उसमें उसी समय तन्मय हो जाता है और जैसे भाव से परिणमन करता है तैसे भाव रूप हो जाता है ॥ ८ ॥

आगे—आत्मा के शुभ अशुभ और शुद्ध भावों का निर्णय करते हैं ।

जीवो परिणमदि जदा, सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो, हवदि हि परिणामसब्भावो ॥ ६ ॥

जीव परिणवे शुभाशुभ तवे, शुभाशुभ भाव ।
शुद्ध भाव जब परिणवे, होवे शुद्ध स्वभाव ॥ ६ ॥

अर्थ—जब यह आत्मा शुभ भाव से परिणमन करता है तब शुभ और जब अशुभ भाव से परिणमन करता है तब अशुभ और जब शुद्ध भाव से परिणमन करता है तब शुद्ध होता है ९॥

आगे - वस्तु का परिणाम वस्तु से अभिन्न है यह दिखाते हैं ।

णत्थि विणा परिणामं, अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो, अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥ १० ॥

द्रव्या विना परिणाम नहिं, बिन परिणाम न दर्व।
गुण पर्यय में जो रहे, वही द्रव्य है सर्व ॥ १० ॥

अर्थ—पर्याय के विना द्रव्य नहीं होता और द्रव्य के विना पर्याय नहीं होती । पदार्थ द्रव्य गुण पर्याय में रहता हुआ अपने अस्तिपने से सिद्ध होता है ॥ १० ॥

आगे—शुभ परिणाम और शुद्ध परिणाम के फल को कहते हैं ।

धम्मेण परिणदप्पा, अप्पा जदि शुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं, सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं ॥११॥

जीव परिणवे धर्म में, शुद्ध उपयोग स्वभाव।
मोक्ष सुःख को पावता, स्वर्ग सुःख शुभ भाव११।

अर्थ—धर्म भाव से परिणमन करता हुआ आत्मा यदि शुद्ध उपयोग सहित होता है तो निर्वाण के सुख को पाता है। यदि शुभ उपयोग सहित होता है तो स्वर्ग के सुख को पाता है॥ ११ ॥

आगे—त्यागने योग्य अशुभोपयोग के फल को दिखाते हैं।

असुहोदयेण आदा, कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा, अभिंधुदो भमइ अच्चंतं ॥१२॥

अशुभ उदय से जीव यह, कुनर नारकी ढोर।
दुःख सहे नित घोर बहु, लोकभ्रमण की ओर१२

अर्थ—अशुभोपयोग से परिणमन करता हुआ आत्मा पाप के उदय से दुःखी दरिद्री मनुष्य होकर अथवा तिर्यञ्च नारकी होकर हजारों दुःखों से सदा परिपीड़ित रहता है और इस संसार में भ्रमण करता है॥ १२ ॥

आगे—अत्यन्त उपादेय शुद्धोपयोग के विशेष फल को दिखाते हैं।

अइसयमादसमुत्थं, विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं, सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं ॥ १३ ॥

अतिशय श्रेष्ठ अनंत अरु, विषय रहित स्वाधीन।
बाधा बिन सुख जो कहा, शुद्धयोग फल चीन१३

अर्थ—अति आश्चर्यकारी आत्मा से उत्पन्न, पांच इन्द्रियों के विषयों से शून्य, उपमा रहित, अनन्त और निराबाध सुख एक शुद्धोपयोग का ही फल है ॥ १३ ॥

आगे—शुद्धोपयोग सहित जीव का स्वरूप कहते हैं।

सुविदिदपदत्थसुत्तो, संजमतवसजुदो विगदरागो ।
समणो समसुहदुक्खो, भणिदो सुद्धोवओगोत्ति ॥१४

राग रहित स्वपरज्ञ अरु, संयम तप संयुक्त ।
जिसके सुख दुख एक है, शुध उपयोग नियुक्त १४

अर्थ—जिसने भले प्रकार पदार्थ और उनके बताने वाले सूत्रों को जाना है, जो संयम और तप से संयुक्त है, वीत राग है और सुख दुःख में समता रखने वाला है वह साधु शुद्धोपयोगी है ॥ १४ ॥

आगे—शुद्धोपयोग के पश्चात् ही शुद्ध आत्मा की प्राप्ति दिखाते हैं।

उवओगविशुद्धो जो, विगदावरणंतरायमोहरओ ।
भूदो सयमेवादा, जादि परं णेयभूदाणं ॥ १५ ॥

निर्मल है उपयोग जहँ मोह आवरण दूर ।
स्वयं आतमा पावता, एक ज्ञान भरपूर ॥१५॥

अर्थ—जो शुद्धोपयोग के द्वारा निर्मल हो जाता है वह आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोह कर्म की रज से छूट जाता है व स्वयं ही सर्व ज्ञेय पदार्थों के अन्त को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है ॥ १५ ॥

आगे—शुद्धोपयोग का फल स्वाधीन दिखाते है।

तह सो लद्धसहावो, सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।
भूदो सयमेवादा, हवदि सयंभुत्ति णिद्दिट्ठो ॥१६॥

हुआ आप सर्वज्ञ अरु, सर्व लोक पति पूज।
पर के बिन स्वयमेव ही, स्वयंभू और न दूज१६

अर्थ--तथा वह आत्मा स्वयमेव ही विना किसी पर की सहायता से अपने स्वभाव को प्राप्त हुआ, सर्वज्ञ, तीन लोक का पति तथा इन्द्रादि से पूज्य हो जाता है इसलिये उसको स्वयंभू कहा गया है ॥ १६ ॥

आगे—स्वयंभू को नित्य, उत्पाद व्यय, और ध्रौव्य सेयुक्त दिखाते हैं।

भंगविहीणो य भवो, संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो, ठिदिसंभवणाससमवायो ॥१७॥

नाश रहित उत्पाद है, उतपाति रहित विनाश।
ध्रुव है सिद्ध स्वरूप में, हानि वृद्धि इक तास१७।

अर्थ—सिद्ध परमात्मा के नाश रहित स्वरूप का उत्पाद है और जो भावों का नाश हो गया है वह फिर उत्पाद से रहित है ऐसा स्वभाव होने पर भी उस परमात्मा के उत्पाद व्यय ध्रौव्य की एकता पाई जाती है ॥ १७ ॥

आगे—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य द्रव्य का स्वरूप है।

उप्पादो य विणासो, विज्जदि सव्वस्स अत्थजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि, अत्थो खलु होदि सब्भूदो ॥१८॥

उतपाति व्यय सब द्रव्य में, विद्यमान नित मान।
निश्चय से सब द्रव्य का, सत्ता रूप पिछान १८

---

१ समय।

अर्थ—किसी एक पर्याय की अपेक्षा सर्व ही पदार्थों में उत्पाद तथा विनाश होता है तो भी पदार्थ निश्चय से सत्ता रूप रहता है॥१८॥

आगे—स्वभाव से उत्पन्न हुये ज्ञान तथा सुख को दिखाते हैं।

पक्खीणघादिकम्मो, अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अदिंदिओ सो, णाणं सोक्खं च परिणमदि॥१६

चार घातिया नाश के, अमित चतुष्टय पाय।
ज्ञान और सुख परिणवे, इन्द्रिय ज्ञान नशाय १६॥

अर्थ—यह आत्मा घातिया कर्मों का नाश कर अनन्त वीर्य का धारी होता हुआ व अतिशय ज्ञान और दर्शन के तेज को रखता हुआ अतीन्द्रिय होकर ज्ञान और सुख रूप परिणमन करता है।१९

आगे—केवल ज्ञानी के शरीर सम्बन्धी सुख दुःख नहीं है।

सोक्खं वा पुण दुक्खं, केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं, जादं तम्हा दु तं णेयं॥ २० ॥

श्री जिनवर कें देह गत, सुख दुख एक न जान।
इस कारण इन्द्रिय बिना, आत्मीक सुख ज्ञान २०॥

अर्थ—केवल ज्ञानी के शरीर सम्बन्धी सुख तथा दुःख नहीं होते हैं क्योंकि उनके अतीन्द्रियपना प्रगट होगया है इसलिये उनके अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख ही जानने चाहिये॥ २० ॥

आगे—केवली के अतीन्द्रिय ज्ञान से सब वस्तु प्रत्यक्ष है।

परिणमदो खलु णाणं, पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया।
सो णेव ते विजाणदि, ओग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं॥२१

ज्ञान परिणमन से लखे, सर्व द्रव्य पर्याय।
क्रिया अवग्रह आदि से, नहीं जानता राय ॥२१॥

अर्थ—केवली भगवान् के सर्व द्रव्य और उनकी सब पर्यायें प्रत्यक्ष हो जाती हैं। वह केवली उन द्रव्य पर्यायों को अवग्रहपूर्वक नहीं जानते किन्तु एक साथ एक समय में सब को जान लेते हैं॥ २१ ॥

आगे—केवली के कोई भी वस्तु परोक्ष नहीं।

णत्थि परोक्खं किंचिवि, समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स
अक्खातीदस्स सदा, सयमेव हि णाणजादस्स ॥ २२ ॥

सर्व विषय सब अंग से, जाने रहा न गुप्त।
इन्द्रिय बिन स्वयमेव नित, केवल ज्ञान नियुक्त२२॥

अर्थ—सर्व इन्द्रियों के विषय जानने की शक्ति सर्व आत्मा के प्रदेशों में जिसको प्राप्त होगई है ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान करके व्याप्त है आत्मा जिसका वह निर्मल ज्ञान से परिपूर्ण और स्वयमेव ही केवल ज्ञान में परिणमन करने वाले उस अरहन्त के कुछ भी परोक्ष नहीं है॥ २२ ॥

आगे—आत्मा को ज्ञान प्रमाण और सर्व व्यापक दिखाते हैं।

आदा णाणपमाणं, णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोगालोगं, तम्हा णाणं तु सव्वगयं । २३ ॥

ज्ञाता ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान जु ज्ञेय प्रमान।
ज्ञेय जु लोकालोक है, ज्ञान सर्व गत जान ॥२३॥

अर्थ—आत्मा ज्ञान गुण के बराबर है और ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के बराबर है, ज्ञेय लोक और अलोक हैं इसलिये ज्ञान सर्वगत या सर्व व्यापक है ॥ २३ ॥

आगे—मूढ़ दृष्टि, आत्मा को ज्ञान प्रमाण नहीं मानता उसको युक्ति से दूषित करते हैं।

णाणप्पमाणमादा, ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अधिगो वा, णाणादो हवदि धुवमेव ॥ २४ ॥

हीणो जदि सो आदा, तण्णाणमचेदणं ण जाणादि।
अधिगो वा णाणादो, णाणेण विणा कहं णादि ॥ २५ ॥

जिसके मत में आतमा, ज्ञान प्रमाण न होय।
उस कुमती के आतमा, हीन अधिक ही होय ॥२४

हीन होय यदि आतमा, ज्ञान अचेतन जान।
अधिक ज्ञान से होय यदि, नहिं जाने बिन ज्ञान२५

अर्थ—इस जगत में जिसका यह मत है कि ज्ञान प्रमाण आत्मा नहीं है उसके मत में निश्चय से यह आत्मा ज्ञान से हीन या ज्ञान से अधिक होगा। यदि वह आत्मा ज्ञान से छोटा हो तब ज्ञान अचेतन होकर कुछ न जान सकेगा और जो आत्मा ज्ञान से अधिक होगा तो वह ज्ञान के बिना कैसे जान सकेगा ॥२४-२५

आगे—जिसतरह ज्ञान सर्वगत है उसीतरह पदार्थ ज्ञानगत है।

सव्वगदो जिणवसहो, सव्वेवि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो, विसयादो तस्स ते भणिदा २६

सर्व द्रव्य में ज्ञान करि, है जिनवर का वास।
ज्ञानमयी भगवान में, लोकालोक निवास ॥२६॥

अर्थ—ज्ञानमयी होने के कारण से भगवान सर्व व्यापक हैं तथा जगत में सर्व ही जो पदार्थ हैं सो उस भगवान के ज्ञान में गत हैं॥२६॥

आगे—ज्ञान और आत्मा एक है और आत्मा सुखादि स्वरूप भी है।

णाणं अप्पत्ति मदं, वट्टदि णाणं विणाण अप्पाणि ।
तम्हा णाणं अप्पा, अप्पा णाणं व अण्णं वा ॥ २७ ॥

ज्ञान जीव जिनवर कहा, जीव अन्यत्र न ज्ञान ।
ज्ञान जीव अरु जीव में, ज्ञान और गुण जान२७

अर्थ—ज्ञान आत्मा है क्योंकि ज्ञान आत्मा के बिना कहीं नहीं रहता इस लिये ज्ञान आत्मा है परन्तु आत्मा ज्ञान रूप भी है तथा अन्य रूप भी है ॥ २७ ॥

आगे—ज्ञान नतो ज्ञेय में आता है और न ज्ञेय ज्ञान में आता है ऐसा कहते हैं।

णाणी णाणसहावो, अत्था णेयप्पगा हि णाणिस्स ।
रूवाणि व चक्खूणं, णेवण्णोण्णेसु वट्टंति ॥ २८ ॥

ज्ञानी ज्ञान स्वभाव है, द्रव्यें ज्ञेय स्वरूप ।
ज्ञानी से वे द्रव्य सब, नेत्र भिन्न जिम रूप॥२८॥

अर्थ—ज्ञानी ज्ञान स्वभाव है और पदार्थ ज्ञेय स्वरूप है ज्ञानी के ज्ञेय स्वरूप पदार्थ नेत्रों की तरह परस्पर एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते ॥ २८ ॥

आगे—निश्चय से पदार्थ में आत्मा पैठा नहीं है, व्यवहार से जाने है।

ण पविट्ठो णाविट्ठो, णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू ।
जाणदि पस्सदि णियदं, अक्खातीदो जगमसेसं ॥२९॥

मिला अनामिला द्रव्य में बुद्ध नेत्र जिमि रूप ।
इन्द्रिय बिन संसार को, जाने लखे अनूप ॥२६॥

अर्थ—ज्ञान सहित आत्मा ज्ञेय पदार्थों में निश्चय से नहीं बैठा है किन्तु व्यवहार से बैठा है जैसे नेत्र, रूपी पदार्थों में निश्चय से बैठा नहीं है किन्तु उनको देखता है इससे व्यवहार से बैठा है ऐसा ज्ञानी अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्यों का त्यों सम्पूर्ण जगत को जानता देखता है ॥ २९ ॥

आगे—व्यवहार से आत्मा पदार्थों में बैठा है उसे दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं ।

रदणमिह इंदणीलं, दुद्धज्झसियं जहा सभासाए ।
अभिभूय तंपि दुद्धं, वट्टदि तह णाणमत्थेसु ॥ ३० ॥

दूध डुबाया नील मणि, जैसे नील प्रकाश ।
दूध नील करि वर्तता, ज्ञान द्रव्य यों वास ॥३०

अर्थ—जैसे इन्द्र नील मणि दूध में डुबाया हुआ अपनी प्रभा से उस दूध को तिरस्कार करके वर्तता है तैसे ही ज्ञान पदार्थों में वर्तता है ॥ ३० ॥

आगे—यदि ज्ञान में ज्ञेय न होवे तो दूषण दिखाते हैं ।

अथ मासिक पाठ में उनीसवां दिवस :—

जदि ते ण सन्ति अत्था, णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं ।
सव्वगयं वा णाणं, कहं ण णाणट्ठिया अत्था ॥ ३१ ॥

यदि द्रव्यें नहिं ज्ञान में, तो न ज्ञान में दर्व ।
कहो सर्वगत ज्ञान यदि, क्यों न ज्ञान गत सर्व ३१॥

अर्थ—यदि वे पदार्थ केवल ज्ञान में न होवें तो ज्ञान सर्व गत न होवे, और जब ज्ञान सर्वगत है तो किस तरह पदार्थ ज्ञान में स्थित न होंगे ? अवश्य होंगे ॥ ३१ ॥

आगे—केवली भगवान के ग्रहण, त्याग, रूप, परिणाम का अभाव दिखाते हैं।

गेण्हदि णेव ण मुंचदि, ण परं परिणमदि केवली भगवं ।
पेच्छदि समंतदो सो, जाणदि सव्वं णिरवसेसं ॥ ३२ ॥

गहें न छोड़ें केवली, पर न परिणवें लेश ।
सर्व अंग जाने लखें, कछू न छोड़ें शेष ॥ ३२ ॥

अर्थ—केवली भगवान पर द्रव्य को न तो ग्रहण करते हैं और न छोड़ते हैं न पर द्रव्य रूप आप परिणमन करते हैं किन्तु सर्व ज्ञेयों को सर्व तरह देखते जानते हैं ॥ ३२ ॥

आगे—केवलज्ञानी और श्रुतकेवली में समानता दिखाते हैं।

जो हि सुदेण विजाणदि, अप्पाणं जाणगं सहावेण ।
तं सुयकेवलिमिसिणो, भणंति लोगप्पदीवयरा ॥ ३३ ॥

श्रुत विशेष कर जानता, अपना ज्ञायक रूप ।
लोक प्रदीपक जिन कहें, श्रुत केवली स्वरूप ३३

अर्थ—जो निश्चय से श्रुतज्ञान के द्वारा ज्ञायक आत्मा को अच्छी तरह जानता है उसको लोक के प्रकाश करनेवाले ऋषिगण श्रुतकेवली कहते हैं।

आगे—द्रव्य श्रुत को ज्ञान व्यवहार से कहा गया है।

सुत्तं जिणोवदिट्ठं, पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं ।
तज्जाणणा हि णाणं, सुत्तस्स य जाणणा भणिया ॥ ३४ ॥

चित्र नं० ११
प्रवचनसार गाथा ६४ का भाव
पंचेन्द्रिय विषय

जेसिं विसयेसु रदी, तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं ।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥६४॥

जिन की रुचि है विषय में, उनके सहजहि दुःख।
यदि वह सहज न होय तो, विषय अर्थ नाहिं रुक्ख ६४

अर्थ—जिन जीवों की विषयों में प्रीति है उनको स्वाभाविक दुःख जानो। यदि वह इन्द्रिय जन्य दुःख स्वभाव से न हो तो विषयों के सेवन के लिये व्यापार न हो ॥ ६४ ॥

आगे—शरीर सुख का कारण नहीं है।

पप्पा इट्ठे विसये, फासेहिं समस्सिदे सहावेण ।
परिणममाणो अप्पा, सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥६५

इन्द्रिय आश्रित विषय को, भली भांति से पाय ।
स्वतः मानता जीव यह, देह न सुख उपजाय ६५।

अर्थ—यह आत्मा स्पर्श आदि इन्द्रियों के आश्रय से मनोग्य विषय भोगों को पाकर अपने अशुद्ध स्वभाव से परिणमन करता हुआ स्वयं ही सुख रूपसा मानलेता है शरीर सुख का कारण नहीं६५।

आगे—संसार अवस्था में भी आत्मा ही सुख का कारण है।

एगंतेण हि देहो, सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा ।
विसयवसेण दु सोक्खं, दुक्खं वा हवदि सयमादा ६६

देही को इस देह ने, किया न सुर पुर सुक्ख ।
विषयों के वश आतमा, माने सुख वा दुक्ख ६६

अर्थ—सब तरह से यह निश्चय है कि संसारी प्राणी को यह शरीर स्वर्ग में भी सुख नहीं करता है। यह आत्मा आप ही इन्द्रियों

के विषयों में आधीन होकर सुख या दुख मान लेता है ॥ ६६ ॥

आगे—आत्मा का स्वभाव ही सुख है इसलिये भोग बेकाम है।

तिमिरहरा जइ दिट्ठी, जणस्स दीवेण णत्थि कादव्वं।
तध सोक्खं सयमादा, विसया किं तत्थ कुव्वंति ६७॥

जिस की दृष्टी तिमिर हर, फिर दीपक बे काम।
जीव स्वयं सुख रूप हैं, विषय भोग बे काम ६७॥

अर्थ—जिस पुरुष की दृष्टि अंधेरे में देख सकती है उस को दीपक से कुछ काम नहीं। वैसे ही आत्मा स्वयं सुख रूप है तो वहां इन्द्रियों के विषय बे काम हैं ॥ ६७ ॥

आगे—आत्मा के ज्ञान सुख को दृष्टान्त से दिखाते हैं।

सयमेव जधादिच्चो, तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धोवि तधा णाणं, सुहं च लोगे तधा देवो॥ ६८ ॥

सूर्य स्वयं जिमि गगन में, चमके उष्ण स्वरूप।
शुद्ध जीव त्यों लोक में, पूज्य ज्ञान सुख रूप ६८।

अर्थ—जैसे आकाश में सूर्य, स्वयं ही तेज रूप, उष्ण रूप, ज्योतिषी देव है तैसे ही इस लोक मे आत्मा ज्ञान स्वरूप, सुख स्वरूप है, और देव (पूज्य) है ॥ ६८ ॥

आगे—इन्द्रिय सुख का कारण शुभोपयोग के स्वरूप को कहते हैं।

देवदजदिगुरूपूजासु, चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो, सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥६९॥

देव शास्त्र गुरु भक्ति युत, दान शील व्रत कीव।
अनसनादि में लीन जे, शुभ उपयोगी जीव।६९॥

अर्थ - जो श्री जिनेन्द्र देव, साधु और गुरु पूजा में तथा दान में व शीलादि चारित्र में उपवासादिकों में लवलीन है वह शुभोपयोग मई आत्मा है ॥ ६९ ॥

आगे—सुभोपयोग से इन्द्रिय सुख होता है।

जुत्तो सुहेण आदा, तिरियो वामाणुसो वा देवो वा।
भूदो तावदि कालं, लहदि सुहं इंदियं विविहं ॥ ७० ॥

शुभ फल से यह आतमा, होवे नर खग देव।
उतनी थिति तक पावता, इन्द्रिय सुख वहु भेव ७०

अर्थ—सुभोपयोग से युक्त आत्मा, मनुष्य, या देव, या तिर्यंच होकर उतने काल तक नाना प्रकार इन्द्रिय भोग सम्बन्धी सुख को पाता है ॥ ७० ॥

आगे—इन्द्रिय जनित सुख यथार्थ में दुःख ही है।

सोक्खं सहावसिद्धं, णत्थि सुराणंपि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा, रमंति विसयेसु रम्मेसु ॥ ७१ ॥

सुख न स्वभाविक सुरों के, कहते सब अनयोग।
देह वेदना वश थकी, भोगें सुन्दर भोग ॥७१॥

अर्थ—देवों के भी आत्मा के स्वभाव से प्राप्त होने वाला सुख नही है ऐसा परमागम में सिद्ध है। वे देव शरीर की वेदना से पीडित होकर रमणीक विषयों में रमण करते है ॥ ७१ ॥

आगे—शुभोपयोग और अशुभोपयोग में समानता दिखाते हैं।

णरणारयतिरियसुरा, भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किध सो सुहो व असुहो, उवओगो हवदि जीवाणं ७२

नर नारक पशु देव ये, भोगें देहिक दुक्ख ।
जीवों को फिर मत कहो, अशुभ दुःख शुभ सुक्ख ७२

अर्थ—मनुष्य, नार की पशु, और देव शरीर से उत्पन्न हुई पीड़ा को को भोगते हैं तो जीवों का शुभउपयोग अच्छा और अशुभ बुरा कैसे होसकता है। अर्थात निश्चय से दोनों अशुभ ही है ॥ ७२ ॥

आगे—शुभोपयोग के फल को विशेष दूपण दिखाकर निषेध करते हैं।

कुलिसाउहचक्कधरा, सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं ।
देहादीणं विद्धिं, करेंति सुहिदा इवाभिरिदा ॥ ७३ ॥

वज्रधरा अरु चक्रधर, भोगें शुभ फल दान ।
देह विषय वृद्धी करें, सुख में रति को ठान।७३॥

अर्थ—सुखियों के समान रति करते हुए इन्द्र तथा चक्रवर्ति आदिक शुभ उप योग के फल से उत्पन्न हुए भोगों के द्वारा शरीर आदि की वृद्धि करते हैं ॥७३ ॥

आगे—शुभोपयोग जनित पुण्य को भी दुःख का कारण दिखाते हैं।

जदि संति हि पुण्णाणि, य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि
जणयंति विसयतण्हं, जीवाणं देवदंताणं ॥ ७४ ॥

पैदा शुभ उपयोग से, पुण्य अनेक प्रकार ।
जीवों को देवान्त तक, विषय भोग में जार ७४॥

अर्थ—शुभ परिणामों से उत्पन्न नाना प्रकार के पुण्य कर्म देवताओं तक के जीवों के भीतर भी विषय की तृष्णा को पैदा करते हैं ॥ ७४ ॥

आगे--पुण्य को दुःख का बीज प्रगट करते हैं।

ते पुण उदिण्णतण्हा, दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि
इच्छंति अणुहवंति य, आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७५ ॥

फिर तृष्णा दुखित करे, विषय सुख अति लोभ।
वे चांहें अरु भोगवें, रहे मरण तक क्षोभ ॥७५॥

अर्थ—वे पुण्य कर्म के भोगी फिर भी तृष्णा को बढ़ाए हुए चाह की दाहों से झुलसते हुए इन्द्रिय विषय के सुखों को मरणपर्यंत दुःख से जलते हुए चाहते रहते हैं और भोगते हैं ॥ ७५ ॥

आगे—फिर भी पुण्य जनित इन्द्रिय सुखों को दुःख रूप कहते हैं।

सपरं बाधासहिदं, विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं, तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥ ७६ ॥

पराधीन बाधा सहित, विषय क्षणिक बन्धान।
जो इन्द्रिय से प्राप्त हैं, ते सुख दुक्ख समान ७६।

अर्थ—जो इन्द्रियों के द्वारा सुख प्राप्त होता है वह पराधीन है बाधा सहित है, नाश होने वाला है, कर्म बंध का बीज है और विषम है इस लिये यह सुख दुःख रूप ही है ॥ ७६ ॥

आगे—पुण्यपाप में कोई भेद नहीं है ऐसा निश्चय करते हैं।

ण हि मण्णदि जो एवं, णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं, संसारं मोहसंछण्णो ॥ ७७ ॥

पुण्य और यदि पाप में, भेद जो माने कोय।
भ्रमे घोर संसार में, मोहाच्छादित होय ॥७७॥

अर्थ—पुण्य और पाप कर्म में भेद नहीं है ऐसा जो निश्चय से नहीं मानता है वह मोह कर्म से ढका हुआ भयानक और अपार संसार में परिभ्रमण करता है ॥ ७७ ॥

आगे—जो पुरुष शुभ अशुभोपयोग को एक मानता है वह शुद्धोपयोग को ग्रहण करता है।

एवं विदिदत्थो जो, दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा।
उवओगविसुद्धो सो, खवेदि देहुब्भवं दुक्खं ॥ ७८ ॥

वस्तु रूप लखि जो तजे, राग द्वेष पर दर्व।
हुआ शुद्ध उपयोग में, भव दुख क्षय कर सर्व ७८।

अर्थ—इस तरह पदार्थों के स्वरूप को जानने वाला जो कोई पर द्रव्य में राग या द्वेष नहीं करता है वह शुद्ध उपयोग का रखताहुआ शरीर से उत्पन्न होने वाले दुःख का नाश करदेता है ॥ ७८ ॥

आगे—राग द्वेष के अभावविना शुद्ध आत्मा की सिद्धि नहीं।

चत्ता पावारंभं, समुट्ठिदो वा सुहंम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी, ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ७९

पापारम्भहिं छांडि के, धरि के शुभ चारित्र।
जो न तजे मोहादि को, लहे न चरन पवित्र ७९।

अर्थ—पाप के आरंभ को छोड़कर या शुभ चारित्र में वर्तन करता हुआ यदि कोई मोह आदि भावों को नहीं छोड़ता है तो वह शुद्ध आत्मा को नहीं पाता है ॥ ७९ ॥

आगे—राग द्वेष जीतने का उपाय क्या है ? उत्तर।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०।

जो जाने अरहंत गुण, और द्रव्य पर्याय ।
वह जाने निज आतमा, उसके मोह नशाय॥८०॥

अर्थ—जो श्री अरहंत भगवान को द्रव्य गुण व पर्याय से जानता है सोही आत्मा को जानता है। उसी का मोह निश्चय से नाश को प्राप्त होजाता है ॥ ८० ॥

आगे—राग द्वेष को सम्यग्दृष्टि जीत सकता है।

जीवो ववगदमोहो, उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।
जहदि जदि रागदोसे, सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥८१॥

सम्यग्दृष्टी जानता, सम्यक आप स्वरूप ।
यदि त्यागे रागादि को, तो होवे चिद्रूप ॥८१॥

अर्थ—दर्शन मोह से रहित जीव भले प्रकार आत्मा के तत्व को जानता हुआ यदि राग द्वेष को छोड़ देवे तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेता है ॥ ८१ ॥

आगे—उपरोक्त प्रकार ही अरहंतों ने सिद्धिकर उपदेश दिया।

सव्वेपि य अरहंता, तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।
किच्चा तधोवदेसं, णिव्वादा ते णमो तेसिं ॥ ८२ ॥

वन्दों इस विधि कर्म नासि, भए सर्व अरहंत ।
उसीतरह उपदेश दे, लोक शिखर निवसंत॥८२॥

अर्थ—इसीरीति से कर्मों का नाश कर सर्व ही अरहंत हुए तब वैसा ही उपदेश देकर वे निर्वाण को प्राप्त हुए इसलिये उनको नमस्कार हो ॥ ८२ ॥

आगे—शुद्धात्मा के घातक मोह को दिखाते हैं।

फर्श वर्ण रस गंध अरु, शब्दहि पुद्गल मान।
वे इन्द्रिय पन विषय को, युगपत गहे न जान५६

अर्थ—पांच इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस,वर्ण, और शब्द पुद्गल द्रव्य हैं। इन्द्रियें इन को भी एक समय में एक साथ ग्रहण नहीं कर सकती हैं॥ ५६॥

आगे—इन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा निश्चय करते हैं।

परदव्वं ते अक्खा, णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिदा।
उवलद्धं तेहि कहं, पच्चक्खं अप्पणो होदि॥ ५७॥

वे इन्द्रिय पर द्रव्य हैं, जीव स्वभाव न कोय।
उन से जो जाना हुआ, सत्यारथ किमि होय५७।

अर्थ—वेपांचों इन्द्रिय पर द्रव्य हैं क्योंकि वे आत्मा के स्वरूप नहीं हैं इसलिये उन इन्द्रियों के द्वारा जानी हुई वस्तु किसतरह आत्मा को प्रत्यक्ष हो सकता है ? अर्थात नहीं होसक्ता॥ ५७॥

आगे—परोक्ष प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण दिखाते हैं।

जं परदो विण्णाणं, तं तु परोक्खंत्ति भणिदमत्थेसु।
जदि केवलेण णादं, हवदि हि जीवेण पच्चक्खं॥ ५८॥

जो पदार्थ पर से लखे, उसे परोक्ष पिछान।
जो केवल निज से लखे, उसे प्रगट ही मान५८॥

अर्थ—जो ज्ञान पर की सहायता से ज्ञेय पदार्थों का होता है उसको परोक्ष कहा गया है परन्तु जो मात्र केवल जीव के द्वारा ही ज्ञान होता हैं वह प्रत्यक्ष है॥ ५८॥

आगे—अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान निश्चय सुख है और अभेद है।

जादं सयं समत्तं, णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं।
रहिदं तु उग्गहादिहि. सुहत्ति एयंतियं भणिदं ॥५९॥

स्वयं हुआ सब द्रव्य, में निर्मल केवलज्ञान।
रहित अवग्रह आदि से, निश्चय सुःख निधान ५९

अर्थ—जो ज्ञान स्वयं पैदा हुआ है, वह पूर्ण है अनंत पदार्थों में फैला हुआ है, निर्मल है, तथा अवग्रह आदि के क्रम से रहित नियम से सुख रूप है ऐसा कहा गया है ॥ ५९ ॥

आगे—केवल ज्ञानी को खेद हो सकता होगा इस तर्क का निषेध करते हैं।

जं केवलत्ति णाणं. तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो, जम्हा घादी खयं जादा ॥६०॥

जो केवल पद ज्ञान का, वही सुःख परिणाम।
खेद बिना उसको कहा, रहे न घाती राम॥६०॥

अर्थ—जो केवल ज्ञान है वही सुख है तथा वही आत्मा का स्वाभाविक परिणाम है क्योंकि घातिया कर्म नष्ट होगए हैं इसलिये उस केवलज्ञान के अंदर खेद नहीं कहा गया है ॥ ६० ॥

आगे—फिर भी केवलज्ञान के स्वरूप को दिखाते हैं।

णाणं अत्थंतगदं, लोगालोगेसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं, इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं। ६१ ॥

द्रव्य पारगत ज्ञान है, दर्शन लोका लोक।
सब अनिष्ट का नाश है, खुला इष्ट का थोक ६१।

अर्थ—केवल ज्ञान होने पर ज्ञान सब पदार्थों के पार को प्राप्त होगया तथा केवल दर्शन अलोक और लोक में फैल गया। जो अनिष्ट

था वह सब प्रकार नाश होगया तथा जो सब इष्ट था वह सब प्राप्त होगया ॥ ६१ ॥

आगे—केवली के अतीन्द्रिय सुख है ऐसा भव्य श्रद्धान करता है।

ण हि सद्दहंति सोक्खं, सहेसु परमंति विगदघादीणं।
सुणिऊण ते अभव्वा, भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥६२॥

नशे घातिय कर्म जब, सब सुख से सुख और।
सुन अभव्य नहि मानता, भावि माने शिर मौर ६२

अर्थ—घातिया कर्मों से रहित केवलियों के सब सुखों में श्रेष्ट अतीइन्द्रिय सुख होता है ऐसा सुन करके भी जो श्रद्धान नहीं करते वे अभव्य हैं। किन्तु भव्य जीव इस बात को मानते हैं ॥ ६२ ॥

अथ मासिक पाठ में बीसवां दिवस:—

आगे—परोक्ष ज्ञानियों के इन्द्रियाधीन सुख दुःख ही है।

मणुआऽसुरामरिंदा, अहिदुदुआ इंदिएहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं, रमंति विसयेसु रम्मेसु ॥ ६३ ॥

मनुज असुर सुर इन्द्र जे, पीडित इन्द्रिय रोग।
उस दुख से भय भीत हो, भोगें सुन्दर भोग ६३।

अर्थ मनुष्य व चार प्रकार के देव, तथा उन के इन्द्र, अपनी इन्द्रिय की दाह (इन्द्रियाभिलाप) से पीडित होते हुये उस पीड़ा को सहने में असमर्थ होते हैं। इससे इन्द्रियों के रमणीक विषय भोगों में रमने लगते हैं ॥ ६३ ॥

आगे—जब तक इन्द्रियां हैं तब तक दुख ही है।

चित्र नं० ११

प्रवचनसार गाथा ६४ का भाव

पंचेन्द्रिय विषय

जेसिं विसयेसु रदी, तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥६४॥

जिन की रुचि है विषय में, उनके सहजहि दुःख।
यदि वह सहज न होय तो,विषय अर्थ नाहिं रुक्ख६४

अर्थ—जिन जीवों की विषयों में प्रीति है उनको स्वाभाविक दुःख जानो। यदि वह इन्द्रिय जन्य दुःख स्वभाव से न हो तो विषयों के सेवन के लिये व्यापार न हो॥ ६४ ॥

आगे—शरीर सुख का कारण नहीं है।

पप्पा इट्ठे विसये, फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा, सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥६५

इन्द्रिय आश्रित विषय को, भली भांति से पाय।
स्वतः मानता जीव यह, देह न सुख उपजाय ६५।

अर्थ—यह आत्मा स्पर्श आदि इन्द्रियों के आश्रय से मनोग्य विषय भोगों को पाकर अपने अशुद्ध स्वभाव से परिणमन करता हुआ स्वयं ही सुख रूपसा मानलेता है शरीर सुख का कारण नहीं६५।

आगे—संसार अवस्था में भी आत्मा ही सुख का कारण है।

एगंतेण हि देहो, सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं, दुक्खं वा हवदि सयमादा ६६

देही को इस देह ने, किया न सुर पुर सुक्ख ।
विषयों के वश आतमा, माने सुख वा दुक्ख६६

अर्थ—सब तरह से यह निश्चय है कि संसारी प्राणी को यह शरीर स्वर्ग में भी सुख नहीं करता है। यह आत्मा आप ही इन्द्रियों

के विषयों में आधीन होकर सुख या दुख मान लेता है ॥ ६६ ॥

आगे—आत्मा का स्वभाव ही सुख है इसलिये भोग बेकाम है।

तिमिरहरा जइ दिट्ठी, जणस्स दीवेण णत्थि कादव्वं।
तध सोक्खं सयमादा, विसया किं तत्थ कुव्वंति ६७॥

जिस की दृष्टी तिमिर हर, फिर दीपक बे काम।
जीव स्वयं सुख रूप है, विषय भोग बे काम ६७॥

अर्थ—जिस पुरुष की दृष्टि अंधेरे में देख सकती है उस को दीपक से कुछ काम नहीं। वैसे ही आत्मा स्वयं सुख रूप है तो वहां इन्द्रियों के विषय बे काम हैं ॥ ६७ ॥

आगे—आत्मा के ज्ञान सुख को दृष्टान्त से दिखाते हैं।

सयमेव जधादिच्चो, तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धोवि तधा णाणं, सुहं च लोगे तधा देवो॥ ६८ ॥

सूर्य स्वयं जिमि गगन में, चमके उष्ण स्वरूप।
शुद्ध जीव त्यों लोक में, पूज्य ज्ञान सुख रूप६८।

अर्थ—जैसे आकाश में सूर्य, स्वयं ही तेज रूप, उष्ण रूप, ज्योतिषी देव है तैसे ही इस लोक मे आत्मा ज्ञान स्वरूप, सुख स्वरूप है, और देव (पूज्य) है ॥ ६८ ॥

आगे—इन्द्रिय सुख का कारण शुभोपयोग के स्वरूप को कहते हैं।

देवदजदिगुरूपूजासु, चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो, सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥६९॥

देव शास्त्र गुरु भक्ति युत, दान शील व्रत कीव।
अनसनादि में लीन जे, शुभ उपयोगी जीव।६९॥

अर्थ - जो श्री जिनेन्द्र देव, साधु और गुरु पूजा में तथा दान में व शीलादि चारित्र में उपवासादिकों में लवलीन हैं वह शुभोपयोग मई आत्मा है ॥ ६९ ॥

आगे—सुभोपयोग से इन्द्रिय सुख होता है।

जुत्तो सुहेण आदा, तिरियो वाम्राणुसो वा देवो वा।
भूदो तावदि कालं, लहदि सुहं इंदियं विविहं ॥ ७० ॥

शुभ फल से यह आतमा, होवे नर खग देव।
उतनी थिति तक पावता, इन्द्रिय सुख वहु भेव ७०

अर्थ—सुभोपयोग से युक्त आतमा, मनुष्य, या देव, या तिर्यंच होकर उतने काल तक नाना प्रकार इन्द्रिय भोग सम्वन्धी सुख को पाता है ॥ ७० ॥

आगे—इन्द्रिय जनित सुख यथार्थ में दुःख ही है।

सोक्खं सहावसिद्धं, णत्थि सुराणंपि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा, रमंति विसयेसु रम्मेसु ॥ ७१ ॥

सुख न स्वभाविक सुरों के, कहते सब अनयोग।
देह वेदना वश थकी, भोगें सुन्दर भोग ॥७१॥

अर्थ—देवों के भी आत्मा के स्वभाव से प्राप्त होने वाला सुख नही है ऐसा परमागम में सिद्ध है। वे देव शरीर की वेदना से पीडित होकर रमणीक विषयों में रमण करते है ॥ ७१ ॥

आगे—शुभोपयोग और अशुभोपयोग में समानता दिखाते हैं।

णरणारयतिरियसुरा, भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किध सो सुहो व असुहो, उवओगो हवदि जीवाणं ७२

नर नारक पशु देव ये, भोगें दैहिक दुक्ख ।
जीवों को फिर मत कहो, अशुभ दुःख शुभ सुक्ख ७२

अर्थ—मनुष्य, नार की पशु, और देव शरीर से उत्पन्न हुई पीड़ा को को भोगते हैं तो जीवों का शुभउपयोग अच्छा और अशुभ बुरा कैसे होसकता है । अर्थात निश्चय से दोनों अशुभ ही है ॥ ७२ ॥

आगे—शुभोपयोग के फल को विशेप दूपण दिखाकर निषेध करते हैं।

कुलिसाउहचक्कधरा, सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं ।
देहादीणं विद्धिं, करेंति सुहिदा इवाभिरिदा ॥ ७३ ॥

वज्रधरा अरु चक्रधर, भोगें शुभ फल दान ।
देह विषय वृद्धी करें, सुख में रति को ठान ।७३॥

अर्थ—सुखियों के समान रति करते हुए इन्द्र तथा चक्रवर्ति आदिक शुभ उप योग के फल से उत्पन्न हुए भोगों के द्वारा शरीर आदि की वृद्धि करते हैं ॥७३ ॥

आगे—शुभोपयोग जनित पुण्य को भी दुःख का कारण दिखाते हैं।

जदि संति हि पुण्णाणि, य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि
जणयंति विसयतण्हं, जीवाणं देवदंताणं ॥ ७४ ॥

पैदा शुभ उपयोग से, पुण्य अनेक प्रकार ।
जीवों को देवान्त तक, विषय भोग में जार ७४॥

अर्थ—शुभ परिणामों से उत्पन्न नाना प्रकार के पुण्य कर्म देवताओं तक के जीवों के भीतर भी विषय की तृष्णा को पैदा करते हैं ॥ ७४ ॥

आगे--पुण्य को दुःख का बीज प्रगट करते हैं।

ते पुण उदिरणतरहा, दुहिदा तरहाहिं विसयसोक्खाणि
इच्छंति अणुहवंति य, आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७५ ॥

फिर तृष्णा दुखित करे, विषय सुख अति लोभ।
वे चांहें अरु भोगवें. रहे मरण तक क्षोभ ॥७५॥

अर्थ—वे पुण्य कर्म के भोगी फिर भी तृष्णा को बढ़ाए हुए चाह की दाहों से झुलसते हुए इन्द्रिय विषय के सुखों को मरणपर्यंत दुःख से जलते हुए चाहते रहते हैं और भोगते हैं ॥ ७५ ॥

आगे—फिर भी पुण्य जनित इन्द्रिय सुखों को दुःख रूप कहते हैं।

सपरं बाधासहिदं, विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं. तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥ ७६ ॥

पराधीन बाधा सहित, विषय क्षणिक बन्धान।
जो इन्द्रिय से प्राप्त हैं, ते सुख दुक्ख समान ७६।

अर्थ—जो इन्द्रियों के द्वारा सुख प्राप्त होता है वह पराधीन है बाधा सहित है, नाश होने वाला है, कर्म बंध का बीज है और विषम है इस लिये यह सुख दुःख रूप ही है ॥ ७६ ॥

आगे—पुण्यपाप में कोई भेद नहीं है ऐसा निश्चय करते हैं।

ण हि मण्णदि जो एवं, णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं, संसारं मोहसंछण्णो ॥ ७७ ॥

पुण्य और यदि पाप में, भेद जो माने कोय।
भ्रमे घोर संसार में, मोहाच्छादित होय ॥७७॥

अर्थ—पुण्य और पाप कर्म में भेद नहीं है ऐसा जो निश्चय से नहीं मानता है वह मोह कर्म से ढका हुआ भयानक और अपार संसार में परिभ्रमण करता है ॥ ७७ ॥

आगे—जो पुरुष शुभ अशुभोपयोग को एक मानता है वह शुद्धोपयोग को ग्रहण करता है।

एवं विदिदत्थो जो, दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा।
उवओगविसुद्धो सो, खवेदि देहुब्भवं दुक्खं ॥ ७८ ॥

वस्तु रूप लखि जो तजे, राग द्वेष पर दर्व।
हुआ शुद्ध उपयोग में, भव दुख क्षय कर सर्व ७८।

अर्थ—इस तरह पदार्थों के स्वरूप को जानने वाला जो कोई पर द्रव्य में राग या द्वेष नहीं करता है वह शुद्ध उपयोग का रखता हुआ शरीर से उत्पन्न होने वाले दुःख का नाश करदेता है ॥ ७८ ॥

आगे—राग द्वेष के अभावबिना शुद्ध आत्मा की सिद्धि नहीं।

चत्ता पावारंभं, समुट्ठिदो वा सुहंम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी, ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ७९

पापारम्भहिं छांडि के, धरि के शुभ चारित्र।
जो न तजे मोहादि को, लहे न चरन पवित्र ७९।

अर्थ—पाप के आरंभ को छोड़कर या शुभ चारित्र में वर्तन करता हुआ यदि कोई मोह आदि भावों को नहीं छोड़ता है तो वह शुद्ध आत्मा को नहीं पाता है ॥ ७९ ॥

आगे—राग द्वेष जीतने का उपाय क्या है ? उत्तर।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

जो जाने अरहंत गुण, और द्रव्य पर्याय ।
वह जाने निज आतमा, उसके मोह नशाय॥८०॥

अर्थ—जो श्री अरहंत भगवान को द्रव्य गुण व पर्याय से जानता है सोही आत्मा को जानता है। उसी का मोह निश्चय से नाश को प्राप्त होजाता है ॥ ८० ॥

आगे—राग द्वेष को सम्यग्दृष्टि जीत सकता है।

जीवो ववगदमोहो, उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।
जहदि जदि रागदोसे, सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥८१॥

सम्यग्दृष्टी जानता, सम्यक आप स्वरूप ।
यदि त्यागे रागादि को, तो होवे चिद्रूप ॥८१॥

अर्थ—दर्शन मोह से रहित जीव भले प्रकार आत्मा के तत्व को जानता हुआ यदि राग द्वेष को छोड़ देवे तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेता है ॥ ८१ ॥

आगे—उपरोक्त प्रकार ही अरहंतों ने सिद्धिकर उपदेश दिया।

सव्वेपि य अरहंता, तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।
किच्चा तधोवदेसं, णिव्वादा ते णमो तेसिं ॥ ८२ ॥

वन्दों इस विधि कर्म नासि, भए सर्व अरहंत ।
उसीतरह उपदेश दे, लोक शिखर निवसंत॥८२॥

अर्थ—इसीरीति से कर्मों का नाश कर सर्व ही अरहंत हुए तब वैसा ही उपदेश देकर वे निर्वाण को प्राप्त हुए इसलिये उनको नमस्कार हो ॥ ८२ ॥

आगे—शुद्धात्मा के घातक मोह को दिखाते हैं।

दव्वादिएसु मूढो, भावो जीवस्स हवदि मोहोत्ति।
खुब्भदि तेणोछण्णो, पप्पा रागं व दोसं वा ॥ ८३ ॥

आतम का द्रव्यादि में, मूढ़ भाव सों मोह।
उससे आच्छादित हुआ, करे राग अरु द्रोह८३॥

अर्थ—आत्मा का द्रव्यों में जो अज्ञान भाव है वह मोह है इस मोह से प्राणी राग या द्वेष को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥

आगे—मोह अनिष्ट का कारण है इसलिये क्षय करना योग्य है।

मोहेण व रागेण व, दोसेण व परिणदस्स जीवस्स।
जायदि विविहो बंधो, तम्हा ते संखवइदव्वा ॥ ८४ ॥

राग द्वेष अरु मोह से, जीव परिणवे जान।
विविध बंध पैदा करे, इस कारण क्षय ठान८४॥

अर्थ—मोह तथा राग द्वेष से परिणमन करने वाले आत्मा के नाना प्रकार कर्म बंध होता है इसलिये इनका क्षय करना योग्य है॥८४॥

आगे—मोह के चिन्ह बताते हैं।

अट्ठे अजधागहणं, करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसयेसु अप्पसंगो, मोहस्सेदाणि लिंगाणि ॥ ८५ ॥

द्रव्य अन्यथा गहे अरु, दया भाव नर ढ़ोर।
इष्टानिष्टहि रति अराति, चिन्ह मोह शिर मोर८५

अर्थ—पदार्थों को यथार्थ नहीं समझना, तिर्यंच या मनुष्यों में राग सहितदया भाव और विषयों में विशेष लीनता ये मोह के विशेष चिन्ह हैं ॥ ८५ ॥

आगे—मोह का क्षय करने के लिये उपाय विचारते हैं।

जिणसत्थादो अट्ठे, पच्चक्खादीहिं वुज्झदो णियमा।
खीयदि मोहोवचयो, तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

नय प्रमाण जिन सूत्र से, जो द्रव्यें लख लेय।
होय मोह क्षय नियम से, पढ़ो जिनागम सेय८६।

अर्थ—जिन शास्त्र के द्वारा पदार्थों को प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जानने वाले पुरुष के नियम से मोह का समूह नष्ट होजाता है। इस लिये शास्त्र को अच्छी तरह पढ़ना योग्य है ॥ ८६ ॥

आगे—द्रव्य गुण पर्याय को अर्थ नाम से कहते हैं

दव्वाणि गुणा तेसिं, पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया।
तेसु गुणपज्जयाणं, अप्पा दव्वत्ति उवदेसो ॥ ८७ ॥

द्रव्याश्रय पर्याय गुण, उन युत अर्थ बखान।
उनमें गुण पर्याय का, सर्व सु द्रव्य पिछान ८७॥

अर्थ द्रव्य गुण और उन की पर्यायों को अर्थ नाम से कहा गया है। इन में गुण और पर्यायों का सर्वस्व द्रव्य है ऐसा उपदेश है ॥ ८७ ॥

आगे—मोह के नाश का उपाय जिन उपदेश और पुरुषार्थ है।

जो मोहरागदोसे, णिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं, पावदि अचिरेणकालेण ॥८८॥

जो जीते मोहादि को, पाकर जिन उपदेश।
अल्प काल में शिव लहे, छूटे कर्म कलेश ॥८८॥

अर्थ—जो जिनेन्द्र के तत्व ज्ञान के उपदेश को पाकर राग और द्वेष को नाश करता है वह थोड़े ही काल में सर्व दुःखों से मुक्ति

पाता है ॥ ८८ ॥

आगे—भेदविज्ञान से मोह का नाश होता है।

णाणप्पगमप्पाणं, परं च दव्वत्तणाहि संबद्धं।
जाणदि जदि णिच्छयदो, जो सो मोहक्खयं कुणदि ८९

ज्ञान रूप जो आप को, परको परके रूप।
जो जाने निश्चय वही, करे मोह क्षय भूप॥८९॥

अर्थ—जो निश्चय से अपने ज्ञान स्वरुप आत्मा को तथा अन्य चेतन अचेतन पदार्थ को अपने अपने द्रव्य रूप जानता है वही मोह का क्षय करता है ॥ ८९ ॥

आगे—भेदविज्ञान जिनागम से होता है।

तम्हा जिणमग्गादो, गुणेहि आदं परं च दव्वेसु।
अभिगच्छदु णिम्मोहं, इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ९०

मोह रहित निज को चहे, सोधि जिनागम ज्ञान।
निज गुण को पर द्रव्य से, भिन्न लेउ पहिचान ९०।

अर्थ—इस लिये जिन भागवान कथित आगम से विशेष गुणों के द्वारा छह द्रव्यों में से अपने आत्मा और पर द्रव्य को जाने यदि आत्मा अपने को मोह रहित करना चाहता है तो ॥ ९० ॥

आगे—भेदविज्ञान के विना आत्म लाभ नहीं है।

सत्तासंबद्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे।
सद्दहदि ण सो समणो, तत्तो धम्मो ण संभवदि ९१॥

है सत्ता सब द्रव्य में, जो सामान्य विशेष।
मानि पदले जाने नहीं मानि अरु भर्म न लेष ॥९१॥

अर्थ—जो जीव निश्चय से साधु अवस्था में सत्ता भाव से एक सबंध रूप तथा विशेष भाव से भिन्न भिन्न सत्ता सहित पदार्थों का श्रद्धान नहीं करता है वह साधु नहीं है उस साधु से धर्म का साधन संभव नहीं ॥ ९१ ॥

आगे—भेद विज्ञान से आत्मा की सिद्धि दिखाते हैं।

जो णिहदमोहदिट्ठी, आगमकुसलो विरागचरियम्मि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा, धम्मोत्ति विसेसिदो समणो॥९२॥

दृष्टि मोह क्षय, श्रुत कुशल, वीत राग का भेष।
सावधान सो श्रेष्ठ है, वह मुनि धर्म विशेष॥९२॥

अर्थ—जिसने दर्शन मोह को नष्ट कर दिया है जो आगम ज्ञान में कुशल है व वीतराग चारित्र में लीन है वही महात्मा है वही मुनि है और धर्म है ऐसा कहा गया है ॥ ९२ ॥

इति ज्ञानाधिकारः

अथ ज्ञेयाधिकारः

अथ मासिक पाठ में इक्कीसवां दिवसः—

आगे—पदार्थों की पर्यायों में मोही मोहा है ऐसा दिखाते हैं।

अत्थो खलु दव्वमओ, दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुण पज्जाया, पज्जयमूढा हि परसमया॥ ९३ ॥

अर्थ द्रव्य मय द्रव्य सब, ते गुण मयी बखान।
उनकी ही पर्याय में, मोहा पर्ययवान ॥ ९३ ॥

अर्थ—निश्चय से पदार्थ द्रव्य स्वरूप हैं और वे द्रव्य गुण स्वरूप कहे गए हैं। उन द्रव्य गुणों के ही परिणमन से पर्यायें होती हैं। जो पर्यायों में मोही है वे ही निश्चय से परसमय रूप अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं ॥ ९३ ॥

आगे—स्वसमय और परसमय का स्वरूप प्रगट करते हैं।

जे पज्जयेसु णिरदा, जीवा परसमयिगत्ति णिद्दिट्टा।
आदसहावम्मि ठिदा, ते सगसमया मुणेदव्वा ॥६४॥

पर्यय रत जो जीव हैं, ते परसमय वखान।
निज स्वभाव में रत रहें, जीव स्वसमयी जान६४

अर्थ--जो जीव शरीरादि अशुद्ध कर्म जनित अवस्थाओं में लवलीन हैं वे परसमय रूप कहे गए हैं तथा जो जीव अपने शुद्ध आत्मा के स्वभाव में ठहरे हुवे हैं वे स्वसमय रूप जानने चाहिये ॥९४॥

आगे--द्रव्य का लक्षण कहते हैं।

अपरिचत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं, जत्तं दव्वत्ति वुच्चंति॥ ९५ ॥

निज स्वभाव छांडे न अरु,उतपाति व्यय ध्रुव खान।
उसे द्रव्य जिनवर कहें, जो गुण पर्ययवान ॥९५॥

अर्थ--जो अपने अस्तित्व स्वभाव को नहीं छोड़ता और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य संयुक्त है और गुण पर्याय सहित है उसको द्रव्य ऐसा कहते हैं॥ ९५॥

आगे--द्रव्य के अस्तित्व को दिखाते हैं।

सब्भावो हि सहावो, गुणेहिं सगपज्जएहि चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं, उप्पादव्वयधुवत्तेहिं॥ ९६ ॥

अस्ती रूप स्वभाव है, नाना गुण पर्याय।
द्रव्य रूप उतपाद व्यय,ध्रुव सब काल दिखाय९६

अर्थ--अपने गुण और नाना प्रकार की अपनी पर्यायों करके तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, कर द्रव्य का सर्वकाल में जो सद्भाव

है वही निश्चय करके उसका स्वभाव है ॥ ९६ ॥

आगे—महासत्ता के स्वरूप को दिखाते हैं।

इह विविहलक्खणाणं, लक्खणमेगं सदित्तिमव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं, जिणवरवसहेण पण्णत्तं ॥९७॥

यों अनेक लक्षण दरव, सत लक्षण गत सर्व।
धर्म प्रवर्तक जिन वृषभ, वर्णी निश्चय दर्व॥९७॥

अर्थ—इस लोक में नाना प्रकार भिन्न भिन्न लक्षण रखनेवाले पदार्थों का एक सर्व व्यापक लक्षण सत् है। ऐसा वस्तु के स्वभाव का उपदेश करने वाले श्रीवृषभ जिनेन्द्र ने प्रगट रूप से कहा है ९७

आगे—द्रव्यों से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति निषेध करते हैं।

दव्वं सहावसिद्धं, सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो।
सिद्धं तध आगमदो, णेच्छदि जो सो हि परसमओ ॥९८

द्रव्य स्वयं निष्पन्न है, सत् स्वरूप उपदेश।
जो न जिनागम मानता, समदृष्टी नहीं लेश९८।

अर्थ—द्रव्य स्वभाव से सिद्ध है सत् स्वरूप है एसा जिनेन्द्र देव ने तत्व स्वरूप से कहा है तैसा ही आगम से सिद्ध है जो ऐसा नहीं मानता है वह प्रगट रूप से परसमय है ॥ ९८ ॥

आगे—उतपाद व्यय ध्रौव्य होने पर ही सत द्रव्य होता है।

सदवट्ठियं सहावे, दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो, ठिदिसंभवणाससंबद्धो।

थिर स्वभाव सत द्रव्य है, द्रव्याहि जो परिणाम।
ऐसा अर्थ स्वभाव है, उतपाति व्यय ध्रुव धाम९९।

अर्थ—स्वभाव में रहा हुआ द्रव्य सत् है, द्रव्य का गुण पर्यायों में जो, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, सहित परिणाम है वह ही स्वभाव है ॥ ९९ ॥

आगे—उत्पाद व्यय ध्रौव्य, ये पृथक नहीं हैं एक ही हैं।

ण भवो भंगविहीणो, भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादोवि य भंगो, ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥१००॥

नाश रहित उत्पाद नहिं,उतपति रहित न नाश।
सो थिर वस्तू के विना,उतपति वने न नाश१००

अर्थ—व्यय के विना उत्पाद नहीं होता तथा उत्पाद के विना व्यय नहीं होता और उत्पाद तथा व्यय विना ध्रौव्य पदार्थ के नहीं होता ॥ १०० ॥

आगे—उत्पाद व्यय ध्रौव्य का अभेद सिद्ध करते हैं।

उप्पादट्ठिदिभंगा, विज्जंते पज्जयेसु पज्जाया।
दव्वं हि संति णियदं, तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥१०१

उतपति व्यय ध्रुव में रहे, पर्यय से पर्याय।
रहें द्रव्य में नियम से, वही द्रव्य समुदाय॥१०१॥

अर्थ—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य, पर्यायों में रहते हैं पर्यायें निश्चय से द्रव्य में रहती हैं इसकारण से वह सब पर्यायें द्रव्य हैं ॥ १०१ ॥

आगे—इन उत्पादादिकों में समय भेद नहीं है।

समवेदं खलु दव्वं, संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एकम्मि चेव समये, तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं ॥१०२॥

चित्र नं० १२

प्रवचनसार गाथा १०३ का भाव
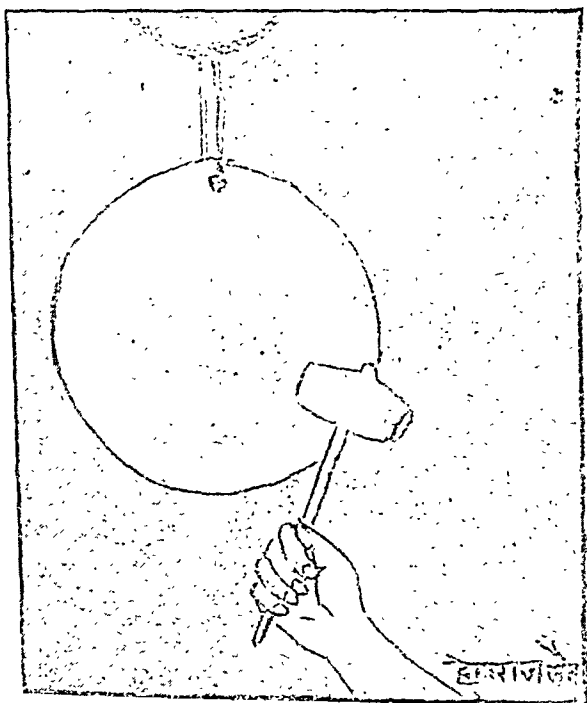
द्रव्य नित्य पर्याय अनित्य

एकमेक है द्रव्य से, उतपाति व्यय ध्रुव भाव ।
एक समय में परिणवें, वे सब द्रव्य स्वभाव१०२॥

अर्थ—द्रव्य निश्चय से एक ही समय में परिणमन करने वाले उत्पाद स्थिति व नाश नाम भावों से एक रूप है (अभिन्न है) इस लिये द्रव्य प्रगट रूप से एक ही है ॥ १०२ ॥

आगे—अनेक द्रव्यों के संयोग से उत्पादादि को दिखाते हैं।

पाडुब्भवदि य अण्णो, पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।
दव्वस्स तंपि दव्वं, णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं ॥ १०३ ॥

अन्यहिं पर्यय उपजता, अन्यहिं पर्यय नाश ।
द्रव्यें नित ज्यों त्यों रहें,द्रव्य न उपज विनाश१०३।

अर्थ—द्रव्य की अन्य कोई पर्याय प्रगट होती है और अन्य कोई पूर्व पर्याय नष्ट होती है तोभी द्रव्य न तो नाश हुआ है और न उत्पन्न हुआ है ॥ १०३ ॥

आगे—एक द्रव्य से उत्पादादि को दिखाते हैं।

परिणमदि सयं दव्वं, गुणदो य गुणंत्तरं सदविसिट्ठं ।
तम्हा गुणपज्जाया, भणिया पुण दव्वमेवत्ति॥ १०४ ॥

द्रव्य स्वयं ही परिणवे; गुण से गुण सत रूप ।
इससे गुण पर्याय मय; कहते द्रव्य स्वरूप ॥१०४॥

अर्थ—अपनी सत्ता से अभिन्न द्रव्य एक गुण से अन्य गुणरूप स्वयं आप ही परिणमन करता है इस कारण से गुणों की पर्याय द्रव्य ही हैं ऐसा कहा जाता है ॥ १०४ ॥

सत्ता और द्रव्य को अभेद दिखाते हैं।

ण हवदि जदि सद्दव्वं, असद्धुवं हवदि तं कधं दव्वं।
हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥१०५॥

जो सत द्रव्य न होय तो, असत द्रव्य ध्रुव होय।
और भिन्न हो तब कहें, द्रव्य स्वयं सत होय १०५.

अर्थ—यदि सत्ता रूप द्रव्य नहीं होवे तो वह द्रव्यअसत रूप होजाय अथवा फिर वह द्रव्य सत्ता से भिन्न होजावे, क्यों कि ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं, इसलिये द्रव्य स्वयं सत्ता स्वरूप है ॥ १०५ ॥

आगे—पृथकत्व, अन्यत्व, का लक्षण कहते हैं।

पविभत्तपदेसत्तं, पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स।
अण्णत्तमतब्भावो, ण तब्भवं भवदि कधमेगं ॥१०६॥

जिसके भिन्न प्रदेश हैं, ताहि कहें पृथकत्व।
एक रूप दोनों नहीं, रूप भेद अन्यत्व ॥१०६॥

अर्थ – जिस में प्रदेशों की अपेक्षा अत्यन्त भिन्नता हो वह पृथक्त्व है ऐसा ही श्री वीर भगवान की आज्ञा है स्वरूप की एकता का न होना अन्यत्व है सत्ता और द्रव्य एक स्वरूप नहीं है तब किसतरह दोनों एक हो सकते हैं ॥ १०६ ॥

आगे--अन्यत्व को विशेषता से कहते हैं।

सद्दव्वं सच्च गुणो, सच्चेव य पज्जओत्ति वित्थारो।
जो खलु तस्स अभावो, सो तदभावो अतब्भावो १०७

सत् वस्तू पर्याय सत, सत गुण यों विस्तार।
ये न परस्पर एक हैं, यों अन्यत्व निहार ॥१०७॥

अर्थ--सत्ता रूप द्रव्य है, सत्ता रूप गुण है तथा सत्ता रूप पर्याय है ऐसा सत्ता का विस्तार है सत्ता की एकता का परस्पर अभाव अन्यत्व है ॥ १०७ ॥

आगे—सर्वथा अभाव रूप, गुण गुणी के भेद को निषेध करते हैं।

जं दव्वं तरण गुणो, जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो।
एसो हि अतब्भावो, णेव अभावोत्ति णिद्दिट्ठो॥ १०८ ॥

जो वस्तू वह गुण नहीं और न गुण तत्वार्थ।
रूप भेद अन्यत्व यह, एक अंग सत्यार्थ ॥१०८॥

अर्थ—जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, जो निश्चय से गुण है वह स्वरूप के भेद से द्रव्य नहीं है, ऐसा ही स्वरूप भेद रूप अन्यत्व है। निश्चय से सर्वथा अभाव नहीं है। ऐसा सर्वज्ञ द्वारा कहागया है ॥ १०८ ॥

आगे—सत्ता और द्रव्य का गुण गुणी भाव दिखाते हैं।

जो खलु दव्वसहावो, परिणामो सो गुणो सदविसिट्ठो।
सदवट्ठियं सहावे, दव्वत्ति जिणोबदेसोयं ॥ १०९ ॥

द्रव्य भाव परिणाम है, सत अभिन्न गुण जान।
अरु स्वभाव आस्तित्व है, ऐसा द्रव्य बखान १०९

अर्थ—जो द्रव्य का स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप परिणाम है सो सत्ता से अभिन्न गुण है। अस्तित्व स्वभाव में तिष्टता हुआ द्रव्य सत् है या सत्ता रूप है ऐसा श्री जिनेन्द्र देव का उपदेश है ॥ १०९ ॥

आगे—गुण गुणी का भेद दूर करते हैं।

णत्थि गुणोत्ति व कोई, पज्जाओत्तीह वा विणा दव्वं ।
दव्वत्तं पुणभावो, तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥ ११० ॥

कहीं द्रव्य बिन गुण नहीं, और नहीं पर्याय ।
ऐसा द्रव्य स्वभाव है, स्वयं द्रव्य सत थाय ११०॥

अर्थ—इस जगतमें द्रव्य के बिना न कोई गुण होता है न कोई पर्याय होती है तथा उत्पाद, व्यय ध्रौव्य रूप से परिणमन करना द्रव्य का स्वभाव है इसलिये द्रव्य स्वयं सत्ता रूप है ॥ ११० ॥

आगे—द्रव्य के सत् उत्पाद असत् उत्पाद को विरोध रहित दिखाते हैं

एवंविहं सहावे, दव्वं दव्वत्थपज्जयत्थेहिं ।
सदसब्भावणिबद्धं, पाडुब्भावं सदा लभदि ॥१११॥

द्रव्य भाव रहते हुए, नय निश्चय व्यवहार ।
सद्सद्भाव निबद्ध ही, उपजा सदा निहार १११॥

अर्थ—इस तरह के स्वभाव को रखते हुए द्रव्य द्रव्यार्थिक और पर्यायर्थिक नय की अपेक्षा से सद्भाव रूप और असद्भाव रूप उत्पाद को सदा ही प्राप्त होता रहता है ॥ १११ ॥

आगे—सदुत्पाद को पर्याय से अभेद बतलाते हैं।

जीवो भवं भविस्सदि, णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्तं पजहदि, ण जहं अण्णो कहं होदि ११२॥

जीव उपज करता हुआ, नर सुर अथवा और ।
द्रव्य पना छोडे नहीं, यह स्वभाव शिर मोर११२।

अर्थ--आत्मा परिणामन करता हुआ मनुष्य देव या अन्य कोई होवेगा तथा इस तरह होकर क्या वह अपने द्रव्यपने को छोड़ बैठेगा ? नहीं तब भिन्नकैसे होवेगा अर्थात् द्रव्यपने से अन्य नहीं होगा११२

आगे—असत् उत्पाद को अन्य रूप से दिखाते हैं।

मणुओ ण होदि देवो, देवो वा माणुसो व सिद्धो वा ।
एवं अहोज्जमाणो, अणण्णभावं कधं लहदि ॥ ११३ ॥

मनुज देव होता नहीं, देव न नर अरु सिद्ध ।
ऐसा जब होता नहीं, दीखे भिन्न प्रसिद्ध ११३॥

अर्थ - मनुष्य देव नहीं होता देव, मनुष्य या सिद्ध नहीं होता। ऐसा नहीं होता तो एक पने के कैसे प्राप्त हो सकता है ॥ ११३ ॥

आगे--एक द्रव्य के अन्यत्व अनन्यत्व विरोध का समाधन करते हैं।

दव्वट्ठिएण सव्वं, दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो ॥११४॥

निश्चय नय से है वहीं, पर्यय नय से और ।
क्योंकि द्रव्य इस कालमें, पर्यय रत शिरमौर ११४

अर्थ--द्रव्यार्थिक नय से वह सब द्रव्य अन्य है। क्यों कि इस काल में द्रव्य अपनी पर्याय से तन्मई होरहा है ॥ ११४ ॥

आगे--सप्त भंग वाणी का स्वरूप दिखाते हैं।

अत्थित्ति य णत्थित्ति य, हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं
पज्जाएण दु केणवि, तदुभयमादिट्ठमण्णंवा॥ ११५ ॥

आस्ति दूसरा नास्ति है, त्रय विन वचन पिछान।
उभय चार अरु भंग त्रय, भेद द्रव्य व्याख्यान ११५॥

अर्थ—द्रव्य किसी एक पर्याय से तो अस्तिरूप है और किसी एक पर्याय से नास्ति रूप है, तथा किसी एक पर्याय से अवक्तव्य रूप तथा किसी एक पर्याय से अस्ति नास्ति रूप है अथवा किसी अपेक्षा से अन्य तीन रूप अस्ति एवं अवक्तव्य, नास्ति एवं अवक्तव्य तथा अस्ति नास्ति एवं अवक्तव्य रूप कहा गया है ॥ ११५ ॥

आगे जीव के मनुष्यादि पर्याय हैं वे मोह का फल है।

एसोत्ति णत्थि कोई, ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।
किरिया हि णत्थि अफला, धम्मो जदि णिप्फलो परमो ११६

ये पर्याय न नित्य अरु, नास्ति न क्रिया स्वभाव।
क्रिया न निश्चय निष्फला, निष्फल उत्तम भाव ११६

अर्थ कोई भी पर्याय ऐसी नहीं है जो नित्य हो, रागादि विभाव से होने वाली क्रिया नहीं है ऐसा नहीं है अर्थात् रागादि रूप क्रिया भी अवश्य है। यह रागादि रूप क्रिया निश्चय से बिना फल के नहीं होती है अर्थात मनुष्यादि पर्याय रूप फल को देती है और जो उत्कृष्ट वीतराग धर्म, मनुष्यादि पर्याय रूप फल देने से रहित है ॥ ११६ ॥

आगे उसी आशय को पुनः दृढ़ करते हैं।

कम्मं णामसमक्खं, सभावमध अप्पणो सहावेण।
अभिभूय णरं तिरियं, णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ ११७ ॥

नाम नाम के कर्म ने, निज प्रभाव जिय भाव।
ढक के करता जीव नर, या पशु नारक राव११७॥

अर्थ नाम नाम का कर्म अपने कर्म स्वभाव से आत्मा के स्वभाव को ढक कर उसे मनुष्य, तिर्यंच, नार की, या देव रूप कर देता है ॥ ११७ ॥

आगे मनुष्यादि पर्याय में स्वभाव का नाश नहीं ऐसा कहते है।

णरणारयतिरियसुरा, जीवा खलुणाम कम्मणिव्वत्ता।
ण हि ते लद्धसहावा, परिणममाणा सकम्माणि॥११८॥

नर नारक पशु देव जिय, रचे कर्म ये नाम।
फिर बदले निज कर्म को, लहे न अविचल धाम ११८

अर्थ मनुष्य, नारकी, तिर्यंच, और देव पर्याय के जीव प्रगटपने नाम कर्मद्वारा रचे गए है इस कारण वे जीव अपने अपने कर्मों के उदय में परिणमन करते हुए अपने चिदानंद स्वभाव को नहीं पाते ॥ ११८ ॥

आगे—जीव द्रव्य पने से एक है तो भी पर्याय से अनेक हैं।

जायदि णेव ण णस्सदि, खण भंगसमुब्भवे जणे कोई।
जो हि भवो सो विलओ, संभवविलयत्ति ते णाणा ११९

क्षण भंगुर इस लोक में, होय न उपज विनाश।
जो उपजे वह नशे है, विविध उपज अरु नाश ११९

अर्थ—क्षण क्षण में नाश होने वाले लोक में कोई जीव न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। कारण जो निश्चय से उत्पन्न रूप है वही नाश रूप है फिर भी वे उत्पाद और नाश अवश्य भेद लिये हुये हैं॥ ११९ ॥

आगे—जीव के अस्थिर भाव को दिखाते हैं।

तम्हा दु णत्थि कोई, सहावसमवट्ठिदोत्ति संसारे।
संसारो पुण किरिया, संसरमाणस्स दव्वस्स ॥१२०॥

इस कारण इस लोक में, थिर स्वभाव नहिं कोय।
भ्रमण क्रिया इस जीव की, सब संसारी होय॥१२०॥

अर्थ—इस कारण से इस संसार में कोई वस्तु स्वभाव से थिर नहीं है तथा भ्रमण करते हुए जीव द्रव्य की क्रिया संसार है ॥१२०॥

आगे—संसार में पुद्गल का सम्बन्ध किस तरह हुआ ? उत्तर

आदा कम्ममलिमसो, परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।
तत्तो सिलिसदि कम्मं, तम्हा कम्मं तु परिणामो १२१

जीव कर्म से लिप्त है, लहे कर्म युत भाव ।
उससे बांधे कर्म को, इससे कर्मज भाव ॥१२१॥

अर्थ—आत्मा द्रव्य कर्मों से अनादि काल से मैला है इसलिये मिथ्यात्वादि भाव कर्म रूप परिणाम को प्राप्त होता है। उस मिथ्यात्व आदि परिणाम से पुद्गल कर्म जीव के साथ बंध जाता है इसलिये मिथ्यात्व व रागादि रूप परिणाम ही भाव कर्म हैं अर्थात् द्रव्य कर्म के बन्ध के कारण हैं ॥ १२१ ॥

आगे—आत्मा द्रव्य कर्म का अकर्ता है।

परिणामो सयमादा, सा पुण किरियत्ति होइ जीवमया।
किरिया कम्मत्ति मदा, तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता १२२

भाव क्रिया है जीवमय, भाव स्वयं है जीव ।
वही क्रिया तसु कर्म है, इससे कर्म न कीव॥१२२॥

अर्थ—जो परिणाम (भाव) है सो स्वयं आत्मा है तथा वही परिणाम जीव से की हुई एक क्रिया है। जो क्रिया है उसी को जीव का कर्म ऐसा माना है इसलिये यह आत्मा द्रव्य कर्म का कर्ता नहीं है ॥ १२२ ॥

आगे—जिस स्वरूप आत्मा परिणमन करता है उसे दिखाते हैं।

परिणमदि चेयणाए, आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।
सा पुण णाणे कम्मे, फलम्मि वा कम्मणो भणिदा १२३

जीव चेतमय परिणवे, भेद चेतना तीन ।
ज्ञान और है कर्म फळ, और कर्म से चीन १२३॥

अर्थ—आत्मा चेतना के स्वभाव रूप से परिणमन करता है वह चेतना तीन प्रकार मानी गई है ज्ञान, कर्म, और कर्मफल ॥ १२३ ॥

आगे—चेतना का स्वरूप कहते हैं ।

णाणं अत्थवियप्पो, कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।
तमणेगविधं भणिदं, फलत्ति सोक्खं व दुक्खं वा १२४

स्वपर भेद युत ज्ञान है, इच्छायुत जिय कर्म ।
सो शुभअशुभ अनेक विधि, फल उसका दुखशर्म १२४

अर्थ—पदार्थों को जानना वह ज्ञान या ज्ञान चेतना है जीव के द्वारा जो प्रारम्भ किया हुआ कर्म है वह अनेक प्रकार का कहा गया है इस कर्म में चेतना सो कर्म चेतना है तथा सुख या दुःख रूप फल में चेतना सो कर्म फल चेतना है ॥ १२४ ॥

आगे—ज्ञान, कर्म, कर्मफल ये अभेद नय से आत्मा ही हैं ।

अप्पा परिणामप्पा, परिणामो णाणकम्मफलभावी ।
तम्हा णाणं कम्मं, फलंच आदा मुणेदव्वो ॥ १२५ ॥

भाव स्वभावी आतमा, ज्ञान कर्म फल भाव ।
ज्ञान कर्म फल इसलिये, जानो आतम स्वभाव १२५॥

अर्थ—आत्मा परिणाम स्वभावी है, परिणाम ज्ञान रूप, कर्म रूप, कर्म

फल रूप हो जाता है इसलिये आत्मा ज्ञान रूप, कर्म रूप व कर्म फल रूप जानना चाहिये ॥ १२५ ॥

आगे—जीव के शुद्ध स्वभाव के निश्चय से ज्ञान की सिद्धि होती है।

कत्ता करणं कम्मं, फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो।
परिणमदि णेव अण्णं, जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं १२६

करता कारण कर्म फल, निश्चय आतम जान।
जो मुनि अन्य न परिणवे, ते पावें निर्वान॥१२६॥

अर्थ—कर्ता, करण, कर्म तथा फल आत्मा ही है ऐसा निश्चय करने वाला श्रमण या मुनि यदि अन्य रूप परिणमन नहीं करता है तो शुद्ध आत्म स्वरूप को पाता है ॥ १२६ ॥

अथ मासिक पाठ में बाईसवां दिवस:—

आगे—द्रव्य के जीव और अजीव ऐसे दो भेद दिखाते हैं।

दव्वं जीवम जीवं, जीवो पुण चेदणोवओगमओ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं, अच्चेदणं हवदि य अज्जीवं ॥१२७॥

द्रव्यें जीव अजीव हैं, जीव चेत उपयोग।
पुद्गल द्रव्यें आदिजे, सर्व अचेतन योग॥१२७

अर्थ—द्रव्य जीव और अजीव हैं और जीव द्रव्य चेतना स्वरूप है और पुद्गल द्रव्यआदि चेतना रहित अजीव है ॥ १२७ ॥

आगे—लोक अलोक के भेद दिखाते हैं।

पुग्गलजीवणिवद्धो, धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो।
वट्टदि आयासेजो, लोगो सो सव्वकाले दु ॥ १२८ ॥

जिता क्षेत्र आकाश का, पुद्गल चेतन रोक ।
और काल अधरम धरम, सदा वही है लोक१२८

अर्थ--जितना क्षेत्र इस आकाश में पुद्गल और जीवों से भराहुआ है तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल से भरा हुआ वर्तन करता है वही क्षेत्र सदा लोक है ॥ १२८ ॥

आगे--द्रव्यों में क्रिया वाले, भाव वाले कितने हैं।

उप्पादट्ठिदिभंगा, पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स ।
परिणामा जायंते, संघादादोव भेदादो ॥ १२९ ॥

उतपाति व्यय ध्रुव सर्व में, उन में पुद्गल जीव ।
भेद और संघात से, व्यंजन पर्यय कीव ॥१२९॥

अर्थ--इस छह द्रव्य मई लोक के उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूपी अर्थ पर्याय होती है उनमें पुद्गल और जीवों के व्यञ्जन पर्याय रूप परिणमन भी सङ्घात या भेद से होता है ॥ १२९ ॥

आगे--गुणों के भेद से द्रव्यों में भेद दिखाते हैं।

लिंगेहिं जेहिं दव्वं, जीवमजीवं च हवदि विण्णादं ।
ते तब्भावविसिट्ठा, मुत्तामुत्ता गुणा णेया ॥ १३० ॥

जड़ चेतन जिस चिन्ह से, जाने जाते मान ।
वे तन मय से साथ हैं, मूर्त अमूर्त पिछान॥१३०॥

अर्थ--जिन लक्षणों से जीव और अजीव जाने जाते हैं वे चिन्ह उन के साथ तन्मयता से हैं वे मूर्तीक और अमूर्तीक गुण जानने ॥ १३० ॥

आगे--मूर्त अमूर्त का लक्षण कहते हैं।

मुत्ता इन्दियगेज्झा, पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा ।
दव्वाणममुत्ताणं, गुणे अमुत्ता मुणेदव्वा ॥ १३१ ॥

मूर्त मूर्त से ग्राह्य है, वहु विधि पुद्गल दर्व ।
द्रव्य अमूर्त अमूर्त गुण, ते जानो पुनिसर्व ।१३१॥

अर्थ—इन्द्रियों के ग्रहण करने योग्य गुण मूर्तीक होते हैं । वे गुण वर्ण आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं तथा पुद्गल द्रव्य संबधी हैं अमूर्तीक द्रव्यों के गुण अमूर्तीक जानने ॥ १३१ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्यों के गुणों को कहते हैं ।

वण्णरसगंधफासा, विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो ।
पुढवीपरियंतस्स य, सद्दो सो पोग्गलो चित्तो ॥ १३२ ॥

फर्श गंध रस वर्ण ये, परमाणु से आदि ।
भूलग हैं अरु शब्द वह, पुद्गल विविध अनादि १३२

अर्थ—परमाणू से लेकर पृथ्वी पर्यंत पुद्गल द्रव्य के वर्ण, रस गंध, स्पर्श पाए जाते हैं और शब्द है सो पुद्गल है वह नाना प्रकार है ॥ १३२ ॥

आगे—अमूर्तीक पांचों द्रव्यों के गुणों को कहते हैं ।

आगासस्सव गाहो, धम्मदव्वस्स गमणहेदुत्तं ।
धम्मेदरदव्वस्सदु, गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥ १३३ ॥

कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो ।
णेया संखेवादो, गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं ॥ १३४ ॥

अव काशे आकाश गुण, गमन द्रव्य गुण धर्म ।
थिति गुण द्रव्य अधर्म में, यही जिनेश्वर मर्म १३३

परिवर्तन गुण काल में, जिय उपयोग पिछान ।
द्रव्य मूर्त विन ते कहे, गुण संक्षेप वखान॥१३४॥

अर्थ आकाश द्रव्य का विशेष गुण सर्व द्रव्यों को जगह देना ऐसा अवकाश गुण है, धर्म द्रव्य का विशेप गुण जीव पुद्गलों के गमन में कारण ऐसा गमन हेतुत्व है, तथा अधर्म द्रव्य का विशेष गुण जीव पुद्गलों को स्थिति में कारण ऐसा स्थिति हेतुत्व है, काल द्रव्य का विशेष गुण सभी द्रव्यों में समय समय परिणमन की प्रवृत्ति का कारण वताना है और आतमा का विशेष गुण उपयोग है ऐसा कहा गया है। निश्चय से मूर्ती रहित द्रव्यों के विशेष गुण इस तरह संक्षेप से जाननेयोग्य हैं१३३-१३४

आगे--इन द्रव्यों में प्रदेशी अप्रदेशी भेद को दिखाते हैं।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा पुणो य आगासं।
देसेहिं असंखादा, णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥ १३५ ॥

काय जीव पुद्गल धरम, अरु अधर्म नभ देश।
संख्या रहित प्रदेश है, काल न आधिक प्रदेश१३५

अर्थ—जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश ये पंचास्ति काय) द्रव्य प्रदेशों की गणना से संख्या रहित प्रदेश वाले हैं और काल द्रव्य एक प्रदेशी है इस कारण से अप्रदेशी कहा गया है ॥ १३५ ॥

आगे—प्रदेशी अप्रदेशी द्रव्य किस जगह रहते हैं ? उत्तर

लोगालोगेसु णभो, धम्माधम्मेहि आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो, जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ १३६ ॥

लोक विषें धर्माधरम, नभ है लोका लोक ।
शेषाश्रय से काल है, वे पुद्गल जिय थोक १३६

अर्थ—आकाश द्रव्य लोक और अलोक में है लोक धर्म और अधर्म से व्याप्त है जीव और पुद्गल शेष की प्रतीत से काल द्रव्य है शेष जीव और पुद्गल हैं ते लोकाकाश में हैं ॥ १३६ ॥

आगे—इन द्रव्यों के प्रदेश परमाणु की माप से सिद्ध किये हैं।

जध ते णभप्पदेसा, तधप्पदेसा हवंति सेसाणं।
अपदेसो परमाणू, तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥ १३७ ॥

यों प्रदेश नभ के कहे, त्यों सबके पर देश।
अणु न अधिक प्रदेशवत,इस कर गुणें प्रदेश १३७

अर्थ—जैसे आकाश द्रव्य के प्रदेश नापे हैं तैसे ही धर्मादि अन्य द्रव्यों के प्रदेश नापे हैं एक अविभागी पुद्गल का परमाणु बहु प्रदेशी नहीं है, उस परमाणु से प्रदेशों की गणना कही गई है ॥१३७॥

आगे—कालाणू को अप्रदेशी दिखलाते हैं।

समओ दु अप्पदेसो, पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि, पदेसमागासदव्वस्स ॥ १३८ ॥

काल न द्वितिय प्रदेश है, परमाणू यदि कोय।
मंद गती वर्तेजवे, नभ प्रदेश में सोय ॥१३८॥

अर्थ—काल द्रव्य निश्चय से अप्रदेशी है वह काल प्रदेश मात्र द्रव्य रूप परमाणू के आकाश द्रव्य के प्रदेश को उल्लङ्घन करने से समय होता है ॥ १३८ ॥

आगे—काल पदार्थ के द्रव्य और पर्याय को दिखाते हैं।

वदिवददो तं देसं, तस्सम समओ तदो परो पुव्वो।
जो अत्थो सो कालो, समओ उप्पण्णपद्धंसी ॥१३९॥

मंद गती उस देश में, समय पूर्व पर कोय।
नित्य द्रव्य सो काल है,समय जन्म क्षय जोय१३९

अर्थ—उस कालाणु से व्याप्त आकाश के प्रदेश पर मन्द गति से जाने वाले पुद्गल परमाणु को जो कुछ काल लगता है उसी के समान समय पर्याय है इस समय पर्याय के आगे और पहिले जो पदार्थ है वह काल द्रव्य है समय पर्याय उत्पन्न होकर नाश होने वाली है ॥ १३९ ॥

आगे—आकाश के प्रदेश का लक्षण कहते हैं।

आगासमणुणिविट्ठं. आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं. सक्कदि तं देदुमवकासं ॥ १४० ॥

अणु रोका आकाश को, कहें प्रदेशाकाश।
वह समर्थ अवकाश को, सर्व द्रव्य अणुराश१४०

अर्थ—अविभागी पुद्गल के परमाणु द्वारा व्याप्त जो आकाश है उस को आकाश प्रदेश के नाम से कहा गया है तथा वह प्रदेश सर्व परमाणू तथा सूक्ष्म स्कन्धो को जगह देने को सामर्थ है ॥१४०॥

आगे—तिर्यक् प्रचय, ऊर्ध्वप्रचय का लक्षण कहते हैं।

एक्को व दुगे बहुगा, संखातीदा तदो अणंता य।
दव्वाणं च पदेसा, संति हि समयत्ति कालस्स ॥१४१॥

इक दो अथवा बहुत से, संख्यातीत अनंत।
यों प्रदेश पन द्रव्य के, काल समय शोभंत १४१।

अर्थ—काल द्रव्य के बिना पाँच द्रव्यों के प्रदेश एक या दो या बहुत या असंख्यात तथा अनन्त यथा योग्य होते हैं परन्तु निरवय

से एक प्रदेशी काल द्रव्य है और समय एक से अनन्त तक होते हैं ॥ १४१ ॥

आगे—काल पदार्थ को द्रव्य पने से ध्रौव्य दिखाते हैं।

उप्पादो पद्धंसो, विज्जदि जदि जस्स एकसमयम्मि।
समयस्स सोवि समओ, सभावसमवट्ठिदो हवदि॥१४२

उतपाति व्यय जिस काल के, एक समय में होय।
वह कालाणु स्वभाव से, अविनाशी थिर जोय१४२

अर्थ—समय पर्याय को उत्पन्न करने वाले जिस कालाणु द्रव्य का एक वर्तमान समय में जो उत्पाद तथा नाश होता है सो ही काल पदार्थ अपने स्वभाव में भले प्रकार स्थित है ॥ १४२ ॥

आगे—सब समय पर्यायों में काल पदार्थ के उत्पाद व्यय ध्रौव्य सिद्ध करते हैं।

एकम्मि संति समये, संभवठिदिणासरिणदा अट्ठा।
समयस्स सव्वकालं, एस हि कालाणुसब्भावो ॥१४३

एक समय के समय में, उत्पति व्यय ध्रुव भाव।
सदा काल कालाणु में, निश्चय रहे स्वभाव१४३

अर्थ—एक समय में काल द्रव्य के भीतर उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य नाम के स्वभाव हैं निश्चय करके ऐसा ही कालाणु द्रव्य का स्वभाव सदा काल रहता है ॥ १४३ ॥

आगे—काल प्रदेश मात्र न होवे तो उत्पादादि नहीं हो सकते।

जस्स ण संति पदेसा, पदेसमेत्तं व तच्चदो णादुं।
सुण्णं जाण तमत्थं, अत्थंत्तरभूदमत्थीदो ॥ १४४ ॥

जिसके बहुत प्रदेश नहिं; या नहिं एक प्रदेश ।
उसे शून्य जिनवर कहें, जिसमें सत्व न लेष१४४।

अर्थ – जिस पदार्थ के बहुत प्रदेश नहीं हैं अथवा एक प्रदेश मात्र भी नहीं है उस पदार्थ को शून्य जानों क्योंकि उसमें एक प्रदेश भी नहीं है जिससे उसकी सत्ता का बोध हो ॥ १४४ ॥

आगे—संसारी जीव के प्राणों से जीवत्व को दिखाते हैं।

सपदेसेहिं समग्गो, लोगो अट्ठेहिं णिट्ठिदो णिच्चो ।
जो तं जाणदि जीवो, पाणचदुक्काहिसंबद्धो ॥१४५॥

लोक नित्य निज देश में, भरे द्रव्य पन सोय ।
जो जाने सो जीव है, चार प्राण युत होय।१४५॥

अर्थ—यह लोकाकाश अपने असंख्यात प्रदेशों से परिपूर्ण है और परमात्मा पदार्थ को आदि लेकर अन्य पदार्थों से भरा हुआ है जो कोई इस लोक को जानता है सो जीव पदार्थ संसार अवस्था में चार प्राणों का सम्बन्ध रखता है ॥ १४५ ॥

आगे--उन प्राणों को दिखाते हैं।

इंदियपाणो य तधा, बलपाणो तह य आउपाणो य ।
आणप्पाणप्पाणो, जीवाणं होंति पाणा ते ॥ १४६ ॥

इन्द्रिय प्राण जुप्राण बल, और आयु है प्राण ।
श्वासोश्वास जो प्राण है, ये जीवों के प्राण १४६॥

अर्थ—इन्द्रिय प्राण, बल प्राण, आयु प्राण श्वासोच्छ्वास प्राण ये चार प्राण जीवों के होते हैं ॥ १४६ ॥

आगे--प्राणों को पुद्गल के द्वारा रचे गये दिखाते हैं।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि, जीवस्सदि जो जीविदो हि पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण, पोग्गल दव्वेहिं णिव्वत्ता ॥१४७॥

चार प्राण से जीरहा, जिया जिये अव पूर्व।
वही जीव है प्राण ये, पुद्गल रचे अपूर्व ।१४७॥

अर्थ—जो चार प्राणों से जीता है जीवेगा व पहिले जीता था वह जीव है ये प्राण पुद्गल द्रव्यों से रचे हुवे हैं॥ १४७॥

आगे—प्राणों कर सहित जीव कर्म फल भोक्ता हुआ कर्मों को बाँधता है।

जीवो पाण णिवद्धो, वद्धो मोहादिएहिं कम्मेहिं।
उवभुंजं कम्म फलं, वज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं ॥१४८॥

जीव प्राण कर सहित है, बद्ध मोह वसु कर्म।
फिर उनका फल भोग कर, बांधे नूतन कर्म१४८

अर्थ—मोहनीय आदि कर्मों से बंधा हुआ जीव चार प्राणों से संबंध करता है, व कर्मों के फल भोगता हुआ अन्य नवीन कर्मों से बंध जाता है॥ १४८॥

आगे - नूतन पुद्गलीक कर्म के कारण प्राण हैं।

पाणावाधं जीवो, मोहपदेसेहिं कुणदि जीवाणं।
जदि सो हवदि हि वंधो, णाणावरणादिकम्मेहिं १४९॥

प्राण दुखित जिय के करे, मोह द्वेष वश जीव।
आवे उसके बंध में, आठों कर्म सदीव ॥१४९॥

अर्थ—जब जीव मोह और द्वेष के कारण अपने और पर जीवों के प्राणों को वाधा पहुँचाता है तब ज्ञानावरणादि कर्मों का वन्ध होता है ॥ १४९ ॥

आगे—इन प्राणों की उत्पत्ति का कारण वताते हैं।

आदा कम्ममलिमसो, धारदि पाणे पुणो पुणो अण्णे।
ण जहदि जाव ममत्तं, देहपधाणेसु विसएसु ॥१५०॥

कर्म मैलवश आतमा पुनि पुनि धारे प्राण ।
तब तक ममता नहिं तजे, देह विषय में जान१५०

अर्थ--कर्मों से मैला आत्मा वार वार अन्य अन्य नवीन प्राणों को धारण करता रहता है, जब तक शरीर आदि विषयों में ममता को नहीं छोड़ता ॥ १५० ॥

आगे—इन पुद्गलीक प्राणों के नाश का कारण कहते हैं।

जो इंदियादिविजई, भवोय उवओगमप्पगं झादि।
कम्मेहिं सो ण रंजदि, किह तं पाणा अणुचरंति १५१॥

जो इन्द्रिय विजई भया, ध्याता निज उपयोग।
नहिं रचता वह कर्म से, फिर न प्राण संयोग१५१॥

अर्थ—जो इन्द्रिय जीतने वाला होकर उपयोग मई आत्मा को ध्याता है सो जीव कर्मों से नहीं वंधता है तब किस तरह प्राण इस जीव के आश्रय करेंगे ॥ १५१ ॥

आगे—आत्म स्वरूप से भिन्न चार गतियों का स्वरूप कहते हैं।

अत्थित्तणिच्छिदस्स हि, अत्थस्सत्थंतरम्मि संभूदो।
अत्थो पज्जायो सो, संठाणादिप्प भेदेहिं ॥ १५२ ॥

निश्चित है अस्तित्व में, जिय पुद्गल संजात।
वही द्रव्य पर्याय से, विविध चिन्ह विख्यात १५२।

आगे—अपने अस्तित्व कर निश्चित जीव है उसके निश्चय से पुद्गल के संयोग से उत्पन्न हुआ नर नारक आदि विभाव हैं वही संस्थान आदि के भेदों से पर्याय हैं ॥ १५२ ॥

आगे—द्रव्य पर्याय के भेद दिखाते हैं।

णरणारयतिरियसुरा, संठाणादीहिंअण्णहा जादा।
पज्जाया जीवाणं, उदयादु हि णामकम्मस्स ॥१५३॥

नर नारक पर्याय से, आकारादिक अन्य।
जीवों की पर्याय सब, नाम कर्म उत्पन्न ॥१५३॥

अर्थ—नाम कर्म के उदय से निश्चय से जीवों की नर नारक तिर्यञ्च और देव पर्यायें संस्थान आदि के द्वारा स्वभाव पर्याय से भिन्न अन्य अन्य रूप उत्पन्न होती हैं ॥ १५३ ॥

आगे—ज्ञानी पर द्रव्यों से मिला हुआ भी मोहित नहीं होता।

तं सब्भावणिबद्धं, दव्वसहावं तिहा समक्खादं।
जाणदि जो सवियप्पं, ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि १५४

जो सद भाव निबद्ध है, कहा द्रव्य त्रय भाव।
भेद सहित जो जानता, मोहे पर न स्वभाव१५४॥

अर्थ—जो ज्ञानी अपने स्वभाव में तन्मय है वह तीन प्रकार कहे हुए द्रव्य के भेद सहित जानता है वह अन्य द्रव्य में मोहित नहीं होता है ॥ १५४ ॥

आगे—मोह का कारण शुभ और अशुभोपयोग को दिखाते हैं।

अप्पा उवयोगप्पा, उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सो हि सुहो असुहो वा, उवओगो अप्पणो हवदि॥१५५

जिय उपयोग स्वरूप है, दर्श ज्ञान उपयोग।
वही होय शुभअशुभ से, आतम का उपयोग१५५

अर्थ—आत्मा उपयोग स्वरूप है, उपयोग ज्ञान दर्शन कहा गया है वही आत्मा का उपयोग शुभ या अशुभ होता है॥ १५५॥

आगे—शुभ अशुभोपयोग से पुण्य पाप का बन्ध होना दिखाते हैं।

उवओगो जदि हि सुहो, पुण्णं जीवस्स संचयं जादि।
असुहो वा तध पावं, तेसिम भावे ण चयमत्थि १५६॥

जीव करे उपयोग शुभ, पुण्य बंध ले मान।
अशुभ योग से पाप है, इन विन बंध न जान१५६

अर्थ—निश्चय से यदि उपयोग शुभ हो तो इस जीव के पुण्य कर्म का संचय होता है अथवा अशुभ होने पर पाप का संचय होता है। इन शुभ अशुभ उपयोगों के न होने पर कर्म संचय नहीं होता है॥ १५६॥

आगे—शुभोपयोग का स्वरूप कहते हैं।

जो जाणदि जिणिंदे, पेच्छदि सिद्धे तधेव अणगारे।
जीवे य साणुकंपो, उवओगो सो सुहो तस्स॥ १५७॥

जो जाने जिन सिद्ध को, चहे साधु संयोग।
और जीव करुणा करे, सोहै शुभ उपयोग।१५७॥

अर्थ—जो जीव जिनेन्द्रदेव को जानता है सिद्धों को देखता है तैसे ही साधुओं का दर्शन करता है, और जीवों पर दया भाव रखता है उस जीव का वह उपयोग शुभ है ॥ १५७ ॥

आगे—अशुभोपयोग का स्वरूप कहते हैं।

विषयकषाओगाढ़ो, दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो ।
उग्गो उम्मग्गपरो, उवओगो जस्स सो असुहो ॥१५८

बहुरत विषय कषाय में, श्रुत मन इतर कुसंग।
दुष्ट भाव उन्मार्गरत, जान अशुभ का रंग।१५८॥

अर्थ—जिस जीव का उपयोग विषयों की और कषायों की तीव्रता से भरा हुआ है, खोटे शास्त्र पढ़ने सुनने खोटा विचार करने व खोटी सङ्गतिमयी वार्तालाप में लगा हुआ है, हिंसादि में उद्यमी दुष्ट रूप है तथा मिथ्या मार्ग में तत्पर है ऐसे चार विशेषण सहित है सो अशुभ है ॥ १५८ ॥

आगे—शुभ अशुभ के नाशक भावों को दिखाते हैं।

असुहोवओगरहिदो, सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्मि ।
होज्जं मज्झत्थोऽहं, णाणप्पगमप्पगं झाए ॥ १५९ ॥

अशुभ योग से रहित हूं, और न शुभ उपयुक्त।
अन्य द्रव्य मध्यस्थ हूं, रमूं ज्ञान संयुक्त ॥१५९॥

अर्थ—मैं अशुभोपयोग से रहित हूँ, शुभोपयोग में भी परिणमन नहीं करता हूँ तथा निज परमात्मा सिवाय अन्य द्रव्य में तथा जीवन मरण, लाभ, अलाभ, सुख दुःख, शत्रु, मित्र, निन्दा, प्रशंसा आदि में मध्यस्थ होता हुआ ज्ञान स्वरूप आत्मा को ध्याता हूँ ॥ १५९ ॥

आगे—शरीरादि में मध्यस्थता रखने के भाव को कहते हैं।

णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमत्ता णेव कत्तीणं ॥ १६० ॥

तन मन वाणी मैं नहीं, कारण इनका नाहिं।
करूं करावूं मैं नहीं, अरु अनुमोदक नाहिं १६०

अर्थ—मैं शरीर नहीं हूँ मैं मन नहीं हूँ और न वचन ही हूं न इन मन वचन काय का उपादान कारण नहीं हूं, न मैं इनका करने वाला हूँ, और न कराने वाला हूँ और न करने वालों का अनुमोदन करता हूँ ॥ १६० ॥

आगे—मन, वचन, काय को पर द्रव्य दिखलाते हैं।

देहो य मणो वाणी, पोग्गलदव्वप्पगत्ति णिद्दिट्ठा।
पोग्गलदव्वं पि पुणो, पिंडो परमाणु दव्वाणं ॥१६१॥

तन मन वाणी सर्व ये, पुद्गल रूप बखान।
निश्चय पुद्गल खंध ये, परमाणु से जान ॥१६१॥

अर्थ शरीर, मन और वचन ये तीनों ही पुद्गल द्रव्य मयी कहे गये हैं तथा पुद्गल द्रव्य भी परमाणु रूप पुद्गल द्रव्यों का समूह रूप स्कन्ध है ॥ १६१ ॥

आगे—आत्मा के पर द्रव्य का अभाव व कर्तापने का अभाव दिखलाते हैं

णाहं पोग्गलमइयो, ण ते मया पोग्गला कया पिंडं।
तम्हा हि ण देहोऽहं, कत्ता वा तस्स देहस्स ॥ १६२ ॥

मैं पुद्गल मय हूं न अरु, किये न पुद्गल न खंध।
और देह मय मैं नहीं, किये न तन स्कंध॥१६२॥

अर्थ—मैं पुद्‌गल मई नहीं हूँ तथा वे पुद्‌गल के पिंड जिससे मन, वचन काय वनते हैं वे मेरे वनाए हुए नहीं हैं इसलिये निश्चय से मैं शरीर रूप नहीं हूँ और न उस देह का वनाने वाला हूँ १६२

आगे—परमाणु स्कन्ध किस तरह से होता है ? उत्तर

अपदेसो परमाणू, पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो।
णिद्धो वा लुक्खो वा, दुपदेसादित्तमणुहवदि ॥ १६३ ॥

अणु न अंग प्रदेशवत, स्वयं अशब्द पिछान।
चिकन रुक्षता प्राप्तकर, दो प्रदेश अधिकान १६३

अर्थ—परमाणु वहुत प्रदेशों से रहित है एक प्रदेश मात्र है और स्वयं व्यक्तरूप शब्द पर्याय से रहित है, स्निग्ध होता है या रूक्ष होता है इस कारण से दो प्रदेशों व अनेक प्रदेशों के मिलने से वन्ध अवस्था को अनुभव करता है ॥ १६३ ॥

आगे—परमाणुओं में स्निग्ध, रूक्ष से उत्पन्न भेदों को दिखाते हैं।

एगुत्तरमेगादी, अणुस्स णिद्धत्तणं व लुक्खत्तं ।
परिणामादो भणिदं, जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥ १६४ ॥

एक एक से वृद्धिकर, चिकन रुक्ष लवलीन।
अणु शक्ति परिणमन से, भेद अनन्ते चीन १६४॥

अर्थ—परमाणु का चिकनापन या रूखापन एक अंश को आदि लेकर एक एक वढ़ता हुआ परिणमन शक्ति विशेष से अनन्त पने तक अनुभव करता है ऐसा कहा गया है ॥ १६४ ॥

आगे—स्निग्ध रूक्ष गुण के परिणमन से वन्ध सिद्ध करते हैं।

णिद्धा वा लुक्खा वा, अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि, वज्झंति हि आदिपरिहीणा १६५

चिकन रूक्ष पर्याय अणु, विषम और सम कोय ।
एक अंश तज दो अधिक, बंध परस्पर होय १६५

अर्थ--परमाणु के पर्याय भेद स्निग्ध हों या रूक्ष हों दो चार छः आदि की गणना से समान हों वा तीन, पाँच, सात, नव आदि की गणना से विषम हों जो निश्चय से जघन्य अंश से रहित हों तो परस्पर बंध होता है ॥ १६५ ॥

आगे—बंध का स्वरूप दिखलाते हैं ।

णिद्धत्तणेण दुगुणो, चदुगुणणिद्धेण बंधमणुभवदि ।
लुक्खेण वा तिगुणिदो, अणु वज्झदि पंचगुणजुत्तो १६६

चिकने से दो गुण अधिक, चिकन चार से बंध ।
रूक्ष होय त्रय गुण अणु,पांच सहित से बंध१६६

अर्थ--चिकनेपन की अपेक्षा दो अंशधारी परमाणु चार अंशधारी चिकने या रूखे परमाणु के साथ बन्ध को प्राप्त हो जाता है तीन अंशधारी चिकना या रूखा परमाणु पाँच अंशधारी चिकने या रूखे परमाणु के साथ बंध जाता है ॥ १६६ ॥

आगे—आत्मा के पुद्गल पिंड के कर्त्तापने का अभाव दिखाते हैं ।

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा बादरा ससंठाणा ।
पुढविजलतेउवाऊ, सगपरिणामेहिं जायंते ॥ १६७ ॥

दो प्रदेश से खंध सब, सूक्षम थूलाकार ।
भूजळ अग्नी वायुवत, स्वयं परिमणन धार१६७।

अर्थ—दो परमाणु के स्कंध से आदि लेकर अनंत परमाणु के स्कंध तक तथा सूक्ष्म या बादर यथासंभव गोल चौकुटे आदि अपने अपने

आकार को लिये हुए पृथ्वी, जल अग्नि और वायु अपने ही चिकने रूखे परिणामों की विचित्रता से परस्पर मिलते हुए पैदा होते रहते हैं ॥ १६७ ॥

आगे—आत्मा पुद्गल पिंड का प्रेरक नहीं यह दिखाते हैं।

ओगाढ गाढणिचिदो, पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो।
सुहुमेहिं बादरेहिं, य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ॥ १६८ ॥

सर्व लोक पुद्गल भरे, गाढागाढ महान।
प्राणी योग्य अयोग्य कछु, सूक्षम थूल पिछान १६८

अर्थ—यह लोक अपने सर्व प्रदेशों में सूक्ष्म, और बादर, कर्म वर्गणारूप होने के अयोग्य तथा कर्मवर्गणारूप होने के योग्य पुद्गल स्कंधों से खूब अच्छी तरह बहुत गाढ़ा भरा हुआ है ॥ १६८ ॥

आगे—आत्मा पुद्गल पिंड रूप कर्म का कर्ता नहीं है यह दिखाते हैं।

कम्मत्तणपाओग्गा, खंधा जीवस्सपरिणइंपप्पा।
गच्छंति कम्मभावं, ण हु ते जीवेणपरिणमिदा ॥१६९॥

कर्म योग्य जो खंध हैं, जीव परिणमन पाय।
कर्म भाव वे स्वयं हों, कर्ता जीव न गाय।१६९॥

अर्थ—कर्म रूप होने के योग्य पुद्गल के स्कंध जीव की परिणति को पाकर कर्मपने को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु जीव के द्वारा वे कर्म नहीं परिणमाये गये हैं ॥ १६९ ॥

आगे—आत्मा को नोकर्म का अकर्ता दिखलाते हैं।

ते ते कम्मत्तगदा, पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स।
संजायंते देहा, देहंतरसंकमं पप्पा ॥ १७० ॥

जीव निमित जे जे भए, कर्म वर्गणा सोय ।
देहान्तर ते पाय कें, देह जीव कें होय ॥१७०॥

अर्थ—जे जे पूर्व बांधे हुए द्रव्य कर्म पर्याय में परिणमन किये हुये पुद्गल कर्मवर्गणा स्कंन्ध फिर भी जीव के अन्य भव को प्राप्त होने पर शरीर उत्पन्न करते हैं ॥ १७० ॥

आगे—आत्मा के पांच शरीरों का अभाव दिखाते हैं।

ओरालिओ य देहो, देहो वेउव्विओ य तेजयिओ।
आहारय कम्मइओ, पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ॥१७१॥

औदारिक तन वैक्रियक, अरु तैजस को मान ।
आहारक अरु कर्म तनु, पुदूगल मयी पिछान१७१

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक और कार्माण शरीर ये सब पुदूगल द्रव्यमयी हैं ॥ १७१ ॥

आगे—जीव का शुद्ध स्वरूप अन्य में न पाया जावे ऐसा वताते हैं।

अरसमरूवंगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १७२ ॥

फर्श वर्ण रस गंध नहिं, चेतन गुण विन वैन ।
किसी चिन्ह ग्राही नहीं, अकथ चिन्ह से ऐन१७२

अर्थ—इस जीव को रस गंध वर्ण तथा स्पर्श से रहित और शब्द रहित किसी चिन्ह से न पकड़ने योग्य पुद्गल आकार से रहित चेतन्य गुण को रखने वाला जानो ॥ १७२ ॥

आगे—आत्मा के स्निग्ध रूक्ष गुण का अभाव होने से बंध कैसा? उत्तर

मुत्तो रूवादिगुणो, बज्झदि फासेहिं अरणमरणेहिं ।
तव्विवरीदो अप्पा, बंधदि किद पोग्गलं कम्मं ॥१७३।

रूपादिक मूर्तीक गुण, चिकन रूच्न कर वन्ध ।
तदाविपरीत जु आतमा, किम पुद्गल का वन्ध१७३

अर्थ—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणधारी, मूर्तीक पुद्गल द्रव्य स्निग्ध, रूक्ष, स्पर्श गुणों के निमित्त से एक दूसरे से परस्पर बंध जाते हैं। इससे विरुद्ध अमूर्तीक आत्मा किस तरह पुद्गलीक कर्म वर्गणा को बांधता है॥ १७३ ॥

आगे—आमा के बंध होता है उसे दृष्टान्त से दिखाते हैं।

रूवादिएहि रहिदो, पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि ।
दव्वाणि गुणे य जधा, तध बंधो तेण जाणीहिं १७४॥

विन मूरत मूर्तीक का, ज्ञाता दृष्टा वान ।
यथा द्रव्य गुण जानता, तथा वंध पहिचान १७४

अर्थ जैसे रूपादि से रहित आत्मा, रूपादि गुण धारी द्रव्यों को और उनके गुणों को देखता जानता हैं तैसे उस पुद्गल के साथ बंध जानो ॥ १७४ ॥

आगे—भाव बंध का स्वरूप दिखाते है।

उवओगमओ जीवो, मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि ।
पप्प विविधे विसये, जो हि पुणो तेहि संबंधो १७५॥

चेतन है उपयोग मय, विविध विषय को पाय ।
रागी द्वेषी मोहिया, वनिकें वंध लहाय ॥१७५॥

अर्थ—उपयोग मयी जीव नाना प्रकार इन्द्रियों के पदार्थों को पाकर मोह करता है राग करता है अथवा द्वेष करता है इस कारण निश्चय से उन भावों से बंधा है यही भाव बंध है ॥१७५॥

आगे—द्रव्य बन्ध का स्वरूप दिखलाते हैं।

भावेण जेण जीवो, पेच्छदि जाणादि आगदं विसए।
रज्जदि तेणेव पुणो, बज्झदि कम्मत्ति उवएसो ॥१७६

आये विषयजु भाव में, जान देख के जीव।
रागी उनमें होय जब, कर्म बंध की नींव १७६ ॥

अर्थ—जीव जिस राग द्वेष मोह भाव से इन्द्रियों के विषय में आए हुए इष्ट अनिष्ट पदार्थों को देखता है जानता है उसही भाव से रंग जाता है तब द्रव्य कर्म बंधजाता है ऐसा श्री जिनेन्द्र का उपदेश है ॥ १७६ ॥

आगे—तीन प्रकार के बंधों को सिद्ध करते हैं।

फासेहि पोग्गलाणं, बंधो जीवस्स रागमादीहिं।
अण्णोण्णं अवगाहो, पोग्गलजीवप्पगो भणिदो १७७॥

फर्शादिक पुद्गल मिले, रागादिक सें जंत।
एक क्षेत्र में परस्पर, पुद्गल जीव वसंत ॥१७७

अर्थ - पुद्गलों का बन्ध स्निग्ध रूक्ष स्पर्श से जीव का बन्ध रागादि परिणामों से तथा पुद्गल और जीव का बन्ध परस्पर एक क्षेत्र अवगाह रूप कहा गया है ॥ १७७ ॥

आगे द्रव्य बन्ध का कारण भाव बन्ध को दिखलाते हैं।

सपदेसो सो अप्पा, तेसु पदेसेसु पोग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं, चिट्ठंति य जंति वज्झंति १७८

जो प्रदेश हैं जीव के, उन में पुद्गल खंध ।
यथायोग्य आवें रहें, खिरें और पुन बंध ॥१७८॥

अर्थ—असंख्यात प्रदेशवान वह आत्मा है उन प्रदेशों में कर्म वर्गणा योग्य पुद्गल पिण्ड योगों के अनुसार प्रवेश करते हैं ठहरते हैं तथा उदय होकर खिर जाते हैं तथा फिर बंधते हैं ॥ १७८ ॥

आगे—रागादि भावों को ही निश्चय बंध कहते हैं ।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा ।
एसो बंध समासो, जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥१७९॥

रागी बांधे कर्म को तजे विरागी जीव ।
जीव बंध संक्षेप से, निश्चय कहे सदीव ॥१७९

अर्थ—रागी जीव ही कर्मों को बांधता है, वैराग्य सहित आत्मा कर्मों से छूटता है, यह बन्ध तत्व का संक्षेप हे शिष्य निश्चय नय से जानो ॥ १७९ ॥

आगे—रागादिक के भेदों को दिखाते हैं ।

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो ।
असुहो मोहपदोसो, सुहो व असुहो हवदि रागो १८०

बंध भावयुत भाव में, मोहराग अरु द्वेष ।
मोह द्वेष ये अशुभ हैं, राग शुभाशुभ भेष १८०॥

अर्थ—परिणामों से बन्ध होता है, परिणाम राग, द्वेप, मोह युक्त होता है मोह और द्वेप भाव अशुभ परिणाम हैं राग भाव शुभ व अशुभ रुप होता है ॥ १८० ॥

आगे—शुभाशुभ से बन्ध और शुद्ध भाव से मोक्ष सिद्ध करते हैं ।

सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामोणण्णगदो, दुक्खक्खयकारणं समये ॥१८१॥

शुभ भावनि से पुण्य है, और अशुभ से पाप।
परमें रमें न भाव जे, क्षय कारण भव ताप १८१॥

अर्थ—अपने आत्मा से अन्य द्रव्यों में शुभ राग रूप भाव पुण्य बंध का कारण होने से वह भाव पुण्य है व अशुभ राग रूप भाव पाप बन्ध का कारण होने से वह भाव पाप कहा जाता है तथा अन्य द्रव्य में नहीं रमता हुआ शुद्ध भाव संसार के दुःखों के क्षय का कारण है ऐसा परमागम में कहा गया है ॥ १८१ ॥

आगे—आत्मा को षट काय से भिन्न सिद्ध करते हैं।

भणिदा पुढविप्पमुहा, जीवणिकायाध थावराय तसा।
अण्णा ते जीवादो, जीवोवि य तेहिंदो अण्णो १८२॥

भू से लेकर जीव जे, थावर अरु त्रस काय।
भिन्न जीव से जीव भी, उन से भिन्न दिखाय १८२

अर्थ—पृथ्वी को आदि लेकर जीवों के समूह अर्थात् पृथ्वी कायिक आदि पाँच स्थावर और द्वीन्द्रियादि त्रस जो परमागम में कहे गये हैं वे सब जीव से भिन्न हैं तथा वह जीव भी उनसे भिन्न है ॥ १८२ ॥

आगे—पर द्रव्य में प्रवेश करने पर भेद विज्ञान का अभाव दिखलाते हैं।

जो ण विजाणदि एवं, परमप्पाणं सहावमासेज्ज।
कीरदि अज्झवसाणं, अहं ममेदत्ति मोहादो ॥ १८३ ॥

जो न अनुभवे आप पर, निज स्वरूप को जान।
मैं ये ये मैं मोह से, करता है अज्ञान ॥ १८३ ॥

अर्थ—जो कोई निज स्वभाव को पाकर पर को और आत्मा को इस तरह भिन्न भिन्न नहीं जानता है वही मोह के निमित्त से मैं इस पर रूप हूँ या यह पर मेरा है ऐसा अभिप्राय करता रहता है १८३

आगे—आत्मा अपने भाव का कर्ता है पुद्गल कर्म का नहीं ।

कुव्वं सहावमादा, हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स ।
पोग्गलदव्वमयाणं, ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥१८४॥

जीव भाव कर्ता जिते, तिनका कर्ता मान ।
सर्व भाव पुद्गलमयी, करता नहीं पिछान १८४॥

अर्थ—आत्मा अपने भाव को कर्ता हुआ अपने भाव का ही कर्ता होता है पुद्गल द्रव्य से बनी हुई सर्व अवस्थाओं का तो कर्ता नहीं है ॥ १८४ ॥

आगे—आत्मा पुद्गल कर्म का कर्ता किसतरह नहीं ? उत्तर

गेण्हदि णेव ण मुंचदि, करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि
जीवो पोग्गलमज्झे, वट्टण्णवि सव्वकालेसु ॥ १८५ ॥

पुद्गल कर्म नहीं करे, गहे न छोड़े तास ।
चेतन पुद्गल मध्ययदि, सदा काल से वास १८५॥

अर्थ—यह जीव पुद्गलों के मध्य में सर्व कालों में रहता हुआ भी पुद्गलमई कर्मों को न तो ग्रहण करता है न छोड़ता है और न करता है ॥ १८५ ॥

आगे—आत्मा अपने भावों से बंधता है और अपने भावों से छूटता हैं।

स इदाणि कत्ता स, सगपरिणामस्स दव्वजादस्स ।
आदीयदे कदाई, विमुच्चदे कम्मधूलीहिं १८६ ॥

आप किये निज भाव का, भव में कर्ता मान ।
कभी कर्म रज बंध है, कभी छूटता जान ॥१८६

अर्थ--संसार अवस्था में आत्मा अपने आत्मा से उत्पन्न अपने ही परिणाम का कर्ता होता हुआ कभी तो कर्म रूपी धूल से बंध जाता है व कभी छूट जाता है ॥ १८६ ॥

आगे—आत्मा की तरह कर्म भी अपने आप बंधते हैं।

परिणमदि जदा अप्पा, सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो
तं पविसदि कम्मरयं, णाणावरणादिभावेहिं ॥१८७॥

जीव शुभाशुभ परिणवे, राग द्वेष युत होय ।
तब ही आवे कर्म रज, अष्ट कर्म विधि सोय १८७

अर्थ--जब राग द्वेष सहित आत्मा शुभ या अशुभ भाव में परिणमन करता है तब कर्म रूपी रज स्वयं ज्ञाणावरणादि आठ कर्म रूप होकर जीव में प्रवेश कर जाता हैं ॥ १८७ ॥

आगे—व्यवहार से आत्मा को बन्ध स्वरूप दिखाते हैं।

सपदेसो सो अप्पा, कसायदो मोहरागदोसेहिं ।
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो, बंधोत्ति परूविदो समये ॥१८८

जीव प्रदेश कषाययुत, रागादिक से जान ।
कर्म धूलि से बद्ध जब, बंध रूप व्याख्यान १८८

अर्थ—प्रदेशवान वह आत्मा मोह राग द्वेषों से कषायला होता हुआ कर्म रूपी धूलि से लिपटा हुआ बंध रूप है ऐसा आगम में कहा है ॥ १८८ ॥

आगे—निश्चय और व्यवहार नयों को आपस में अविरोध दिखलाते हैं

एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छएण णिद्दिट्ठो।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो, अण्णहा भणिदो ॥ १८९ ॥

निश्चय बंध समास यह, जीवों को चित धार ।
यतियों को जिनवर कहा, अन्य रूप व्यवहार १८९

अर्थ—अरहन्तों के द्वारा यतियों को जीवों का यह रागादि परिणत रूप बंध का संक्षेप निश्चय नय से कहा गया है व्यवहार नय से जीव पुद्गल का बन्ध कहा गया है ॥ ८९॥

आगे—अशुद्ध नय से अशुद्ध आत्मा का लाभ दिखाते हैं ।

ण जहदि जो दु ममत्तिं, अहं ममेदत्ति देहदविणेसु।
सो सामण्णं चत्ता, पडिवण्णो होइ उम्मग्गं ॥ १९० ॥

मैं ये ये मैं द्रव्य तन, जो न तजे ममकार ।
वह मुनिपन को छोड़कर, उन मारग चितधार १९०

अर्थ—जो शरीर तथा धनादि में मैं उन रूप हूँ व ये मेरे हैं ऐसे ममत्व को नहीं छोड़ता है। वह मुनिपना छोड़ कर उन्मार्ग को प्राप्त हो जाता है ॥ १९० ॥

आगे—शुद्ध नयसे शुद्ध आत्मा का लाभ होता है।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादा१९१

मैं पर नहिं अरु पर न मम, मैं इक ज्ञान स्वरूप ।
ऐसा ध्यान जु ध्यावता, वही ध्यान का भूप १९१॥

अर्थ—मैं दूसरों का नहीं हूँ दूसरे पदार्थ मेरे नहीं हैं मैं अकेला ज्ञान मई हूं ऐसा जो ध्यान में ध्याता है वह आत्मा को ध्याने वाला होता है ॥ १९१ ॥

आगे—आत्मा अविनाशी ध्रुव शुद्ध वस्तु है इस कारण ग्रहण योग्य है

एवं णाणप्पाणं, दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं ।
धुवमचलमणालंवं, मण्णेहं अप्पगं सुद्धं ॥ १९२ ॥

मैं शुद्धातम अनुभवूं, दर्शन ज्ञान स्वरूप ।
महा अतेन्द्रिय ध्रुव अचल, निरालम्ब चिद्रूप १९२

अर्थ—इस तरह ज्ञान स्वरूप दर्शन स्वरूप इन्द्रियों के अगोचर अतीन्द्रिय स्वरूप अविनाशी अपने स्वरूप में निश्चल परालम्ब रहित शुद्ध अपने आत्मा को मैं अनुभव करता हुँ ॥ १९२ ॥

आगे— आत्मा के सिवाय अन्य वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं है।

देहा वा दविणा वा, सुहदुक्खा वाऽथ सत्तुमित्तजणा।
जीवस्स ण संति धुवा, धुवोवओगप्पगो अप्पा १९३॥

देह द्रव्य अरु सुक्ख दुख, शत्रु मित्र का वंश ।
नहीं जीव के ध्रुव रहे, उपयोगी ध्रुव हंस ॥१९३॥

अर्थ—जीव के शरीर या द्रव्य या सांसारिक सुख दुःख तथा शत्रु मित्र आदि मनुष्य अविनाशी नहीं हैं। केवल उपयोग मई आत्मा ध्रुव है ॥ १९३ ॥

आगे—शुद्ध आत्मा की प्राप्ति से मोह का नाश होता है।

जो एवं जाणित्ता, झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा ।
सागाराणागारो, खवेदि सो मोहदुग्गंठिं ॥ १९४ ॥

जो इमि लखि के ध्यावता, विशुद्ध हो चिद्रूप।
अनागार सागार से, मोह गांठ क्षय रूप १६४॥

अर्थ—जो कोई श्रावक या मुनि परम आत्मा को विशुद्ध भाव से ध्याता है वह मोह की गांठ को नाश करता है ॥ १९४ ॥

आगे—मोह गांठ के खुलने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जो णिहदमोहगंठी, रागपदोसे खवीय सामण्णे।
होज्जं समसुहदुक्खो, सो सोक्खं अक्खयं लहदि १६५

मोह गांठ के खुलत ही राग द्वेष नसि जाय।
जब मुनि के सम दुक्ख सुख, तब अक्षय पद पाय१६५

अर्थ—जो कोई मोह की गांठ को क्षय करके मुनि अवस्था में रह कर राग द्वेषों को नाश करके सुख दुःख में समता भाव रखता है वह ज्ञानी जीव अविनाशी आनंद को प्राप्त करता है ॥ १९५ ॥

आगे—निश्चल स्वरूप अनुभवन करने से अशुद्धता दूर होती है।

जो खविदमोहकलुसो, विसयविरत्तो मणोणिरूंभित्ता
समवट्ठिदो, सहावे, सो अप्पाणं हवदि धादा ॥१९६॥

मन वश विषय विरक्त हो, मोह कालिमा धोय।
जो स्वरूप थिर आतमा, वह ही ध्याता होय १९६

अर्थ—जो कोई मोह की कालिया को क्षय करके इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होता हुआ मनको सब तरह से रोक कर अपने आत्म स्वभाव में भले प्रकार स्थिर हो जाता है वही महात्मा आत्मा को ध्याने वाला होता है ॥ १९६ ॥

आगे—केवली भगवान क्या ध्यान करते हैं।

णिहदघणघादिकम्मो, पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू ।
णेयन्तगदो समणो, झादि कमट्ठं असंदेहो ॥ १९७ ॥

घाति कर्म को नाशि के, प्रगट लखा सब ज्ञेय ।
पारंगत मुनि ध्यान को, किमि साधें सन्देय १९७

अर्थ—सर्व घातिया कर्मों के नाश करने वाले प्रत्यक्ष रूपसे सर्व पदार्थों के जानने वाले, सर्व ज्ञेय पदार्थों के पार पहुँचने वाले, तथा संशय रहित केवलज्ञानी महा मुनि किस लिये ध्यान ध्याते हैं ॥ १९७ ॥

आगे—केवली भगवान् परमानन्द में रमण करते हैं।

सव्वाबाधविजुत्तो, समंत सव्वक्खसोक्खणाणड्ढो ।
भूदो अक्खातीदो, झादि अणक्खो परं सोक्खं १९८।

ज्ञान सुक्ख सर्वांगयुत, निरवाधा पहिचान ।
अक्षातीत अनक्ष अरु, परमानन्दज ध्यान १९८॥

अर्थ—सब प्रकार की बाधा रहित व सब तरह से सर्व आत्मी क सुख और ज्ञान से पूर्ण तथा अतीन्द्रिय होकर दूसरों के भी इन्द्रियों के जो विषय नहीं हैं ऐसे केवली भगवान् परमानन्द को ध्याते हैं ॥ १९८ ॥

आगे—आचार्य मोक्ष मार्ग में थिर होकर वंदने योग्यों को पुनः वन्दन करते हैं।

एवं जिणा जिणिंदा, सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा ।
जादा णमोत्थु तेसिं, तस्स य णिव्वाणमग्गस्स ॥ १९९

इम जिन जिनवर सिद्ध मुनि, होय मार्ग में युक्त।
तिन को करूं नमोस्तु मैं, अथवा मारग मुक्त १६६

अर्थ—इस तरह पूर्व कहे प्रमाण मोक्ष मार्ग को प्राप्त होकर मुनि, सामान्य केवली जिन, तथा तीर्थकर केवली, जिन, सिद्ध परमात्मा हुए उन सबको और उस मोक्ष मार्ग को नमस्कार हो ॥ १९९ ॥

आगे—आचार्य ज्ञायक भावमें समता रखते हुए ममता का निराकरण करते हैं।

तम्हा तह जाणित्ता, अप्पाणं जाणगं सभावेण।
परिवज्जामि ममत्तिं, उवट्ठिदो णिम्ममत्तम्मि ॥२००॥

यथा तथा सब जानिके, ज्ञायक जीव स्वभाव।
सब प्रकार ममता तजूं, धरि समता के भाव॥२००

अर्थ—इसलिये तिसही प्रकार अपने स्वभाव से ज्ञायक मात्र आत्मा को जानकर ममता रहित भाव में ठहर कर ममता भाव को मैं दूर करता हूँ ॥ २०० ॥

इति मासिक पाठ में तेईसवां दिवस समाप्त गाथा १९२ से २०० तक

इति ज्ञेयाधिकारः ॥ २ ॥

अथ चारित्राधिकारः ॥ ३ ॥

अथ मासिक पाठ में चौबीसवां दिवस :—

आगे—भव्यों को चारित्र की प्रेरणा करते है।

एवं पणमिय सिद्धे जिनवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जदु सामण्णं जदिइच्छदि दुक्खपरिमोक्खं २०१

प्रणमि सिद्ध जिनवर वृषभ, और श्रमण संयुक्त।
मुनि पदवी धारण करो, यदि इच्छा दुख मुक्त२०१

अर्थ--जो दुःखों से छुटकारा चाहता है तो ऊपर कहे हुए अनुसार सिद्धों को जिनेन्द्रो को और साधुओं को वारंवार नमस्कार करके मुनि पने को स्वीकार करो ॥ २०१ ॥

आगे--मुनि होने की परिपाटी दिखाते हैं ।

आपिच्छ वंधुवग्गं, विमोइदे गुरुकलत्तपुत्तेहिं ।
आसिज्ज णाणदंसण, चरित्ततवबीरियारम ॥ २०२ ॥

वंधु बर्ग को पूछि तज, मात पिता सुत नार ।
दर्शन ज्ञान चारित्र तप, आश्रय वीर्याचार २०२॥

अर्थ--वंधु के समूह को पूछ कर माता पिता स्त्री पुत्रों से छूटता हुआ ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्य ऐसे पांच आचारों को आश्रय करके मुनि होता है ॥ १०२ ॥

आगे--आचार्य का स्वरूप कहते हैं ।

समणं गणिं गुणड्ढं, कुलरूववयोविसिट्टमिट्ठदरं ।
समणेहि तंपि पणदो, पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो २०३

गुणाढ्य समुचित मान्यमुनि, कुलवय रूपविशि
तिन को नमि दित्ता चहे श्रमण अनुग्रह दृष्टि २०३

अर्थ--समता भावमें लीन गुणों से परिपूर्ण कुल रूप तथा अवस्था से उत्कृष्ट महा मुनियों से मान्य आचार्य को नमस्कार करके मेरे को अंगीकार कीजिये ऐसी प्रार्थना करता हुआ आचार्य द्वारा अंगीकार किया जाता है ॥ २०३ ॥

आगे--मुनि होने वाले भव्यके भावों को प्रकट करते हैं ।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि ।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो, जादो जधजादरूवधरो ॥२०४

मैं पर का नहिं पर न मम, मेरा अन्य न लेश ।
निश्चय कर मैं जितेन्द्रिय, धरे दिगम्बर भेष २०४

अर्थ—मैं दूसरों का नहीं हूँ न दूसरे मेरे हैं इस तरह इसलोक में कोई भी पदार्थ मेरा नहीं हैं। ऐसा निश्चय करता हुआ जितेन्द्रिय जैसा मुनि का स्वरूप होना चाहिये वैसा होजाता है ॥ २०४ ॥

आगे—मुनि के द्रव्य और भाव लिंग का स्वरूप कहते हैं।

जधजादरूवजादं, उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं ।
रहिदंहिंसादीदो, अप्पडिकम्मंहवदिलिंगं ॥ २०५ ॥

मुच्छारंभ विमुक्कं, जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं ।
लिंगणपरावेक्खं, अपुणब्भयकारणंजेण्हं ॥ २०६ ॥

शिरदाढ़ी कच लोंच अरु, शृंगारादि न लेश ।
हिंसादिक से रहित ही, शुद्ध दिगम्बर भेष २०५

योग शुद्ध उपयोग युत, मूर्छारम्भ न युक्त ।
शिव कारण जिन लिंग है, पर सहाय से मुक्त २०६

अर्थ—मुनि का द्रव्य चिन्ह जैसा परिग्रह रहित नग्न स्वरूप होता है वैसा होता है जिसमें शिर और दाढ़ी के वालों का लोंच किया जाता है जो निर्मल और हिंसादि पापों से रहित तथा शृंगार रहित होता है तथा मुनि का भाव चिन्ह ममता आरम्भ करने के भाव से रहित तथा उपयोग और ध्यान की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा न करने वाला, मोक्ष का कारण और जिन सम्बन्धी होता है ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

आगे—आचार्य शिष्य को मुनियों की विशेष क्रियाओं में लीन कराते हैं।

आदाय तंपि लिंगं, गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता ।
सोच्चा सवदं किरियं, उवट्ठिदो होदि सो समणो २०७॥

उभय लिंग को ग्रहण करि, परम गुरू शिरनाय ।
सुनकर व्रत किरिया रमें, सो मुनि पद को थाय २०७

अर्थ—उत्कृष्ट गुरु से उस उभयलिंग को ग्रहण करके फिर उस गुरु को नमस्कार करके तथा व्रत सहित क्रियाओं को सुन करके मुनि मार्ग में तिष्टता हुआ वह मुमुक्षु मुनि हो जाता है॥ २०७॥

आगे—अट्ठाईस मूल गुण और छेदोपस्थापना को दिखाते हैं।

वदसमदिंदियरोधो, लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥२०८॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
तेसु पमत्तो समणो, छेदोवट्ठावगो होदि ॥ २०९ ॥

व्रत समिती इन्द्रिय विजय, लोंचावश्यक नग्न ।
न्हान न दतवन भूशयन, खड़े भुक्ति इक लग्न २०८

ये मुनि के है मूलगुण, जिनवर देव वखान ।
जो प्रमाद मुनि आचरे, फिर थापनविधि ठान २०९

अर्थ—पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियों का निरोध केशलोंच, छह आवश्यक कर्म, नग्नपना, स्नान न करना पृथ्वी पर सोना दन्त धोवन न करना, खड़े हो भोजन करना ये साधुओं के अट्ठाईस मूल गुण वास्तव में जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं। इन मूल गुणों में प्रमाद करने वाला साधु छेदोपस्थापक अर्थात् फिर

के खन्डन में फिर स्थापन करने वाला होता है ॥२०८॥२०९॥

आगे—गुरुओं के भेद दिखाते हैं ।

लिंगग्गहणं तेसिं, गुरुत्ति पव्वज्जदायगो होदि ।
छेदेसूवट्ठगा, सेसा णिज्जावया समणा ॥ २१० ॥

लिंग ग्रहण जिस से करे, सो दित्ता गुरु जान ।
छेदक थापक अन्य मुनि, सो निर्यापक मान २१०

अर्थ—मुनि भेष के ग्रहण करते समय जो गुरु होता है वह दीक्षा गुरु होता है एक देश या सर्व देशव्रत के भंग होने पर जो फिर व्रत में स्थापन कराने वाले होते हैं वे सब शेष निर्यापक श्रमण या शिक्षा गुरु होते हैं ॥ २१० ॥

आगे—संयम भंग के लिये प्रायश्चित्त को दिखाते हैं ।

पयदम्हि समारद्धे, छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि ।
जायदि जदि तस्स पुणो, आलोयणपुव्विया किरिया २११

छेदुवजुत्तो समणो, समणं ववहारिणं जिणमदम्हि ।
आसेज्जालोचित्ता, उवदिट्ठं तेण कायव्वं ॥ २१२ ॥

मुनि हो यत्नाचार में, तन चेष्ठा व्रत भंग ।
आलोचन किरिया बने, प्रायश्चित का अंग २११

श्रमण भंगयुत को मिले, श्रमण जैन व्यवहार ।
आलोचन कर दोष की, लेय देशना धार २१२॥

अर्थ—चारित्र का प्रयत्न किये जाने पर यदि साधु की काय की चेष्टा

से दोष या भंग हो जावे तो फिर उस साधु की आलोचना पूर्वक क्रियाही प्रायश्चित है। अंतरंग भंग या छेद सहित साधु हो तो जिनमत में व्यवहार के ज्ञाता साधु को प्राप्त होकर अपने प्रकाशित करने पर उस साधु के द्वारा जो दंड मिले सो करना चाहिये ॥ २११ ॥ २१२ ॥

आगे—मुनि पद के भंग का कारण पर के सम्बध को निषेधते हैं।

अधिवासे व विवासे, छेद विहूणो भवीय सामण्णे।
समणो विहरदु णिच्चं, परिहरमाणो णिबंधाणि ॥२१३

संघ रहो या मत रहो, भंग रहित सम भाव।
मुनि बिहार नित ही करें, तज के मोह स्वभाव २१३

अर्थ—समता भाव रूप यति अवस्था में अन्तरंग बहिरंग भेद से दो तरह का जो मुनि पद का भंग है उससे रहित होकर सर्वदा पर द्रव्य में इष्ट अनिष्ट सम्बन्धों को त्यागता हुआ आत्मा में आत्मा को अंगीकार कर जहाँ गुरु का वास हो वहाँ अथवा दूसरी जगह रहकर धर्म साधन करो कोई दोष नहीं ॥ २१३ ॥

आगे—मुनिपद की पूर्णता, आत्म लीनता में है।

चरदि णिबद्धो णिच्चं, समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि।
पयदो मूलगुणेसु, य जो सो पडिपुण्णसामण्णो २१४

जो मुनि चरन निवद्ध नित, दर्शन ज्ञान प्रधान।
मूल गुणों को पालकर, होवें श्रमण महान ॥२१४॥

अर्थ—जो मुनि सम्यग्दर्शन को मुख्य लेकर सम्यग्ज्ञान से लिप्त होता हुआ मूल गुणों को [illegible] आचरण करता है वह पूर्ण यति

हो जाता है ॥ २१४ ॥

आगे—मुनि साधक परिग्रह में भी ममता नहीं करवे ।

भत्ते वा खवणे वा, आवसधे वा पुणो विहारे वा ।
उवधिम्मि वा णिवद्धं, णेच्छदि समणम्मि विकधम्मि २१५

भोजन अरु उपवास में, या विहार स्थान ।
विकथा उपाधि न चाहता, श्रमण न ममता वान २१५

अर्थ—भोजन में, उपवास में, वस्तिका में, विहार में, शरीर मात्र परिग्रह में, मुनियों में या विकथाओं में ममता नहीं चाहता ॥ २१५ ॥

आगे—यत्नाचार के विना संयम का भंग सिद्ध करते हैं ।

अपयत्ता वा चरिया, सयणासणठाणचंकमादीसु ।
समणस्स सव्वकाले, हिंसा सा संततत्ति मदा ॥२१६

यत्न विना चर्या सरव, शयनासन या और ।
हिंसा संतति श्रमण के, सर्व काल सव ठौर २१६॥

अर्थ—साधु का शयन, आसन, खड़ा, होना, चलना, स्वाध्याय, तपश्चरण आदि कार्यों में प्रयत्न रहित चेष्टा अर्थात जीव दया की रक्षा से रहित वह सर्व काल में निरन्तर होने वाली हिंसा मानी गई है ॥ २१६ ॥

आगे—यत्नाचार पूर्वक क्रिया से निर्बन्ध दिखाते हैं ।

मरदु व जिवदु व जीवा, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा
पयदस्स णत्थि बन्धो, हिंसामेत्तेण समिदीसु ॥२१७॥

जीव मरो या मति मरो, हिंसा है विन यत्न ।
वंध न हिंसा मात्र से, जिस के समिती रत्न २१७॥

अर्थ—जीव मरो य जीता रहो जो यत्न पूर्वक आचरण से रहित है उस के निश्चयय हिंसा है, समितियों में जो प्रयत्न वान है उसके द्रव्य प्राणों की हिंसा मात्र से वन्ध नहीं होता है ॥ २१७ ॥

आगे—उसी आशय को फिर दृढ़ करते है ।

अपदाचारोसमणो, छस्सुविकायेसुवंधगोत्तिमदो ।
चरदिजदंजदिणिच्चं, कमलंवजलेणिरुवलेवो ॥ २१८ ॥

यत्नाचार न श्रमण के, तो षट काया वंध ।
जो मुनि यत्नाचार में, जिमि जल कमल निवंध२१८

अर्थ—यत्न के विना साधु, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस का हिंसा करने वाला है। यदि सदा यत्न पूर्वक आचरण करता है तो जल में कमल के समान कर्म वन्ध से रहित है २१८

आगे—अन्तरङ्ग संयम का घातक परिग्रह को दिखाते हैं ।

हवदि व ण हवदि वन्धो, मदेहि जीवेऽध कायचेट्ठम्मि ।
वंधो धुवमुवधीदो, इदि समणा, छंडिया सव्वं ॥२१९॥

तन चेष्टा यदि जीव वध, होय न होवे वंध ।
निश्चय वंध उपाधि से, श्रमण तजा संवंध ॥२१९

अर्थ—शरीर से हलन चलन आदि क्रिया के होते हुये किसी जन्तु के मर जाने पर कर्म वन्ध होता है अथवा नहीं होता है परन्तु परिग्रह के निमित्त से वन्ध निश्चय से होता ही है इसीलिये साधुओं ने सर्व परिग्रह को छोड़ दिया ॥ २१९ ॥

आगे - जो मुनि परिग्रह को न तजे उस के चित्त विशुद्धि न हो ।

णहि णिरवेक्खो चाओ. ण हवदि भिक्खुस्स आसवविसुद्धि ।
अविसुद्धस्स य चित्ते, कहं णु कम्मक्खओ विहिओ २२०

जो मुनि तजे न सर्वथा, निर्मल चित्त न होय ।
चित्त विशुद्धि के विना, कर्म नाश नहिं होय २२०

अर्थ—अपेक्षा रहित त्याग यदि न होवे तो साधु के चित्त की विशुद्धि नहीं होवे, तथा अशुद्ध मन के होने पर किस तरह कर्मों का क्षय होवे ॥ २२० ॥

आगे—मुनि के अन्तरङ्ग संयम का घात परिग्रह से अवश्य होता है ।

किध तम्मि णत्थि मुच्छा, आरम्भो वा असंजमो तस्स ।
तध परदव्वम्मि रदो, कधमप्पाणं पसाधयदि ॥२२१॥

उस मूर्छा आरंभ से क्यों न असंयम होय ।
जब रत है पर द्रव्य में, कहा स्वानुभव होय । २२१

अर्थ—उस परिग्रह के होने पर ममत्व परिणाम अथवा उठाने धरने रूप आरम्भ किस तरह न हो, अवश्य हो फिर उस आरम्भ से उस मुनि के शुद्धात्मचरण रूप संयम का घात किस तरह न हो अवश्य हो । उस प्रकार से जिसके परिग्रह है वह मुनि निज स्वरूप से भिन्न पर द्रव्य रूप परिग्रह में रागी होकर किस तरह अपने शुद्ध स्वरूप का एकाग्रता से अनुभव कर सकता है ? नहीं कर सकता ॥ २२१ ॥

आगे—किसी मुनि के किसी काल से कोई एक परिग्रह अत्याज्य दिखलाते हैं ।

छेदो जेण ण विज्जदि, गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ।
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २२२ ॥

उपाधि रखे या परिहरे, जैसे भंग न होय ।
वैसे मुनि वर्तन करे, क्षेत्र काल को जोय २२२॥

अर्थ—जिस परिग्रह के ग्रहण करने व रखने में उस परिग्रह के सेवने वाले साधु के शुद्धोपयोगमई संयम का घात न होवे तो उस परिग्रह के साथ इस लोक में साधु क्षेत्र और काल को जानकर वर्तन करे ॥ २२२ ॥

आगे—जिस परिग्रह का मुनि के निषेध नहीं उस का स्वरूप कहते हैं।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं, अप्पत्थणिज्जं असंजदजणेहिं।
मुच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणो जदिवियप्पं २२३

बंधक उपाधि न हो जिसे, चहे न अव्रत लोग।
तो भी मूर्छा रहित हो. अल्प गहे मुनि लोग २२३॥

अर्थ—जो परिग्रह निषेध के योग्य न हो और असंयमी लोगों के द्वारा चाहने योग्य न हो व मूर्छा आदि भावों को न उत्पन्न करे उस को साधु अल्प ग्रहण करे ॥ २२३ ॥

आगे—उत्सर्ग मार्ग वस्तु का धर्म है अपवाद मार्ग नहीं।

किं किंचणत्ति तक्कं, अपुणब्भवकामिणोध देहेवि।
संगत्ति जिणवरिंदा, अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २२४ ॥

देह उपाधि जहँ श्रमण के. फिर न विचारें अन्य।
ममता विन जिनवर कहा. श्रेष्ठ भाव चैतन्य २२४

अर्थ—अहो पुनः भवरहित ऐसे मोक्ष के इच्छुक साधु के शरीर मात्र भी परिग्रह है ऐसा जान कर जिनदेव ने ममता रहित भाव को ही उत्तम कहा है ऐसी दशा में साधु के क्या क्या परिग्रह है यह एक मात्र तर्क ही है अर्थात् अन्य उपकरणादि परिग्रह का विचार भी नहीं हो सकता ॥ २२४ ॥

आगे—अपवाद मार्ग के भेदों को दिखाते हैं।

जो मुनि तजे न सर्वथा, निर्मल चित्त न होय ।
चित्त विशुद्धि के विना, कर्म नाश नहिं होय २२०

अर्थ—अपेक्षा रहित त्याग यदि न होवे तो साधु के चित्त की विशुद्धि नहीं होवे, तथा अशुद्ध मन के होने पर किस तरह कर्मों का क्षय होवे ॥ २२० ॥

आगे—मुनि के अन्तरङ्ग संयम का घात परिग्रह से अवश्य होता है।

किध तम्मि णत्थि मुच्छा, आरम्भो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो, कधमप्पाणं पसाधयदि ॥२२१॥

उस मूर्छा आरंभ से क्यों न असंयम होय ।
जब रत है पर द्रव्य में, कहा स्वानुभव होय । २२१

अर्थ—उस परिग्रह के होने पर ममत्व परिणाम अथवा उठाने धरने रूप आरम्भ किस तरह न हो, अवश्य हो फिर उस आरम्भ से उस मुनि के शुद्धात्मचरण रूप संयम का घात किस तरह न हो अवश्य हो। उस प्रकार से जिसके परिग्रह है वह मुनि निज स्वरूप से भिन्न पर द्रव्य रूप परिग्रह में रागी होकर किस तरह अपने शुद्ध स्वरूप का एकाग्रता से अनुभव कर सकता है? नहीं कर सकता ॥ २२१ ॥

आगे—किसी मुनि के किसी काल से कोई एक परिग्रह अत्याज्य दिखलाते हैं।

छेदो जेण ण विज्जदि, गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २२२ ॥

उपाधि रखे या परिहरे, जैसे भंग न होय ।
वैसे मुनि वर्तन करे, क्षेत्र काल को जोय २२२॥

अर्थ—जिस परिग्रह के ग्रहण करने व रखने में उस परिग्रह के सेवने वाले साधु के शुद्धोपयोगमई संयम का घात न होवे तो उस परिग्रह के साथ इस लोक में साधु क्षेत्र और काल को जानकर वर्तन करे ॥ २२२ ॥

आगे—जिस परिग्रह का मुनि के निषेध नहीं उस का स्वरूप कहते हैं।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं, अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं, गेण्हदु समणो जदिवियप्पं २२३

बंधक उपाधि न हो जिसे, चहे न अव्रत लोग।
तो भी मूर्छा रहित हो, अल्प गहे मुनि लोग२२३॥

अर्थ—जो परिग्रह निषेध ने योग्य न हो और असंयमी लोगों के द्वारा चाहने योग्य न हो व मूर्छा आदि भावों को न उत्पन्न करे उस को साधु अल्प ग्रहण करे ॥ २२३ ॥

आगे—उत्सर्ग मार्ग वस्तु का धर्म है अपवाद मार्ग नहीं।

किं किंचणत्ति तक्कं, अपुणब्भवकामिणोध देहेवि।
संगत्ति जिणवरिंदा, अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २२४ ॥

देह उपाधि जहँ श्रमण के, फिर न विचारें अन्य।
ममता बिन जिनवर कहा, श्रेष्ठ भाव चैतन्य२२४

अर्थ—अहो पुनः भवरहित ऐसे मोक्ष के इच्छुक साधु के शरीर मात्र भी परिग्रह है ऐसा जान कर जिनदेव ने ममता रहित भाव को ही उत्तम कहा है ऐसी दशा में साधु के क्या क्या परिग्रह है यह एक मात्र तर्क ही है अर्थात् अन्य उपकरणादि परिग्रह का विचार भी नहीं हो सकता ॥ २२४ ॥

आगे—अपवाद मार्ग के भेदों को दिखाते हैं।

उवयरणं जिणमग्गे, लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं ।
गुरुवयणं पि य विणओ, सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं २२५॥

जिनमत माने उपकरण, शुद्ध दिगम्बर भेष ।
गुरुवाणी अरु श्रुत पठन, और विनय गुण शेष२२५

अर्थ—जिन धर्म में उपकरण यथा जात रूप नग्न भेष कहा है तथा गुरु से धर्मोपदेश सुनना गुरुओं आदि की विनय करना तथा शास्त्रों का पढ़ना भी उपकरण कहा है ॥ २२५ ॥

आगे—मुनियों के आहार विहार में कषाय का अभाव दिखलाते हैं ।

इहलोग णिरावेक्खो, अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो, रहिदकसाओ हवे समणो ॥२२६॥

इस भव की वांछा नहीं, पर भव चहैं न भोग ।
युक्ताहार विहार में, श्रमण कषाय न राग २२६।

अर्थ—जो इस लोक की इच्छा से रहित हैं व पर लोक सम्बन्धी अभिलाषा से रहित हैं व क्रोधादिक कषायों से रहित हैं ऐसा साधु योग्य आहार विहार करने वाला होता है ॥ २२६ ॥

आगे—आहार करते हुए भी मुनि को निराहारी सिद्ध करते हैं ।

जस्स अणेसणमप्पा, तंपि तओ तप्पडिच्छगा समणा ।
अण्णंभिक्खमणेसण, मधतेसमणाअणाहारा ॥२२७॥

जो मुनि भोजन नहिं चहैं, तप इच्छुक मुनि मान ।
भोजन विधि भोजन करें, अनाहार के थान२२७

अर्थ—जिस साधु की आत्मा भोजन की इच्छा से रहित है सो ही तप है उस तप को चाहने वाले मुनि एषणा दोष रहित निर्दोष अन्न की भिक्षा को लेते हैं तो भी वे साधु आहार लेने वाले नहीं हैं ॥ २२७ ॥

आगे—मुनि, देह में भी ममत्व नहीं करते व तप में लीन रहते हैं।

केवल देहो समणो, देहेण ममेत्ति रहिदपरिकम्मो।
आउत्तो तं तवसा, अणिगूहं अप्पणो सत्तिं ॥ २२८ ॥

देह मात्र मुनि देह से, ममत न क्रिया अयोग्य।
निज शक्ती न छिपावता, तप से देह मनोग्य२२८

अर्थ—साधु केवल मात्र शरीरधारी देह में भी ममता रहित क्रिया करने वाले हैं। इससे उन्हों ने अपनी शक्ति को न छिपा कर तप से उस शरीर को योजित किया है अर्थात् तप में अपने तन को लगा दिया है ॥ २२८ ॥

आगे—योग्य आहार का स्वरूप दिखलाते हैं।

एक्कं खलु तं भत्तं, अप्पडिपुण्णोदरं जधा लद्धं।
चरणं भिक्खेण दिवा, न रसावेक्खं ण मधुमंसं २२९॥

एक भुक्त निश्चय वही, अनोदर जो प्राप्त।
रस न दृष्टि मधुमास विन, भिक्षा कर दिन खात२२९

अर्थ - वास्तव में उस भोजन को एक ही वार पूर्ण पेट न भर के ऊनोदर जैसा मिल गया वैसा भिक्षा द्वारा प्राप्त रसों की इच्छा न करके मधु, व माँस जिसमें न हो वह लेना सो योग्य आहार होता है ॥ २२९ ॥

आगे—उत्सर्ग मार्ग और अपवाद मार्ग में मैत्री भाव दिखलाते हैं।

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो, वा पुणो गिलाणो वा ।
चरियं चरउ सजोग्गं, मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥२३०॥

बाल वृद्ध रोगी थकित,इन युत जो मुनि कोय ।
चर्या पालो शक्ति लखि, मूलोच्छेद न होय।२३०॥

अर्थ—बालक मुनि हो अथवा वृद्ध या थक गया हो अथवा रोगी हो ऐसा मुनि जिस तरह मूल संयम का भंग न होवे वैसे अपनी शक्ति के योग्य आचार को पालो ॥ २३० ॥

आगे—उत्सर्ग और अपवाद मार्ग मैत्री भाव के बिना निषेधने योग्य है

आहारे व विहारे, देसं कालं समं खमं उवधिं ।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्प लेवी सो ॥२३१॥

अशन विहार विषें उपधि, देश काल श्रम शक्ति।
इन्हें जान वर्ते जिसे, अल्प बन्ध की व्यक्ति२३१।

अर्थ—यदि साधु आहार या विहार में देश को समय को, मार्ग की थकन को उपवास की क्षमता या सहनशीलता को तथा शरीर रूपी परिग्रह की दशा को इन पाँचों को जान कर वर्तन करता है वह बहुत कम कर्म बन्ध से लिप्त होता है ॥ २३१ ॥

आगे—जिसके स्वरूप में एकाग्रता है वही श्रमण है ।

एयग्गगदो समणो, एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु ।
णिच्छित्ती आगमदो, आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा ॥२३२॥

ऐक्य लीन सो श्रमण है,द्रव निश्चित सो ऐक्य।
निश्चित आगम ज्ञान से, आगम चेष्टा नेक्य२३२।

अर्थ—जो रत्नत्रय की एकता को प्राप्त है वह साधु है जिस के पदार्थों में श्रद्धा है उसके एकाग्रता होती है पदार्थों का निश्चय आगम से होता है इसलिये शास्त्र ज्ञान में उद्यम करना उत्तम है ॥२३२॥

आगे—आगमहीन के मोक्ष का निषेध करते हैं ।

आगमहीणो समणो, णेवप्पाणं परं वियाणादि ।
अविजाणंतो अत्थे, खवेदि कम्माणि किध भिक्खु२३३

आगम हीन न जानता, श्रमण आप पर दोय ।
नहि जाने जब आप पर, कर्म क्षपण किमि होय२३३

अर्थ—शास्त्र के ज्ञान से रहित साधु न तो आत्मा को न अन्य को जानता है परमात्मा आदि पदार्थों को नहीं समझता हुआ साधु किस तरह कर्मों का क्षय कर सकता है ॥ २३३ ॥

आगे मोक्ष मार्गियों के आगम ही नेत्र हैं ।

आगमचक्खू साहू, इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवाय ओहि चक्खू, सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू २३४॥

आगम नेत्र जु श्रमण के, सर्व जीव जड़ नेत्र ।
अवधि नेत्र देवों विषे, सिद्ध नेत्र सब क्षेत्र।२३४॥

अर्थ—साधु महाराज आगम के नेत्र से देखने वाले हैं सर्व संसारी जीव इन्द्रियों के द्वारा जानने वाले हैं और देवगण अवधि ज्ञान से जानने वाले हैं परन्तु सिद्ध भगवान सब तरफ से सब देखने वाले हैं ॥ २३४ ॥

आगे—आगम नेत्र से ही सर्व देखा जाता है ।

सव्वे आगमसिद्धा, अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं ।
जाणंति आगमेण हिं, पेछित्ता तेवि ते समणा ॥२३५

नाना गुण पर्याय युत, वस्तू आगम सिद्ध।
जाने आगम दृष्टि से, वे ही श्रमण प्रसिद्ध॥२३५॥

अर्थ—नाना प्रकार गुण पर्यायों के साथ सर्व पदार्थ आगम से जाने जाते हैं। आगम के द्वारा निश्चय से तिन सबको समझ कर जो जानते हैं वे साधु हैं॥ २३५ ॥

आगे—रत्नत्रय की एकता से मोक्ष मार्ग सिद्ध करते हैं।

आगमपुव्वादिट्ठी, ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थित्ति भणइ सुत्तं, असंजदोहवदि किधसमणो२३६

आगम पूर्वक दृष्टि बिन, संयम बने न कोय।
संयम बिन आगम कहे, श्रमण कौन विधि होय२३६

अर्थ—इस लोक में जिस जीव के आगम ज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन नहीं है उस जीव के संयम नहीं है ऐसा सूत्र कहता है जो असंयमी है वह किस तरह श्रमण या साधु हो सकता है॥ २३६ ॥

आगे—रत्नत्रय की एकता न होवे तो मोक्ष मार्ग न होवे।

णहि आगमेण सिज्झदि, सद्दहणं जदिण अत्थि अत्थेसु
सद्दहमाणो अत्थे, असंजदो वा ण णिव्वादि॥२३७॥

सिद्ध न आगम ज्ञान से, जहां न तत्व श्रधान।
यदि श्रद्धा संयम बिना, लहे न पद निर्वान२३७

अर्थ—यदि पदार्थों में श्रद्धान न हो तो आगम के जानने मात्र से मुक्ति नहीं हो सकता। पदार्थों का श्रद्धान करता हुआ यदि असंयम है तो भी निर्वाण को नहीं प्राप्त करता॥ २३७ ॥

आगे—ज्ञानी के निर्जरा की अपूर्व महिमा सिद्ध करते हैं।

जं अण्णाणी कम्मं, खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो, खवेइ उस्सासमेत्तेण॥ २३८॥

अज्ञानी जिस कर्म को, नाश कर भव कोड़।
उसको ज्ञानी चणिक में, तीन गुप्ति कर तोड़२३८

अर्थ—अज्ञानी जिस कर्म को एक लाख कोड़ भवों में नाश करता है उस कर्म को आत्म ज्ञानी, मन, वचन काय की गुप्ति सहित होकर एक उच्छ्वास मात्र में चय करता है॥ २३८।

आगे—अंश मात्र ममत्व के होने पर मोच मार्ग को निषेधते हैं।

परमाणुपमाणं वा, मुच्छा देहादियेसु जस्सपुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण, लहदि सव्वागमधरोवि२३९

अंश मात्र ममता जहां, देहादिक से होय।
सर्व शास्त्र पाठी यदपि, मुक्ति न पावे सोय२३९॥

अर्थ—तथा जिसके भीतर शरीर आदिकों से परमाणु मात्र भी ममत्व भाव यदि है तो वह साधु सर्व आगम के जानने वाला है तो भी मोच को नहीं पा सकता है॥ २३९.॥

अथ मासिक पाठ में पच्चीसवां दिवस:—

आगे—संयमी पुरुष का स्वरूप कहते हैं।

पंचसमिदो तिगुत्तो, पंचेंदियसंवुड़ो जिदकसाओ।
दंसणणाणसमग्गो, समणो सो संजदो भणिदो॥२४०

इन्द्रिय विजय कषाय जित,समिति गुप्ति में लीन।
दर्शन ज्ञान यथार्थ जहं, श्रमण संयमी चीन२४०

अर्थ—जो पांच समितियों का धारी है तीन गुप्ति में लीन हैं पांच इन्द्रियों का विजयी है कषायों को जीतने वाला है सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से पूर्ण है वह साधु संयमी कहा गया है ॥२४०॥

आगे—संयमी पुरुष के पर द्रव्य में समान भावों को दिखाते हैं।

समसत्तुबन्धुवग्गो, समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण, जीविदमरणे समो समणो।

सत्रु मित्र अरु सुःख दुख, निन्दा स्तुति कोय।
लोह कनक जीवन मरण, श्रमण बराबर दोय२४१

अर्थ—जो शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, निन्दा, प्रशंसा, लोह, सुवर्ण तथा जीवन, मरण को एकसा जानता है वही श्रमण या साधु है२४१

आगे—रत्नत्रय की एकता को मोक्ष मार्ग या मुनि पद कहते हैं।

दंसणणाण चरित्तेसु, तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदोत्ति मदो, सामण्णं तस्स परिपुण्णं ॥२४२

दर्शन ज्ञान चरित्र त्रय, युगपत साधे कोय।
वही मग्न हो ध्यान में, पूर्ण ऋषीश्वर सोय२४२॥

जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र में एक काल भले प्रकार तिष्टता है वही एकाग्रता को प्राप्त है उसी के यतिपना परिपूर्ण है ॥२४२॥

आगे—एकाग्रता के बिना मोक्ष मार्ग को निषेधते हैं।

मुज्झदि वा रज्झदि वा, दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी, बज्झदि कम्मेहि विविहेहिं२४३

मोह राग अरु द्वेष से, ग्रहण करे पर दर्व।
अज्ञानी वह श्रमण है; बांधे कर्म जो सर्व॥२४३॥

अर्थ—यदि साधु अपने से अन्य किसी द्रव्य को ग्रहण कर उसमें मोहित हो जाता है अथवा उसमें रागी होता है अथवा उसमें द्वेष करता है तो वह साधु अज्ञानी है इसलिये नाना प्रकार कर्मों से बंध जाता है ॥ २४३

आगे—एकाग्रता से ही मोक्ष मार्ग दिखाते हैं।

अत्थेसु जो ण मुज्झदि, ण हि रज्जदि णेव दोसमुपयादि
समणो जदि सो णियदं, खवेदि कम्माणि विविधाणि २४४

मोह नहीं पर द्रव्य से, नहीं राग अरु द्वेष।
ते निश्चय मुनि क्षय करें,वहुविधि कर्म कलेश२४४

अर्थ—तथा जो अपने आत्मा को छोड़ कर अन्य पदार्थों में मोह नहीं करता है, राग नहीं करता है और न द्वेष को प्राप्त होता है वह साधु निश्चय से नाना प्रकार के कर्मों का क्षय करता है २४४

आगे--शुभोपयोगी को आश्रव सहित दिखाते हैं।

समणा सुद्धवजुत्ता, सुहोवजुत्ता य होंति समयम्मि।
ते सुवि सुद्धवउत्ता, अणासवा सासवासेसा ॥ २४५॥

शुद्धयोग शुभयोग से, आगम में मुनि दोय।
सुद्धाश्रव से रहित हैं, आश्रवयुत शुभ वोय२४५।

अर्थ—परमागम में मुनि शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी दो तरह के कहे गये हैं इन दो तरह के मुनियों में भी शुद्धोपयोगी आश्रव रहित होते हैं शेष शुभोपयोगी आश्रव सहित होते हैं।।२४५॥

शिष्य करें पोखें उन्हें, दर्श ज्ञान उपदेश।
चर्या सर्व सराग है, जिन पूजा उपदेश ॥२४८॥

अर्थ—निश्चय करके शुभोपयोगी मुनियों की चर्या इस प्रकार है कि शिष्य साखाओं का वढ़ाना और उन शिष्यों को समाधान करते रहना और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व भगवान वीतराग की पूजा का उपदेश देना इत्यादि ॥ २४८॥

आगे—वैयावृत्ति में षट काय की विराधना का निषेध करते हैं।

उवकुणदि जोवि णिच्चं, चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स।
कायविराधणरहिदं, सोवि सरागप्पधाणो से ॥ २४९ ॥

सदा करे उपकार जो, चार संघ श्रमणान।
षट काया न विराधना, चर्या राग प्रधान ॥२४९॥

अर्थ—जो कोई मुनि चार प्रकार के साधु सङ्घ का नित्य छः प्रकार के प्राणियों की विराधना से रहित उपकार करता है वह साधु शुभोपयोग धारियों में मुख्य कहा गया है ॥ २४९ ॥

आगे—वैयावृत्य में षट काय की विराधना करना मुनियों का धर्म नहीं

जदि कुणदि कायखेदं, वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी, धम्मो सो सावयाणं से २५०

खेद करे षट काय को, वैयावृत में कोय।
सो न श्रमण श्रावक कहो, जो आरंभी होय २५०

अर्थ—यदि वैयावृत्य करता हुआ साधु षटकाय के जीवों की विराधना करता है तो वह साधु नहीं है वह गृहस्थ है क्योंकि षट काय के जीवों की विराधना सहित वैयावृत्य करना श्रावकों का धर्म

आगे—शुभोपयोगी का लक्षण कहते हैं।

अरहंतादिसु भत्ती, वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु ।
विज्जदि जदि सामण्णे, सा सुहजुत्ता भवे चरिया२४६

अरहंतादि उपासना, प्रवचन मुनि सो प्रीत ।
जो मुनि वर्ते इस तरह, शुभाचार युत रीत२४६।

अर्थ—यदि मुनि के अरहंत तथा सिद्धों में गुणानुराग है, आगम या संघ के धारी आचार्य, उपाध्याय, व साधुओं में विनय, प्रीति व उनके अनुकूल वर्तन पाया जाता है तब वह शुभोपयोग सहित है ॥ २४६ ॥

आगे—शुभोपयोगी की प्रवृति को दिखाते है।

वंदणणमंसणेहि, अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती ।
समणेसु समावणओ, ण णिंदिया रायचरियम्मि २४७

देख खड़ा पीछे चले, नमस्कार पग लाग ।
महा श्रमण प्रतिटहल में, निषध न चर्याराग२४७

अर्थ—शुभ राग रूप आचारण में अर्थात् सराग चारित्र की अवस्था में वंदना और नमस्कार के साथ साथ आते हुए साधु को देख कर उठ खड़ा होना उनके पीछे पीछे चलना आदि प्रवृति तथा खेद आदि दूर करने रूप क्रिया निषेध या वर्जित नहीं है॥२४७॥

आगे—उसी आसय को पुनः विशेष कहते हैं।

दंसणणाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं ।
चरिया हि सरागाणं, जिणिंदपूजोवदेसो य ॥ २४८ ॥

शिष्य करें पोखें उन्हें, दर्श ज्ञान उपदेश।
चर्या सर्व सराग है, जिन पूजा उपदेश ॥२४८॥

अर्थ—निश्चय करके शुभोपयोगी मुनियों की चर्या इस प्रकार है कि शिष्य साखाओं का बढ़ाना और उन शिष्यों को समाधान करते रहना और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व भगवान वीतराग की पूजा का उपदेश देना इत्यादि ॥ २४८॥

आगे—वैयावृत्ति में षट काय की विराधना का निषेध करते हैं।

उवकुणदि जोवि णिच्चं, चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स।
कायविराधणरहिदं, सोवि सरागप्पधाणो से ॥ २४९ ॥

सदा करे उपकार जो, चार संघ श्रमणान।
षट काया न विराधना, चर्या राग प्रधान ॥२४९॥

अर्थ—जो कोई मुनि चार प्रकार के साधु सङ्घ का नित्य छः प्रकार के प्राणियों की विराधना से रहित उपकार करता है वह साधु शुभोपयोग धारियों में मुख्य कहा गया है ॥ २४९ ॥

आगे—वैयावृत्य में षट काय की विराधना करना मुनियों का धर्म नहीं

जदि कुणदि कायखेदं, वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी, धम्मो सो सावयाणं से २५०

खेद करे षट काय को, वैयावृत में कोय।
सो न श्रमण श्रावक कहो, जो आरंभी होय २५०

अर्थ—यदि वैयावृत्य करता हुआ साधु षट काय के जीवों की विराधना करता है तो वह साधु नहीं है वह गृहस्थ है क्योंकि षट काय के जीवों की विराधना सहित वैयावृत्य करना श्रावकों का धर्म

है साधुओं का नहीं ॥ २५० ॥

आगे—वैयावृत्य के योग्य पात्रों को दिखावे हैं।

जोण्हाणं णिरवेक्खं, सागारणगारचरियजुत्ताणं ।
अणुकंपयोवयारं, कुव्वदु लेवो यदिवियप्पं ॥ २५१ ॥

निरागेच्छ मुनि जो लखें, मुनि श्रावक युत कोय।
दयादृष्टि परहित करे, अल्प बंध को जोय॥२५१॥

अर्थ—यद्यपि अल्प बन्ध होता है तथापि शुभोपयोगी मुनि श्रावक तथा मुनि के आचरण से युक्त जैन धर्मधारियों का बिना किसी इच्छा के दया सहित उपकार करे तो कोई दोष नहीं ॥ २५१ ॥

आगे—वैयावृत्य के योग्य समय को दिखाते हैं।

रोगेण वा छुधाये तण्हणया, वा समेण वा रूढं ।
देट्ठा समणं साधू, पडिवज्जदु आदसत्तीए ॥ २५२ ॥

भुखित त्रासित रोगी थकित,अथवा पीडित वान ।
श्रवण देख सेवा करे, श्रमण शक्ति पहिचान २५२

अर्थ—साधु रोग से व भूख से वा प्यास से व थकन से पीड़ित किसी साधु को देख कर अपनी शक्ति के अनुसार उसका वैयावृत्य करे तो दोष नहीं है ॥ २५२ ॥

आगे—वैयावृत्य काल में अज्ञानियों से बोलना पड़े तो निषेध नहीं।

वेज्जावच्चनिमित्तं, गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं ।
लोगिगजणसंभासा, ण णिंदिया वा सुहोवजुदा २५३॥

बाल वृद्ध पीडित गुरू, सेवा संघ निमित्त।
यदि बोलें मुनि लोक से, निषध न शुभ में चित्त २५३

अर्थ--अथवा रोगी मुनि, पूज्य मुनि, बालक मुनि, तथा वृद्ध मुनि की वैया वृत्य के लिये शुभोपयोग सहित मुनि लौकिकजनों के साथ भाषण करें तो निषेध नहीं ॥ २५३ ॥

आगे—शुभोपयोग किसके मुख्य किसके गौण है दिखलाते हैं।

एसा पसत्थभूता, समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा, ताएव परं लहदि सोक्खं२५४

यह शुभ राग गृहस्थ के, गौण श्रमण के होय।
इस आचरन महान से, परम्परा शिव होय२५४॥

अर्थ—साधुओं के यह धर्मानुराग रूप चर्या होती है और गृहस्थों की यह क्रिया मुख्य कही गई है इस ही चर्या से साधु व गृहस्थ उत्कृष्ट मोक्ष सुख को परम्परा कर प्राप्त करते हैं॥२५४॥

आगे—कारण की विपरीतता से फल की विपरीतता दिखलाते हैं।

रागो पसत्थभूदो, वत्थु विसेसेण फलदि विवरीदं।
णाणाभूमिगदाणि, हि वीयाणिव सस्सकालम्मि २५५

धर्म राग विपरीत फल, पात्र भेद से होय।
अन्न उपज हीना अधिक, भूमि भेद जिमि होय२५५

अर्थ—धर्मानुराग का फल पात्र की विशेषता से भिन्न भिन्न रूप होता है, जैसे धान्य की उत्पति के काल में नाना प्रकार की पृथ्वीओं में प्राप्त बीज फलता है॥२५५॥

आगे—उसी आशय को अधिक स्पष्ट करते हैं।

छदुमत्थविहिदवत्थुसु, वदणियमज्झयणझाणदाणरदो
ण लहदि अपुणब्भावं, भावं सादप्पगं लहदि ॥२५६॥

कहे धर्म छद्मस्थ जे, पठन ध्यान व्रत दान।
तिन्हे पाळ नहि शिव लहे, कछु साता के थान२५६

अर्थ—अज्ञानियों के द्वारा कल्पित देव, गुरु, धर्मादि पदार्थों में जो श्रद्धान करता है और उनके कहे हुए व्रत, नियम, पठन, पाठन, ध्यान तथा दान में लीन होता है वह पुरुष मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु साता मई अवस्था अर्थात् देव या मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर सकता है ॥ २५६ ॥

आगे—उसी आसय को पुनः दृढ़ करते हैं।

अविदिदपरमत्थेसु य, विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु।
जुट्ठं कदं व दत्तं, फलदि कुदेवेसु मणुजेसु ॥ २५७ ॥

परमारथ से मूढ़ अरु, वहुरत विषय कषाय।
तिन्हे दान सनमान दे, नीच देव नर थाय२५७॥

अर्थ—जो परमार्थ नहीं जानते व जिन को परमात्मा के तत्व का श्रद्धान ज्ञान नहीं है तथा जिन के भीतर पंचेन्द्रिय के विषयों की तथा मान, लोभादिक कषायों की वड़ी प्रवलता है ऐसे पात्रों में की हुई सेवा परोपकार या दिया हुआ आहार, औषधि आदि दान नीच देवों में और नीच मनुष्यों में फलता है ॥ २५७ ॥

आगे—कारण की विपरीतता से उत्तम फल की सिद्धि नहीं।

जदि ते विसयकसाया, पावत्ति परूविदा व सत्थेसु।
कह ते तप्पडिबद्धा, पुरिसा णित्थारगा होंति ॥२५८॥

पाप कहे सब शास्त्र में, इन्द्रिय विषय कषाय।
तिन में रत जे पुरुष हैं, किमि निस्तारक थाय २५८

अर्थ - क्योंकि वे इन्द्रियों के विषय तथा क्रोधादि कषाय पाप रूप हैं ऐसे शास्त्रों में कहे गए हैं तो किस तरह उन विषय कषायों में सम्बन्ध रखने वाले वे अल्प ज्ञानी पुरुष अपने भक्तों को संसार से तारने वाले हो सकते हैं॥२५८॥

आगे—उत्तम फल का कारण उत्तम पात्र को दिखलाते हैं।

उपरदपावो पुरिसो, समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।
गुणसमिदिदोवसेवी, हवदि स भागी सु मग्गस्स॥२५९

पाप रहित जे पुरुष हैं, सर्व धर्म सम गात्र।
गुण समूह सेवन करें, वही मोक्ष का पात्र २५९

अर्थ—वह पुरुष मोक्ष मार्ग का पात्र होता है जो सर्व विषय कषाय रूप पापों से रहित है सर्व धर्मों में समान भाव का धारी है तथा गुणों के समूहों को सेवने वाला है॥ २५९॥

आगे—उसी आसय को और भी स्पष्ट करते हैं।

असुभोवयोगरहिदा, सुद्धवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो॥ २६०॥

अशुभयोग से रहित है, सहित शुद्ध शुभ योग।
सर्व लोक तारन तरन, भक्त लहें सुर भोग २६०॥

अर्थ—जो अशुभ उपयोग से रहित हैं शुद्धोपयोग में लीन हैं या कभी शुभोपयोग में वर्तते हैं वे जगत को तारने वाले और स्वयं

तरने वाले हैं उन में भक्ति करने वाला उत्तम पुण्य को प्राप्त करता है ॥ २६० ॥

आगे—उत्तम पात्र की सेवा के लिये सावधान करते हैं।

दिट्ठा पगदं वत्थू, अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं।
वट्टदु तदो गुणादो, विसेसिदव्वोत्ति उवदेसो ॥२६१॥

श्रेष्ट पात्र को देख कर, आदर करे विशेष।
गुण समूह वे सेवते, ऐसा जिन उपदेष ॥२६१॥

अर्थ—यथार्थ पात्र को देख कर उठ खड़ा होना आदि क्रियायों से वर्तन करना योग्य है क्योंकि रत्नत्रय मयी गुणों के कारण से उनके साथ विशेष वर्ताव करना चाहिये ऐसा उपदेश है ॥२६१॥

आगे—विनयादि क्रिया विशेष को कहते हैं।

अब्भुट्ठाणं गहणं, उवासणं पोसणं च सक्कारं।
अंजलिकरणं पणमं, भणिदं इह गुणाधिगाणं हि २६२

खड़ा होय आदर करे, पोषणादि जय कार।
हाथ जोड़ मस्तक नमें, गुण विशेष के लार२६२

अर्थ—इस लोक में निश्चय करके अपने से अधिक गुण वालों के लिए आते हुए देख कर उठ खड़ा होना उनको आदर से स्वीकार करना उनकी सेवा करना उनका भोजनादि से सत्कार करना तथा हाथ जोड़ना और नमस्कार करना कहा गया है ॥२६२॥

आगे—विनयादिक के योग्य पात्र का स्वरूप कहते हैं।

अब्भुट्ठेया समणा, सुत्तत्थविसारदा उवासेया।
संजमतवणाणड्ढा, पणिवदणीया हि समणेहिं॥२६३॥

विनय योग्य वेही श्रमण, सूत्र विशारद जान ।
संयमतप ज्ञानी महा, वन्दनीय मुनि मान २६३॥

अर्थ--साधुओं को निश्चय करके जो शास्त्रों के अर्थ में पंडित तथा संयम तप और ज्ञान से पूर्ण हैं उन साधुगणों को खड़े होकर आदर करना योग्य है उपासना करना योग्य है तथा नमस्कार करना योग्य है ॥ २६३ ॥

आगे—विनय न करने योग्य कुपात्र का स्वरूप कहते हैं ।

ण हवदि समणोत्तिमदो, संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि ।
जदि सद्दहदि ण अत्थे, आदपधाणे जिणक्खादे २६४॥

हो सक्ता नहि श्रमण वह, संयम तप श्रुत वान ।
जो न रुचे जिय मुख्य कर, द्रव्य जिनेश बखान २६४

अर्थ—जो संयम, तप, तथा शास्त्र ज्ञान होने पर भी जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए आत्मा को मुख्य करके पदार्थों का श्रद्धान नहीं करता है वह साधु नहीं हो सकता है ऐसा माना गया है ॥ २६४ ॥

आगे—शासन मुनि का जो विनय आदि नहीं करता वह संयम रहित है।

अववददि सासणत्थं, समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि ।
किरियासु णाणुमण्णदि, हवदि हि सो णट्ठचारित्तो २६५

शाशन मुनि को देख कर, विनय करे नहि कोय ।
दोष गहे निन्दा करे, निज संयम को खोय २६५।

अर्थ—जो साधु निश्चय से जिन मार्ग में चलते हुए साधु को देखकर द्वेष भाव से उनका अपवाद करता है उसके लिये विनयपूर्वक

क्रियाओं में अनुमति नहीं रखता है, वह साधु निश्चय से चारित्र भ्रष्ट हो जाता है॥ २६५॥

आगे—अधिक गुण वाले मुनि से विनय चाहने वाले को अनन्त संसारी दिखलाते हैं।

गुणदोधिगस्स विणयं, पडिच्छगो जोविहोमि समणोत्ति
होज्जं गुणाधरो जदि, सो होदि अणंतसंसारी॥ २६६॥

विनय चहे गुण आधिक से, मैं साधु अभिमान।
तो गुण ग्राही है नहीं, वहु संसारी जान॥२६७॥

अर्थ—यदि कोई साधु, मैं साधु हूँ, ऐसा मान कर अपने से जो गुणों में अधिक हैं उसके द्वारा अपना विनय चाहता है वह साधु गुणों से रहित होता हुआ अनन्त संसार में भ्रमण करने वाला होता है॥ २६६॥

आगे—हीन गुणी को विनयादि करने से गुणों का ह्रास दिखलाते हैं।

अधिगगुणा सामण्णे, वट्टंति गुणाधरेहि किरियासु।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता॥ २६७॥

गुण विशेष यदि मुनि नमें, हीन गुणी को अंग।
तो पावे मिथ्यात को, अरु फिर संयम भंग२६७

अर्थ—मुनिपने के चारित्र में उत्कृष्ट गुणधारी साधु जो गुणहीन साधुओं के साथ वन्दना आदि क्रिया करते हैं वे मिथ्यात्व सहित चारित्र रहित हो जाते हैं॥ २६७॥

आगे—कुसङ्गति को निषेधते हैं।

णिच्छिदसुत्तत्थपदो, समिदकसायो तवोधिगो चावि
लोगिगजणसंसग्गं ण जहदि जदि संजदो ण हवदि२६८

सूत्र अर्थ पद जानता, सम कषाय तप वान ।
संघ न लौकिक जन तजे, तो संयमी न जान २६८।

अर्थ—जिसने सूत्र के अर्थ और पदों को निश्चयपूर्वक जान लिया है कपायों को शान्त कर दिया है तथा तप करने में अधिक है ऐसा साधु यदि लौकिक जनों का अर्थात असंयमी जनों का या भ्रष्ट चारित्र साधुओं का सङ्ग नहीं त्यागता तो वह संयमी नहीं रह सकता ॥ २६८ ॥

आगे—लौकिक मुनि का लक्षण कहते हैं ।

णिग्गंथं पव्वइदो, वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहिं ।
सो लोगिगोदि भणिदो, संजमतवसंपजुत्तोवि ॥२६९॥

दीक्षापद निर्ग्रंथ ले, लोक कर्म में युक्त ।
वह लौकिक साधू कहा, सयम तप संयुक्त॥२६९॥

अर्थ—निर्ग्रन्थपद की दीक्षा को धारता हुआ यदि लौकिक व्यापारों में वर्तता है वह साधु संयम और तप सहित है तो भी लौकिक साधु है ऐसा कहा गया है ॥ २६९ ॥

आगे—सत्संगति कैसी होनी चाहिये ऐसा दिखलाते हैं ।

तम्हा समं गुणादो, समणो समणं गुणेहिं वा अहियं ।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं, इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं २७०

इससे जो मुनि गुण अधिक, या समान संयुक्त ।
उनकी संगति को करो, जो चाहो दुख मुक्त२७०।

अर्थ—इसलिये यदि साधु दुखों से छूटना चाहता है तो गुणों मे

समान व गुणों से अधिक साधू की निरन्तर संगति करो ॥ २७० ॥

आगे—पंच रत्नो में से संसार तत्व को कहते हैं।

जे अजधागहिदत्था, एदे तच्चत्ति णिच्छिदा समये।
अच्चंतफलसमिद्धं, भमंति तेतो परं कालं॥ २७१ ॥

अन्य अर्थ को ग्रहण कर, कहें सत्य हम ख्याल।
ते अनंत संसार में; भ्रमें अनन्ते काल ॥२७१॥

अर्थ—जो कोई असत्य पदार्थों के स्वारूप को जान के यह कहते हैं कि येही जिनागम में तत्व कहे हैं ऐसा निश्चय कर लेते हैं वे साधु इस मिथ्या श्रद्धान व ज्ञान से आगे अनंत दुःख रूपी फलसे भरे हुए संसार से अनंत काल भ्रमण करते हैं ॥ २७१ ॥

आगे— मोक्ष तत्व को कहते हैं।

अजधाचारविजुत्तो, जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा।
अफले चिरं ण जीवदि, इह सोसंपुण्णसामण्णो २७२॥

मिथ्या चार विमुक्त हैं, पद यथार्थ उपशांत।
ते न भ्रमे संसार में, मुनि पद से पूर्णान्त।२७२॥

अर्थ—विपरीत आचरण से रहित यथार्थ पदार्थों का निश्चय रखने वाला तथा शान्त स्वरूप पूर्ण मुनि पद का धारी ऐसा साधु इस निष्फल संसार में बहुत काल भ्रमण नहीं करता ॥ २७२ ॥

आगे—मोक्ष तत्व का साधन तत्व दिखलाते हैं।

सम्मं विदिदपदत्था, चत्ता उवहिं वहित्थमज्झत्थं ।
विसयेसु णावसत्ता, जे ते सुद्धत्ति णिद्दिट्ठा ॥ २७३ ॥

वाह्याभ्यन्तर उपधि तज, वस्तु भली विधि जान ।
और न विषयासक्त जे, ते साधक निर्वान ॥२७३॥

अर्थ—जो भले प्रकार पदार्थों के जानने वाले और वाहरी क्षेत्रादि अतरंग रागादि परिग्रह को त्याग कर पांचों इन्द्रियों के विषयो में आसक्त नहीं हैं वे साधु शुद्ध साधक हैं ऐसा कहा है ॥२७३॥

आगे—साधन तत्व सर्व मनोवांछित अर्थों का स्थान है ।

सुद्धस्स य समणं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।
सुद्धस्स य णिव्वाणं, सोच्चिय सिद्धो णमो तस्स २७४॥

शुद्ध योगही श्रमण हैं, शुद्धहि दर्शन ज्ञान ।
शुद्ध योग निर्वाण है, शुद्ध नमों धर ध्यान २७४।

अर्थ—शुद्धोपयोगी के ही साधुपना है शुद्धोपयोगी के ही दर्शन ज्ञान कहे गए हैं शुद्धोपयोगी के ही निर्वाण होता है शुद्धोपयोगी ही सिद्ध भगवान हो जाते हैं इससे उस शुद्धोपयोगी को नमस्कार हो ॥ २७४ ॥

आगे—शास्त्र का फल दिखला कर शास्त्र की समाप्ति करते हैं ।

बुज्झदि सासणमेयं, सागारणगारचरियया जुत्तो ।
जो सो पवयणसारं, लहुणा कालेण पप्पोदि ॥ २७५ ॥

जो जिन शासन समझता, मुनि श्रावक व्रत धार।
वह ही थोड़े काल में, पावे प्रवचनसार ॥२७५॥

अर्थ—जो कोई श्रावक या मुनि के चारित्र से युक्त होकर इस शासन या शास्त्र को समझता है वह भव्य जीव थोड़े ही कालमें इस प्रवचन के सार भूत परमात्म पद को पाता है ॥ २७५ ॥

इति चारित्राधिकारः ॥ ४ ॥
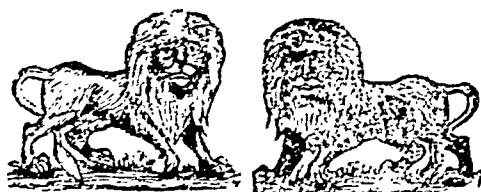
नियमसार

तपाराधना

श्री परमात्मनेनमः

श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचितः

अध्यात्मवाणी भाग ४

नियमसारः

अथ मासिक पाठ में छब्बीसवां दिवसः—

नियम धार जिनवर तरे, तरे न हरिहर ब्रह्म।
नमों ताहि जिस नियम से, जीव होय परब्रह्म॥१॥

आगे—मूल ग्रन्थ कर्ता का मंगलाचरण।

णमिऊण जिणं वीरं, अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं, केवलिसुदकेवलीभणिदं॥ १ ॥

नमि जिनवीर स्वभाव में, दर्शन ज्ञान अनन्त।
नियम सार को मैं, कहूँ, जो वच जिन श्रुत वंत १॥

अर्थ—मैं कुन्दकुन्दाचार्य अनन्त केवल ज्ञान दर्शन स्वभाव के धारी ऐसे श्री वीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके केवली और श्रुतकेवलियों से कहे हुये ऐसे नियमसार परमागम को कहूँगा यह प्रतिज्ञा करता हूँ॥ १ ॥

आगे—मोक्ष मार्ग और उसका फल वर्णन करते हैं।

मग्गो मग्गफलंति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवाओ, तस्स फलं होइ णिव्वाणं ॥ २ ॥

मार्ग मार्ग फल दोय विधि, जिन शासन में जान।
सो मग मोक्ष उपाय है, फल तिसका निर्वान॥२॥

अर्थ—जिन शासन में मार्ग और मार्ग का फल ऐसे दो भेद कहे गये हैं। जिन में मोक्ष प्राप्ति का उपाय सो तो मार्ग है और निर्वाण की प्राप्ति उस मार्ग के सेवने का फल है ॥ २ ॥

आगे—नियम शब्द के साथ सार का प्रयोजन कहते हैं।

णियमेण य जं कज्जं, तण्णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं, भणिदं खलु सारमिदि वयणं ॥ ३ ॥

नियम योग्य सोही नियम, संयम दर्शन ज्ञान।
तदविपरीत न है कछू, निश्चय सार बखान॥३॥

अर्थ—नियम करके जो करने योग्य हो सो नियम है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही नियम है, इससे विरुद्ध कोई नियम नहीं है इसलिये निश्चय करके यही सार है ऐसा कहा गया है ॥ ३ ॥

आगे—रत्नत्रय का भेद करके लक्षण कहते हैं।

णियमं मोक्खउवाओ, तस्स फलं हवति परमणिव्वाणं
एदेसिं तिण्हं पि य, पत्तेयपरूवणा होइ ॥ ४ ॥

नियमहि मोक्ष उपाय है, फल तिसका निर्वाण।
इससे तीनों का कहूं, भिन्न भिन्न व्याख्यान॥४॥

अर्थ—मोक्ष का जो उपाय है सो नियम है और इस नियम धारने का फल परम निर्वाण है। नियम सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप है इसलिये इन तीनों का अलग अलग वर्णन आगे के सूत्रों में किया जायगा ॥ ४ ॥

आगे—व्यवहार सम्यग्दर्शन को कहते हैं।

अत्तागमतच्चाणं, सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ।
ववगयअसेसदोसो, सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥ ५ ॥

आप्तागम तत्वार्थ रुचि, है समकित व्यवहार ।
आप्त वही सब दोष बिन, गुण अनन्त आधार ५॥

अर्थ—आगम के ईश देव अर्थात आप्त, आगम अर्थात् वाणी तथा आगम में वर्णन किये हुये तत्व, इन तीनों के श्रद्धान करने से व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। तथा आप्त वही है जो सम्पूर्ण दोषों से रहित और सम्पूर्ण गुणों मय है ॥ ५ ॥

आगे—१८ दोषों के नाम कहते हैं।

छुहतण्हभीरुरोसो, रागोमोहोचिंताजरारुजामिच्चू ।
स्वेदं खेद मदोरइ विरिणयणिद्दा जणुव्वेगो ॥ ६ ॥

मोह त्रयी अरु जन्म त्रय, क्षुधा त्रषा भय खेद ।
निद्रा चिन्ता चकित मद, रोग अराति रति स्वेद ६।

अर्थ—उस आप्त में क्षुधा, तृषा, भय, क्रोध, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, पसीना, खेद, मद, रति, आश्चर्य, निद्रा, जन्म, आकुलता ऐसे १८ दोष नहीं होवे ॥ ६ ॥

आगे—तीर्थंकर परम देव का स्वरूप कहते हैं।

णिस्सेसदोसरहिओ, केवलणाणाइपरमविभवजुदो ।
सो परमप्पा उच्चइ, तव्विवरीओ ण परमप्पा ॥ ७ ॥

दोष रहित केवल सहित, परम विभव संयुक्त ।
वही कहा परमातमा, तदविपरीत न मुक्त ॥७॥

अर्थ--जो सम्पूर्ण दोषों से रहित है और जो केवल ज्ञान आदि परम ऐश्वर्य से संयुक्त है वही परमात्मा कहा जाता है। इससे जो विपरीत है वह परमात्मा नहीं है ॥ ७ ॥

आगे—परमागम का स्वरूप कहते हैं।

तस्स मुहग्गयवयणं, पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं, तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ८

तिस मुख निकले वचन सुध, पूर्वापर न विरोध।
उसको ही आगम कहें, सो तत्वारथ बोध ॥८॥

अर्थ—उपर्युक्त श्री अरहन्त परमात्मा के मुख से निकले हुये वचन पूर्वा पर के दोष कर रहित हैं और शुद्ध हैं उसी को आगम कहते हैं। इसी आगम में तत्वार्थों का वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥

आगे—तत्वार्थ कौन कौन हैं उनके नाम कहते हैं।

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा य काल आयासं ।
तच्चत्था इदि भणिदा, णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता ॥ ९ ॥

जीव काळ अधरम धरम, पुद्गल अरु आकाश ।
नाना गुण पर्याय युत, तत्वारथ छह रास ॥९॥

अर्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्य तत्वार्थ कहे गये हैं। यह नाना गुण और पर्यायों करके सहित हैं ॥९॥

आगे—जीव का उपयोगमयी लक्षण कहते हैं।

जीवो उवओगमओ, उवओगो णाणदंसणो होई ।
णाणुवओगो दुविहो, सहावणाणं विहावणाणं त्ति॥१०

जीव रूप उपयोगमय, दर्श ज्ञान उपयोग ।
और स्वभाव विभाव से, दोय ज्ञान उपयोग॥१०॥

अर्थ—जीव उपयोग मय है, उपयोग ज्ञान, दर्शन के भेद से दो प्रकार है, ज्ञानोपयोग भी दो प्रकार का है एक स्वभाव ज्ञान, दूसरा विभाव ज्ञान॥ १० ॥

आगे—ज्ञानोपयोग के भेदों को दिखाते हैं।

केवलमिंदियरहियं, असहायं तं सहावणाणं त्ति ।
सण्णाणिदरवियप्पे, विहावणाणं हवे दुविहं ॥ ११ ॥

सण्णाणं चउभेअं, मदिसुदओही तहेव मणपज्जं ।
अण्णाणं तिवियप्पं, मदिआई भेददो चेव ॥ १२ ॥

इन्द्रिय विन वाधा रहित, केवल ज्ञान स्वभाव ।
यथा ज्ञान अज्ञान से, द्वय विधि भेद विभाव॥११॥

मति श्रुत मनपर्यय अवधि, यथा ज्ञान ये चार।
कुमति विभंगा श्रुत इतर, ये अज्ञान विचार॥१२॥

अर्थ—इन्द्रियों की सहायता से रहित, अतीन्द्रिय व पर सहायरहित असहाय जो स्वभाव है वह केवल ज्ञान है और विभाव ज्ञान के दो भेद हैं, सम्यग्ज्ञान और अज्ञान। सम्यग्ज्ञान के चार भेद

हैं मति,श्रुत,अवधि,तथा मनः पर्यय ज्ञान। अज्ञान के तीनभेदहैं कुमति कुश्रुत और कुअवधि ॥११-१२॥

आगे—दर्शनोपयोग के भेदों का प्रतिपादन करते हैं।

तह दंसणउवओगो, ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं, असहायं तं सहावमिदि भणियं १३

त्योंही दर्शन योग में, भेद स्वभाव विभाव ।
इन्द्रिय विन बाधा रहित, केवल दर्श स्वभाव॥१३

अर्थ—तैसे ही दर्शनोपयोग दो प्रकार का है एक स्वभाव दर्शनोपयोग, दूसरा विभाव दर्शनोपयोग। जो इन्द्रियों के व्यापार से रहित असहाय है, वह केवल दर्शन है वह स्वभाव दर्शनोपयोग है १३

आगे—विभाव दर्शनोपयोग को कहते हैं।

चक्खु अचक्खू ओही, तिण्णिवि भणिदं विभावदिच्छुत्ति
पज्जाओ दुवियप्पो, सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ॥ १४॥

चक्षु अचक्षू अवधि अरु. दर्शन तीन विभाव।
भेद दोय पर्याय के, कहे विभाव स्वभाव ॥१४॥

अर्थ—चक्षु, अचक्षु, और अवधि ये तीन विभाव दर्शन कहे गये हैं। पर्याय दो प्रकार की होती है एक स्वपरापेक्ष, दूसरी निरापेक्ष १४।

आगे—स्वभाव विभाव पर्याय का विस्तार कहते हैं।

णरणारयतिरियसुरा, पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा
कम्मोपाधिविवज्जिय, पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा१५

नर नारक पशु देव ये, सब पर्याय विभाव।
कर्म उपाधि से रहितही, सुध पर्याय स्वभाव।१५॥

अर्थ--नर, नारक, पशु और देव ये चार मुख्य विभाव पर्याय कही गई हैं। जो कर्मों की उपाधि से रहित हैं वे स्वभाव पर्याय हैं ॥१५॥

आगे--चार गति का विशेष स्वरूप कहते हैं।

माणुस्सा दुवियप्पा, कम्ममही भोग भूमिसंजादा।
सत्तविहा णेरइया, णादव्वा पुढविभेएण ॥ १६ ॥

चउदह भेदा भणिदा, तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं, लोगविभागेसु णादव्वं ॥ १७ ॥

कर्म भूमि अरु भोग भू, मनुज दोय विध मान।
उसी तरह से नारकी, कहे सप्त पहिचान ॥१६॥

चौदह पशु के भेद हैं, देव चार विधि जान।
आगम लोक विभाग से, वहु विस्तार पिछान१७।

अर्थ—मनुष्य दो प्रकार के होते हैं कर्म भूमिज और भोग भूमिज। नारकी सात प्रकार जानने। पृथ्वी आदि भेद करके १४ प्रकार तिर्यञ्च हैं और चार प्रकार देव होते हैं इनका विस्तार 'लोक विभाग' नामा आगम से जानना ॥ १६-१७ ॥

आगे—कर्ता भोक्ता पने को दिखलाते हैं।

कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।
कम्मजभावेणादा, कत्ताभोत्ता दु णिच्छयदो ॥ १८ ॥

जीव करे पुद्गल करम, भोगे वच व्यवहार।
कर्म भाव भोगे करे, यह निश्चय नय सार ॥१८॥

अर्थ—यह आत्मा पुद्गल कर्म का कर्ता और भोक्ता कहा जाता है सो व्यवहार नय है, कर्म से उत्पन्न हुये जो रागादि भाव तिनका कर्ता और भोक्ता कहा जाता है वह अशुद्ध निश्चय नय है ॥१८॥

आगे—दोनों नयों की सफलता को कहते हैं।

दव्वत्थिएण जीवा, वदिरित्तापुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणयेण जीवा, संजुत्ता होंति दुविहेहिं॥ १९ ॥

निश्चय जिय से भिन्न है, पूर्व कहीं पर्याय।
पर्ययनय से युक्त जिय, नय दोनों यों गाय॥१९॥

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय से यह जीव पूर्व कही हुई पर्यायों से अलग है। पर्याय नय से यह जीव उन से संयुक्त है। दोनों नयों का यह अभिप्राय है॥ १९ ॥

इति जीवाधिकारः

॥ अथ अजीवाधिकारः ॥

आगे—पुद्गल के भेदों को कहते हैं।

अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा, परमाणू चेव दुवियप्पो॥ २० ॥

दोय भेद पुद्गल दरव, अणू और स्कंध।
परमाणू के भेद द्वय, छह प्रकार से खंध ॥२०॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य के दो भेद हैं एक अणु दूसरा स्कन्ध। जिसमें परमाणु दो प्रकार के और स्कन्ध छः प्रकार के होते हैं ॥२०॥

आगे—स्कन्धों के भेद कहते हैं।

अइथूलथूलथूलं, थूलंसुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेयं ॥ २१ ॥

भूपव्वदमादीया, भणिदा, अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विरणेया, सप्पीजलतेल्लमादीया ॥ २२ ॥

छायातवमादीया, थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुम थूलेदि भणिया, खंधा चउरक्खविसया य २३॥

सुहुमा हवंति खंधा, पावोग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा, अइसुहुमा इदि परूवेदिं ॥ २४ ॥

थूल थूल इक थूल दुय, थूल शूक्ष्म त्रय मान।
शूक्ष्म थूल चऊ शूक्ष्म पन, अति सूक्ष्म छे जान२१

थूल थूल जे खंध हैं, भूगिर आदिक मान।
घी तैलादिक जे वहें, थूल खंध पहिचान ॥२२॥

तमछाया उष्णादि ये, थूल सूक्ष्म हैं मान।
शब्द गंध स्पर्श रस, सूक्ष्म थूल पिछान ॥२३॥

जीव शुभा शुभ भाव से, आवें कर्म पिछान।
ते पुद्गल सूक्ष्म कहे, अति सूक्ष्म शेपान॥२४॥

अर्थ—अत्यन्त स्थूल जो पुद्गल हैं वे पर्वत, पृथ्वी आदि हैं। घी, तैल मठा, दूध, जल आदि बहने वाले स्थूल पुद्गल हैं। छाया,

आतप, अन्धकार आदि स्थूल सूक्ष्म पुद्गल हैं । स्पर्शन, रसन, घ्राण श्रोत इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ सूक्ष्म स्थूल पुद्गल हैं । शुभ और अशुभ आत्मा के परिणामों के द्वारा आने वाले कर्मों के योग्य कार्म्माण स्कन्ध सूक्ष्म पुद्गल हैं । इन सब से विरुद्ध जो स्कन्ध कर्म वर्गणा से भी सूक्ष्म हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म स्कन्ध हैं इस प्रकार विभाव पुद्गल के छः भेद हैं ॥ २१-२४ ॥

आगे—कारण परमाणु और कार्य्य परमाणु का हेतु कहते हैं ।

धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेऊ कारणंति तं णेओ ।
खंधाणं अवसाणं, णादव्वो कज्जपरमाणू ॥ २५ ॥

चार धातु का हेत जो, कारण अणु पिछान ।
अंत भाग है खंध का, सो अणु कार्य वखान २५॥

अर्थ—चार धातु का जो हेतु है वह कारण परमाणु है और स्कन्धों का अन्तिम भाग कार्य परमाणु है ऐसा जानना ॥ २५ ॥

आगे—परमाणु का स्वरूप कहते हैं ।

अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदियं गेज्झं ।
अविभागी जं दव्वं, परमाणू तं विआणाहि ॥ २६ ॥

स्वयं आदि मध्यान्त युत, इन्द्रिय गहे न कोय ।
पर माणू जो द्रव्य है, सो अविभागी होय २६॥

अर्थ—जिसका स्वरूप ही आदि मध्य और अन्त रूप है । जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है ऐसा अविभागी जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके सो द्रव्य परमाणु जानने योग्य है ॥ २६ ॥

आगे—स्वभाव परमाणु के गुणों को दिखाते हैं।

एयरसरूवगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं ।
विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं २७

गंध रूप रस इक्क इक, दो गुण फर्श स्वभाव ।
सो आगम वर्णन किया, इससे इतर विभाव २७॥

अर्थ—एक रस, एक रूप, एक गन्ध दो स्पर्श इतने गुणों से सहित स्वभाव गुण पुद्गल का जिन आगम में प्रगट रूप से कहा है २७

आगे—स्वभाव विभाव पर्याय को कहते हैं।

अण्णणिरावेक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जावो ।
खंध सरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जायो २८

अन्य रहित जो परिणमन, सो स्वभाव पर्याय ।
खंध रूप जो परिणमन, सो विभाव पर्याय।२८॥

अर्थ—जो परिणमन अन्य की अपेक्षा रहित होता है वह स्वभाव पर्याय है और जो परिणमन स्कन्ध रूप से होता है वह विभाव पर्याय है ॥ २८ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्य के व्याख्यान को संकोचते हैं।

पोग्गलदव्वं उच्चंइ, परमाणू णिच्छएण इदरेण ।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स । २९ ।

परमाणू पुद्गल दरव, निश्चय नय से मान ।
किन्तु बाह्य नय खंध को, पुद्गल द्रव्य बखान २९

आगे—स्वभाव परमाणु के गुणों को दिखाते हैं।

एयरसरूवगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं ।
विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं २७

गंध रूप रस इक्क इक, दो गुण फर्श स्वभाव ।
सो आगम वर्णन किया, इससे इतर विभाव २७॥

अर्थ—एक रस, एक रूप, एक गन्ध दो स्पर्श इतने गुणों से सहित स्वभाव गुण पुद्गल का जिन आगम में प्रगट रूप से कहा है २७

आगे—स्वभाव विभाव पर्याय को कहते हैं।

अण्णणिरावेक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जावो।
खंध सरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जायो २८

अन्य रहित जो परिणमन, सो स्वभाव पर्याय ।
खंध रूप जो परिणमन, सो विभाव पर्याय।२८॥

अर्थ—जो परिणमन अन्य की अपेक्षा रहित होता है वह स्वभाव पर्याय है और जो परिणमन स्कन्ध रूप से होता है वह विभाव पर्याय है ॥ २८ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्य के व्याख्यान को संकोचते हैं।

पोग्गलदव्वं उच्चइ, परमाणू णिच्चएण इदरेण।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स ॥ २९ ॥

परमाणू पुद्गल दरब, निश्चय नय से मान ।
किन्तु वाह्य नय खंध को, पुद्गल द्रव्य बखान२९

आतप, अन्धकार आदि स्थूल सूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण श्रोत इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ सूक्ष्म स्थूल पुद्गल हैं। शुभ और अशुभ आत्मा के परिणामों के द्वारा आने वाले कर्मों के योग्य कार्म्माण स्कन्ध सूक्ष्म पुद्गल हैं। इन सब से विरुद्ध जो स्कन्ध कर्म वर्गणा से भी सूक्ष्म हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म स्कन्ध हैं इस प्रकार विभाव पुद्गल के छः भेद हैं॥ २१-२४ ॥

आगे—कारण परमाणु और कार्य्य परमाणु का हेतु कहते हैं।

धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेऊ कारणंति तं णेओ।
खंधाणं अवसाणं, णादव्वो कज्जपरमाणू॥ २५ ॥

चार धातु का हेत जो, कारण अणु पिछान।
अंत भाग है खंध का, सो अणु कार्य बखान२५।

अर्थ—चार धातु का जो हेतु है वह कारण परमाणु है और स्कन्धों का अन्तिम भाग कार्य परमाणु है ऐसा जानना॥ २५ ॥

आगे—परमाणु का स्वरूप कहते हैं।

अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदियं गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं, परमाणू तं विआणाहि॥ २६ ॥

स्वयं आदि मध्यान्त युत, इन्द्रिय गहे न कोय।
पर माणू जो द्रव्य है, सो अविभागी होय २६॥

अर्थ—जिसका स्वरूप ही आदि मध्य और अन्त रूप है। जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है ऐसा अविभागी जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके सो द्रव्य परमाणु जानने योग्य है॥ २६ ॥

आतप, अन्धकार आदि स्थूल सूक्ष्म पुद्गल हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण श्रोत इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ सूक्ष्म स्थूल पुद्गल हैं। शुभ और अशुभ आत्मा के परिणामों के द्वारा आने वाले कर्मों के योग्य कार्म्माण स्कन्ध सूक्ष्म पुद्गल हैं। इन सब से विरुद्ध जो स्कन्ध कर्म वर्गणा से भी सूक्ष्म हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म स्कन्ध हैं इस प्रकार विभाव पुद्गल के छः भेद हैं ॥ २१-२४ ॥

आगे—कारण परमाणु और कार्य्य परमाणु का हेतु कहते हैं।

धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेऊ कारणंति तं णेओ।
खंधाणं अवसाणं, णादव्वो कज्जपरमाणू ॥ २५ ॥

चार धातु का हेत जो, कारण अणु पिछान।
अंत भाग है खंध का, सो अणु कार्य बखान २५।

अर्थ—चार धातु का जो हेतु है वह कारण परमाणु है और स्कन्धों का अन्तिम भाग कार्य परमाणु है ऐसा जानना ॥ २५ ॥

आगे—परमाणु का स्वरूप कहते हैं।

अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदियं गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं, परमाणू तं विआणाहि ॥ २६ ॥

स्वयं आदि मध्यान्त युत, इन्द्रिय गहे न कोय।
पर माणू जो द्रव्य है, सो अविभागी होय २६॥

अर्थ—जिसका स्वरूप ही आदि मध्य और अन्त रूप है। जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है ऐसा अविभागी जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके सो द्रव्य परमाणु जानने योग्य है ॥ २६ ॥

आगे—स्वभाव परमाणु के गुणों को दिखावे हैं।

एयरसरूवगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं ।
विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं २७

गंध रूप रस इक्क इक, दो गुण फर्श स्वभाव ।
सो आगम वर्णन किया, इससे इतर विभाव २७॥

अर्थ—एक रस, एक रूप, एक गन्ध दो स्पर्श इतने गुणों से सहित स्वभाव गुण पुद्गल का जिन आगम में प्रगट रूप से कहा है २७

आगे—स्वभाव विभाव पर्याय को कहते हैं।

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जावो ।
खंध सरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जायो २८

अन्य रहित जो परिणमन, सो स्वभाव पर्याय ।
खंध रूप जो परिणमन, सो विभाव पर्याय।२८॥

अर्थ—जो परिणमन अन्य की अपेक्षा रहित होता है वह स्वभाव पर्याय है और जो परिणमन स्कन्ध रूप से होता है वह विभाव पर्याय है ॥ २८ ॥

आगे—पुद्गल द्रव्य के व्याख्यान को संकोचते हैं।

पोग्गलदव्वं उच्चइ, परमाणू णिच्चएण इदरेण ।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स ॥ २९ ॥

परमाणू पुद्गल दरव, निश्च नय से मान ।
किन्तु वाह्य नय खंध को, पुद्गल द्रव्य बखान २९

अर्थ—निश्चय नय कर परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहते हैं तथा व्यवहार नय कर स्कन्ध को पुद्गल द्रव्य कहा जाता है ॥ २९ ॥

आगे—धर्मादि द्रव्य का स्वरूप कहते है।

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपुग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं, जीवादीसव्वदव्वाणं ॥ ३० ॥

गमन निमित्तक धर्म है, अरु अधर्म थिति वान।
अवकाशे आकाश गुण, जीवादिक द्रव्यान॥३०॥

अर्थ—जीव पुद्गलों के गमन में धर्म द्रव्य निमित्त है और स्थिति में अधर्म द्रव्य तथा सर्व जीवादि द्रव्यों को अवगाहन (स्थान) देने वाला आकाश द्रव्य है॥ ३० ॥

आगे—व्यवहार काल के भेदों को कहते हैं।

समयावलिभेदेण दु, दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलि, हदसंठाणप्पमाणं तु॥ ३१ ॥

समय आवली भेद द्वय, और भेद त्रय जान।
सो अनंत गत आवली, तिसमें सिद्ध प्रमान ३१॥

अर्थ - समय और आवली के भेद से व्यवहार काल के दो भेद हैं अथवा तीन भेद हैं। अतीत काल में अनन्त आवली बीती हैं ऐसा ही अनन्त हत संस्थान अर्थात सिद्धों का प्रमाण है ॥३१॥

आगे—निश्चय काल को दिखाते हैं।

जीवादु पुग्गलादो, णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य, परमट्ठो सो हवे कालो॥ ३२ ॥

जीवों से पुद्गल अमित, तिन से समय अनंत।
लोकाकासहिं जे रहें, निश्चय काल कहंत॥३२॥

अर्थ—जीवों से पुद्गल अनन्त गुणे हैं। पुद्गल से अनन्त गुणे काल के समय हैं। जो कालाणु लोकाकाश में तिष्ठे हैं वे कालाणु निश्चय काल हैं॥ ३२ ॥

आगे—फिर भी काल द्रव्य के विषय में कहते हैं।

जीवादी दव्वाणं, परिवट्टनकारणं हवे कालो।
धम्मादिच ओसेणं, सहाउगुणपज्जया होंति॥ ३३ ॥

कारण है परिणमन में, जीवादिक को काल।
गुण पर्याय स्वभाव से, धर्मादिक की चाल॥३३॥

अर्थ—जीवादि द्रव्यों के परिवर्तन का जो कारण है सो काल द्रव्य है। तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन चार द्रव्यों के स्वाभाविक गुण और पर्याय होते हैं॥ ३३ ॥

आगे—अस्तिकाय को कहते हैं।

एदे छद्दव्वाणि य, कालं मोत्तूण अत्थिकायत्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये, काया हु बहुप्पदेसत्तं॥ ३४ ॥

ये द्रव्यें छह कालविन, अस्ति काय पहिचान।
क्योंकि बहुत पर देश है, जिन आगम से मान ३४

अर्थ—इन छहों द्रव्यों में काल को छोड़ कर अन्य पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं क्यों कि निश्चय करके इन के बहु प्रदेशीपना है, इस से काय संज्ञा है ऐसा जिनागम में कहा गया है॥ ३४ ॥

आगे—द्रव्यों की प्रदेश संख्या को कहते हैं।

संखेज्जासंखेज्जा, णंतपदेसा हवंति मुत्तस्स ।
धम्माधम्मस्स पुणो, जीवस्स असंखदेसा हु ॥३५॥
लोयायासे ताव, इदरस्स अणंतयं हवे देहो ।
कालस्स ण कायत्तं, एयपदेसो हवे जम्हा ॥ ३६ ॥

संख्य असंख्य अनंत हैं, पुद्गळ के पर देश।
जीव धर्म अधरम तने, हैं असंख्य पर देश।३५॥
सोही लोकाकास के, इतर अनंत प्रमान।
काल न काय प्रदेश वत, यह संख्या सब जान३६

अर्थ—पुद्गल के संख्यात, असंख्यात, और अनन्त प्रदेश होते है। धर्म, अधर्म तथा एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं। लोकाकाश के भी इतने ही हैं अलोकाकाश के अनन्त प्रदेश हैं। काल द्रव्य के कायपना नहीं है इससे एक प्रदेश ही होता है ॥ ३५-३६ ॥

आगे—अजीव द्रव्य के कथन को संकोचते हैं।

पुग्गलदव्वं मोत्तं, मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीओ, चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥ ३७ ॥

मूर्ति युक्त पुद्गल दरब और मूर्ति बिन शेष ।
जीव चेतना युक्त है, और अचेतन भेष॥३७॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, अन्य शेष मूर्ति रहित हैं। जीव चैतन्य भाव कर युक्त है। शेष चैतन्य गुण से रहित हैं॥ ३७ ॥

इति अजीवाधिकारः ॥ २ ॥

अथ शुद्ध स्वरूपाधिकार : ॥३॥

अथ मासिक पाठ में सत्ताईसवां दिवस :—

आगे - हेयोपादेय तत्व का स्वरूप निरूपण करते हैं।

जीवादिबहित्तचं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा ।
कम्मोपाधिसमुब्भव, गुणपज्जाएहिं वदिरत्तो ॥ ३८ ॥

हेय तत्वजीवादि पर, उपादेय निज आप।
कर्म उपाधि उत्पति जुदी;गुण पर्य्यय न मिलाप३८

अर्थ—जीवादि बाह्य तत्व हेय हैं, इस आत्मा को निश्चय करके आत्मा ही उपादेय है। यह आत्मा कर्म की उपाधि से पैदा होने वाले गुण पर्यायों से भिन्न है ॥ ३८ ॥

आगे—शुद्धात्म स्वरूप को दिखलाते हैं।

णो खलु सहावठाणा, णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा, णो जीवस्स हरिस्सठाणा वा ३९॥

णो ठिदिबंधट्ठाणा, पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा ।
णो अणुभागट्ठाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥ ४० ॥

णो खइयभावठाणा, णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा,णो उवसमणे सहावठाणा वा४१॥

चउगइभवसंभमणं, जाइमरामरणरोयसोका य ।
कुलजोणिजीवमग्गण, ठाणा जीवस्स णो सन्ति ॥४२॥

णिद्दंडो णिद्वंद्वो, णिम्मूढो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंवो
णीरागो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ॥ ४३ ॥

णिग्गंथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ॥४४॥

थान स्वभाव न एन है, नहीं मान अपमान ।
हर्ष भाव नहिं जीव के, हर्ष इतर नहिं थान३६॥

बंध थान नहिं जीव के, प्रकृति प्रदेश न थान ।
और थान अनुभाग नहिं, नहीं उदय का थान४०

क्षायक भाव न जीव के, नहीं मिश्र का थान ।
औदायिक नहिं थान है, और न उपशम थान४१

चहुँ गति भ्रमण न जन्म क्षय.जरा शोक मत जान।
जीव समास न योनि कुल,नहिं मारगणा थान४२

दंड द्वन्द ममता रहित, निरालम्ब विन रूप ।
राग द्वेष भय मूढ़ विन, चेतन निज गुण भूप४३।

शल्य राग अरु उपधि विन,सकल दोष से मुक्त ।
काम क्रोध मद मोह विन,चेतन निज गुण युक्त४४

अर्थ—इस समयसार के निश्चय करके न तो कोई स्वभाव स्थान है न मान अपमान रूपी भाव स्थान है और न हर्ष विषाद रूप भाव स्थान। इस शुद्ध जीवास्तिकाय के न तो कोई स्थिति न प्रकृति बन्ध न प्रदेश बन्ध और न अनुभाग बन्ध के स्थान हैं तथा इसके कोई उदय स्थान भी नहीं है। इस शुद्धजीवास्तिकाय के न तो

क्षायिक भाव न औदयिक भाव और न उपशम भाव के स्थान हैं। इस शुद्ध जीव के चार गति में भ्रमण नहीं है न इसके जन्म, जरा, मरण और शोक है। तथा इसके कुल योनि जीव समास मार्गणा स्थान भी नहीं है। वह शुद्ध आत्मा दण्ड रहित द्वन्द रहित ममकार रहित शरीर रहित आलम्ब रहित, राग रहित, दोष रहित, मूढ़ता रहित तथा भय रहित है ऐसा निश्चय कर के जानो! वह शुद्ध जीवास्तिकाय निर्ग्रन्थ है, वीतराग है, निःशल्य है, सर्व दोष रहित है, काम, क्रोध रहित तथा मान और मद रहित है॥ ३९-४४ ॥

आगे—आत्मा के स्वरूप को पुद्गल विकारों से रहित दिखलाते हैं।

वण्ण रस गंध फासा, थीपुंमणओसयादिपज्जाया ।
संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति ॥ ४५ ॥

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाणअलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ४६ ॥

फर्श वर्ण रस गंध नहिं; और वेद त्रय नाहि।
संस्थान संहनन नहीं, चेतन निज गुण माहि४५॥

फर्श वर्ण रस गंध नहि, चेतन गुण बिन वैन।
किसी चिन्ह ग्राही नहीं, अकथ चिन्ह से ऐन४६॥

अर्थ—उस शुद्ध जीवास्तिकाय के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुन्सक पर्याय छः संस्थान छः सहनन नहीं है। वह आत्मा, रस रहित, रूप रहित, गन्ध रहित है। तथा इन्द्रियों द्वारा प्रगट नहीं है चेतना गुण वाला है, शब्द रहित है किसी चिन्ह व आकार से ग्रहण व निर्देश करने योग्य नहीं है॥ ४५-४६ ॥

आगे—संसारी और मुक्त जीवों की समानता दिखलाते हैं।

जारिसियासिद्धप्पा, भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ।
जरमरणजम्ममुक्का, अट्ठगुणालंकिया जेण ॥ ४७ ॥

असरीरा अविणासा, अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।
जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसिदी णेया ॥ ४८ ॥

जैसा सिद्धालय वसे, तैसा भव में जीव ।
जन्म जरा अरु मरण विन, अठ गुण होंय सदीव ४७

अवि नाशी अरु देह विन, निर्मल शुद्ध स्वरूप ।
लोक शिखर पर निवसता, तेसा भव में रूप ४८।

अर्थ—जैसे सिद्ध आत्मा है वैसा ही संसार में लीन जीव है। कैसा है वह जरा मरण और जन्म से रहित हैं तथा अष्ट गुण से शोभायमान है। जैसे सिद्ध महाराज शरीर रहित, अविनाशी निर्मल, विशुद्ध स्वरूपवान होकर, इस लोक के अग्रभाग में विराजमान है वैसे ही इस संसार में सर्व जीवों को निश्चय कर जानना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

आगे—दोनों नयों की सफलता दिखलाते है।

एदे सव्वे भावा, ववहारणयं पडुच्च भणिदाहु ।
सव्वे सिद्धसहावा, सुद्धणया संसिदी जीवा ॥ ४९ ॥

पुव्वुत्तसगदभावा, परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।
सगदव्वमुवादेयं, अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥ ५० ॥

पूर्व भाव जे जे कहे, ते व्यवहारी नीव ।
निश्चय नय से सिद्धसम, सव संसारी जीव॥४९॥

पूर्व भाव पर द्रव्य है, सर्व त्यागने योग्य।
उपादेय है सर्व विधि; अपना तत्त्व मनोग्य॥५०॥

अर्थ—ये सर्व ही भाव व्यवहार नय से कहे गये हैं शुद्ध निश्चय नय से इस संसार के भीतर सर्व ही जीव सिद्ध भगवान के समान शुद्ध हैं। पहिले कहे गये सम्पूर्ण ही भाव पर द्रव्य हैं और पर स्वभाव हैं, इस कारण त्यागने योग्य हैं तथा अन्तरङ्ग तत्त्व जो अपना द्रव्य सो उपादेय है॥ ४९-५० ॥

आगे—रतनत्रय का स्वरूप कहते हैं।

दिवरीयाभिणिवेस वि, वज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भम, विवज्जियं होदि सण्णाणं॥ ५१

चलमलिणमगाढत्त, विवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगमभावे णाणं, हेयोपादेयतच्चाणं॥ ५२ ॥

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्य जाणया पुरिसा।
अंतरहेयो भणिदा, दंसणमोहस्स खयपहुदी॥ ५३ ॥

सम्मत्तं सण्णाणं, विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्छएणदु, तह्मा चरणं पवक्खामि॥ ५४ ॥

ववहारणयचारित्ते, ववहारणयस्स होदि तव चरणं।
णिच्छयणयचारित्ते, तवयरणं होदि णिच्छयदो॥५५॥

विपरीताभिन वेश बिन, रुचि सो समकित जान।
संशय विभ्रम मोह बिन; सम्यग्ज्ञान पिछान॥५१॥

चल मल दोष अगाढ़ विन, रुचि सो समकित जान।
अधिगम भाव जु ज्ञान है, हेय देयं तत्वान ॥५२॥

समकित करण जैन श्रुत, उस ज्ञायक कें जान ।
अन्तर कारण मोह क्षय, उपशम मिश्र वखान५३।

सम्यग्दर्शन ज्ञान के, संग चरन शिव कार।
आगे चारित को कहूं, नय निश्चय व्यवहार॥५४॥

व्यवहारी व्यवहार नय, पावें तप चारित्र।
निश्चय नय से पावता, निश्चय तप चारित्र।५५॥

अर्थ—उलटे अभिप्राय से रहित श्रद्धान सम्यक्त है। संशय, विमोह, विभ्रम से रहित सम्यग्ज्ञान है। चल मल अगाढ़ दोषों से रहित श्रद्धान सम्यक्त है। हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्वों का जानना सो ज्ञान है। सम्यक्त का निमित्त जिन सूत्र है जिन सूत्र के ज्ञायक पुरुषों को सम्यक्त होने में अंतरङ्ग कारण दर्शन मोहनी का क्षय क्षयोपशम तथा उपशम है। सम्यक्त और सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यकचारित्र भी मोक्ष का कारण है इसलिये व्यवहार निश्चय रूप चारित्र को आगे कहूँगा व्यवहार नय से व्यवहार चारित्र और तप होता है। निश्चय नय से निश्चय चारित्र और तप होता है ॥५१-५५॥

इति शुद्ध स्वरूपाधिकारः ॥ ३ ॥

---

१ उपादेय

अथ व्यवहार चारित्राधिकारः।

आगे—प्रथम अहिंसा व्रत को कहते हैं।

कुलजोणिजीवमग्गण, ठाणाइसु जाणऊण जीवाणं।
तस्सारंभणियत्तण, परिणामो होइ पढमवदं॥ ५६॥

जीव थान अरु योनि कुल, मारगणादिक थान।
इन में नहि आरंभ है, प्रथम दया व्रत मान५६॥

अर्थ—कुल स्थान, योनि स्थान, जीव समास स्थान, मार्गणास्थान, इत्यादि जीवों के ठिकानों को जान करके उनमें आरंभ करने से हटने का जो परिणाम हैं वही प्रथम अहिंसा व्रत है॥५६॥

आगे—दूसरा सत्यव्रत को कहते हैं।

रागेण व दोसेण व, मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया, विदियवयं होइ तस्सेव ५७॥

राग द्वेष अरु मोह युत, तजे झूट परिणाम।
तब ही होवे दूसरा, सत्य महाव्रत नाम॥५७॥

अर्थ—जो साधु राग द्वेष व मोह से झूठ बोलने के परिणाम को जब छोड़ता है तबही दूसरा सत्य व्रत होता है॥५७॥

आगे—तीसरा अचौर्य्य व्रत को कहते हैं।

गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेछिऊण परमत्थं।
जो मुचदि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव ५८॥

ग्राम नगर उद्यान में, पर वस्तू को देख।
तजे ग्रहण के भाव को,तब अचौर्य व्रत लेख५८।

अर्थ—जो नगर में, ग्राम में, अथवा जंगल में दूसरे की वस्तु को पड़ी देखकर उसके उठा लेने के परिणाम को त्याग देता है उसके तीसरा अचौर्य व्रत होता है ॥ ५८ ॥

आगे—ब्रह्मचर्य्य व्रत को कहते हैं ।

दट्ठूण इच्छिरूवं, वांछांभावं णिवत्तदे मासु ।
मेहुणसएणविवज्जिय, परिणामो अहव तुरीयवदं ५९॥

जो नारी का रूप लखि, इच्छा लेय हटाय ।
मैथुन संज्ञा भाव बिन, ब्रह्मचर्य व्रत गाय ॥५९॥

अर्थ—जो स्त्री के रूप को देख कर अपनी इच्छा को हटाता है मैथुन संज्ञा से रहित अपने परिणामों को करता है उसके चौथा ब्रह्मचर्य्य व्रत होता है ॥ ५९ ॥

आगे—परिग्रह व्रत को कहते हैं ।

सव्वेसिं गंथाणं तागो णिरवेक्खभावणापुव्वं ।
पंचम वदमिदि भणिदं,* चरित्तभावं धरंतस्स ॥ ६०

सर्व उपाधि के त्याग में, निरापेक्ष परिणाम ।
संयम भाव जु मुनि धरे, सो पंचम व्रत नाम६०॥

अर्थ—जो वांछा रहित भावना के साथ सर्व ही परिग्रहों को त्यागता है सो चारित्र के भाव को धारन करने वाले साधुओं का पंचम व्रत है ॥ ६० ॥

आगे—प्रथम ईर्य्या समिति को कहते हैं ।

पासुगमग्गेण दिवा, अवलोगंतो जुगुप्पमाणं हि ।
गच्छइ पुरदो समणो, इरिया समिदी हवे तस्स ॥६१॥

---

*मूल—चारित्त भरं वहंतस्स सं० चीर

दिन में प्राशुक देख मग, जूडा एक प्रमाण।
गमन करे मुनि इस तरह, इर्या समिति जान६१।

अर्थ—जो साधु प्राशुक मार्ग को देखकर दिनमें एक चुड़ा प्रमाण आगे पृथ्वी को देखता हुआ गमन करता है उस साधु के ईर्य्या समिति होती है ॥ ६१ ॥

आगे—भाषा समिति को कहते हैं।

पेसुण्णहासकक्कस, परणिंदप्पपसंसियं वयणं।
परिचित्ता सपरहिदं, भासासमिदी वदंतस्स ॥ ६२ ॥

खेद हास्य कर्कश वचन, पर निंदा थुति आप।
इन्हें त्याग हित मित कहें, भाषा समिति थाप६२

अर्थ—जो दुष्टता, हास्य, कठोर परकी निन्दा अपनी प्रशंसा के वचनों को त्यागकर जो हितमित रूप वचन कहते हैं ऐसे मुनि के भाषा समिति होती है ॥ ६२ ॥

आगे—ऐषणा समिति को कहते हैं।

कदकारिदाणुमोदण, रहिदं तह पासुगं पसंत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं, समभुत्ती एसणासमिदी ॥ ६३ ॥

कृत कारित मोदन बिना, प्रहस्त प्राशुक जोय।
अन्य दिया भोजन करे, ऐषण समिती वोय६३॥

अर्थ—जो कृत, कारित, अनुमोदना को त्याग कर प्राशुक शुभ और श्रावक द्वारा भक्ति पूर्वक दिये हुये आहार को समभव से ग्रहण करे ऐसे मुनि के एषणा समिति होती है ॥ ६३ ॥

आगे—आदान निक्षेपण समिति को कहते हैं।

पोथइकमंडलाइं, गहणविसग्गेसु पयत्तपरिणामो ।
आदावणणिक्खेवणा, समिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा ॥६४॥

पिछी कमंडलु और श्रुत, गहे विसर्जे कोय ।
यत्न युक्त परिणाम से, चौथी समिती होय॥६४॥

अर्थ—पुस्तक कमंडल पीछी आदि के उठाने धरने में यत्न करने रूप परिणाम सो आदान निक्षेपणा समिति है ॥ ६४ ॥

आगे—प्रतिष्ठापना समिति को कहते हैं।

पासुगभूमिपदेसे, गूढे रहिए परोपरोहेण ।
उच्चारादिच्चागो, पइट्ठा समिदी हवे तस्स ॥ ६५ ॥

लखि प्रासुक भू गुप्त अरु, अन्य न रोके कोय ।
मल आदिक क्षेपण करे, पंचम समिती सोय६५।

अर्थ—जो मुनि जीव जंतु रहित प्रासुक जमीन जो गूढ़ हो अन्य द्वारा रोकने योग्य न हो ऐसे स्थान में मल मूत्रादि का त्याग करते हैं उनके पांचमी प्रतिष्ठापना समिति होती है ॥ ६५ ॥

आगे—मनोगुप्ति को कहते हैं।

कालुस्समोहसण्णा, रागद्दोसाइ असुहभावाणं ।
परिहारो मणुगुत्ती, ववहारणयेण परिकहियं ॥ ६६ ॥

राग द्वेष अरु कलुषता' अशुभ मोह के द्वार ।
इनको रोके भाव से, मन गुप्ती व्यवहार ॥६६॥

अर्थ—मोह, राग, द्वेष कलुपता संज्ञा आदि अशुभ भावों का त्याग करना उसे व्यवहार नयसे मनोगुप्ति कहते हैं ॥ ६६ ॥

आगे—वचन गुप्ति को कहते हैं।

थीराजचोरभत्तक, हादीवयणस्स पावहेउस्स ।
परिहारो वचगुत्ती, अलियादिणियत्तिवयणं वा ॥६७॥

राज्य चोर भोजन तिया, पाप बंध के वैन ।
इन को रोके भाव से, वचन गुप्ति सुख दैन॥६७।

अर्थ—पाप बंध के कारण स्त्री कथा, राज कथा, चोर कथा, तथा भोजन कथा, इन ४ विकथा रूप वचनो का जो त्याग करना सो वचन गुप्ति है ॥ ६७ ॥

आगे—कायगुप्ति को कहते हैं।

बंधणछेदणमारण, अकुंचण तह पसारणादीया ।
कायकिरियाणियत्ती, णिद्दिट्ठाकायगुत्तित्ति ॥ ६८ ॥

छेदे भेदे वध केर, संकोचे विस्तार ।
ये किरिया तन की तजे, काया गुप्ती सार ॥६८॥

अर्थ—बन्धन, छेदन, मारन, संकोचन, विस्तारन आदि शरीर की क्रियाओं का न करना सो कायगुप्ती है ॥ ६८ ॥

आगे—निश्चय नय से मन गुप्ति व वचनगुप्ति को कहते हैं।

जा रायादिणियत्ती, मणस्स जाणीहि तम्मणो गुत्ती ।
अलियादिणियत्तिं वा, मोणं वा होइ वदिगुत्ती ॥६९॥

राग द्वेष मुक्ती जहां, मन गुप्ती तहँ जान ।
सर्व वैन तज मौन युत, भाषा गुप्ती मान ॥६९॥

अर्थ--जो सर्व व्यापार से रहित है चार प्रकार आराधना में सदा लवलीन हैं, निर्ग्रन्थ और मोह रहित हैं वे साधु होते हैं॥७५॥

आगे—इस अधिकार को संकोचते हैं।

एरिसयभावणाए, ववहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छयणयस्स चरणं, एत्तो उड्ढं पवक्खामि ॥ ७६ ॥

यह चारित व्यवहार से, पूर्व भावमय होय।
अब आगे चारित कहें, निश्चयनय को जोय ७६

अर्थ—ऊपर लिखित भावनाओं में व्यवहार नय की अपेक्षा से चारित्र का कथन किया है। निश्चय नय की अपेक्षा चारित्र को आगे कहेंगे॥ ७६ ॥

इति शुद्ध स्वरूपाधिकारः ॥ ३ ॥

अथ निश्चय प्रतिक्रमणाधिकार : ॥४॥

अथ—मासिक पाठ में अट्ठाईसवां दिवस :—

आगे--ध्यावने योग्य पञ्च रत्नों के स्वरूप को कहते हैं।

णाहं णारयभावो, तिरियच्छो मणुवदेवपज्जाओ ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ७७ ॥

णाहं मग्गणठाणो, णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ७८ ॥

णाहं वालो वुड्ढो, ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ७९ ॥

णाहं रागो दोसो, ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ८० ॥

णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहो हिं ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता चेव कत्तीणं ॥ ८१ ॥

मैं न भाव पशु नरक नर, सुर पर्याय न कोय।
इनका कृतकारित नहीं, नहिं अनुमोदक जोय ७७
मैं न मार्ग गुण थान अरु, जीव समास न कोय।
इनका कृत कारित नहीं, नहिं अनुमोदक जोय ७८
मैं न बाल बूढ़ा तरुण, अरु कारण नहि कोय।
इनका कृत कारित नहीं, नहि अनुमोदक जोय ७९
मैं न राग अरु द्वेष युत, मोह न कारण कोय।
इनका कृत कारित नहीं नहि अनुमोदक जोय ८०
मैं न क्रोध अरु मान युत, कपट लोभ नहि कोय।
इनका कृत कारित नहीं, नहि अनुमोदक जोय ८१

अर्थ—न मैं नारक भाव धारी हूँ, न मैं तिर्यञ्च, मनुष्य या देव पर्याय वाला हूँ न मैं इनका कर्ता हूँ न मैं कराने वाला हूँ और न अनुमोदना करने वाला हूँ। न तो मैं मार्गणा स्थान हूँ न गुण स्थान रूप हूँ न जीव समास स्था न रूप हूँ न मैं इन का······ न मैं बालक हूँ न बुड्ढा हूँ न मैं जवान हूँ और न मैं इन अवस्थाओं का कारण हूँ। न मैं इनका······ न मैं राग रूप हूँ, न द्वेष रूप हूँ, न मोह रूप हूँ, और न कारण हूँ, न मैं इनका ···। न मैं क्रोध रूप हूँ, न मान रूप हूँ, न माया रूप हूँ। और न लोभ रूप हूँ न मैं इनका······ ॥ ७७–८१ ॥

आगे—भेद ज्ञान के क्रम से निश्चय चारित्र होना दिखलाते हैं।

एरिसभेदब्भासे, मज्झच्छो होदि तेण चारित्तं।
तं दिढकरणणिमित्तं, पडिकमणादी पवक्खामि ॥ ८२॥

इसही भेदाभ्यास से, होवे शुद्ध चारित्र ।
तिसकी दृढ़ता को कहूं, प्रतिक्रमणादि पवित्र ८२

अर्थ—ऊपर कहे भेद विज्ञान को जो अभ्यास करते हैं वे मध्यस्थ हैं इसी भाव के द्वारा चारित्र का लाभ है। इसी चारित्र के दृढ़ करने के लिये प्रतिक्रमण आदि को कहता हूँ सो सुनो ॥८२॥

आगे—राग द्वेष के परिहार को ही निश्चय प्रतिक्रमण कहते हैं।

मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदित्ति पडिकमणं८३॥

वचन क्रिया तज जो करे, राग द्वेष परिहार ।
अरु ध्यावे निज आतमा, प्रतिक्रमण निरधार ८३

अर्थ—वचन की रचना को छोड़ कर तथा राग द्वेषादि भावों को निवारण करके जो मुनि आत्मा को ध्याता है उसके प्रतिक्रमण होता है ॥ ८३ ॥

आगे—सब अपराधों के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

आराहणाइ वट्टइ, मोत्तूण विराहणं विसेसेण ।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा ८४॥

आराधन में जो रहें, तज के सब अपराध ।
प्रतीक्रमण का रूप यह, जिन मत में निरवाध ८४

अर्थ—जो सर्व अपराध को छोड़ कर स्वरूप की आराधना में परिणमन करता है वह मुनि प्रतिक्रमण मई होता है तथा वह प्रतिक्रमण स्वरूप कहा गया है ॥ ८४ ॥

आगे—अनाचार के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

मोत्तूण अणायारं, आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा ८५॥

अनाचार को त्याग के, करता थिर आचार।
प्रतिक्रमण का रूप यह, जिनमत में निरधार ८५

अर्थ--जो भव्य अनाचार को त्याग कर स्वआचार में स्थिर भाव है वह प्रतिक्रमण मई होता है तथा वह प्रतिक्रमण स्वरूप है ८५

आगे--उन मार्ग के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

उम्मग्गं परिचत्ता, जिणमग्गे, जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जह्मा ८६॥

उनमारग को त्यागि के, जिन मारग थिर होय
प्रतिक्रमण का रूप यह, जिनवर मत में जोय ८६

अर्थ—उन्मार्ग को त्यागकर जो जीव जिनमार्ग में स्थिरभाव है, वही प्रतिक्रमण रूप कहा गया है क्यों कि वह जीव प्रतिक्रमण मई है ८६

आगे--शल्य भाव के परिहार को प्रतिक्रमण कहते हैं।

मोत्तूण सल्लभावं, णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा॥८७॥

शल्य भाव को त्यागि के, शल्य रहित जो होय।
प्रतिक्रमण का रूप यह, जिनवर मत में जोय ८७

अर्थ--जो मुनि शल्य भाव को त्यागकर शल्यरहित भाव में परिणमन करता है वह प्रतिक्रमण रूप कहा जाता है क्यों कि वह मुनि प्रतिक्रमणमई हो जाता है॥ ८७ ॥

आगे—अगुप्ति के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं ।

चत्ता ह्यगुत्तिभावं, तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू ।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा ८८॥

त्रय अगुप्ति को त्यागि के, गुप्ति लीन मुनि होय ।
प्रतिक्रमण का रूप यह, जिन वर मत में जोय ८८

अर्थ—जो साधु अगुप्ति भाव को त्याग कर तीन गुप्तियों में गुप्त होता है वह प्रतिक्रमण स्वरूप कहा गया है, क्यों कि वह मुनि प्रतिक्रमणमई है ॥ ८८ ॥

आगे—आर्त, रौद्र ध्यान के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं ।

मोत्तूण अट्टरुद्दं, झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा ।
सो पडिकमणं उच्चइ, जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु ॥ ८९ ॥

आर्त रौद्र द्वय ध्यान तजि, धर्म शुक्ल मय होय ।
प्रतिक्रमण का रूप यह, जिन वर मत में जोय ८९

अर्थ—जो आर्त तथा रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को ध्याता है उसी को जिनेन्द्र कथित सूत्रों में प्रतिक्रमण कहा गया है ॥ ८९ ॥

आगे—जीव ने अनादि से सेये और न सेये भावों को दिखाते हैं ।

मिच्छत्त पहुदि भावा, पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं ।
सम्मत्त पहुदि भावा, अभादिया होंति जीवेण ॥९०॥

सेये जीव अनादि से, बन्धक चारों भाव ।
और न पाया आदि से, समकित आदि स्वभाव ९०

अर्थ--पूर्व में जीवने अनादि काल से मिथ्यात्व आदि भावों को भाया है। तथा सम्यक्त आदि भावों को अनादि काल से कभी नहीं भाया ॥ ९० ॥

आगे--मिथ्या दर्शनादि के परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

मिच्छा दंसणणाण, चरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।
सम्मत्तणाणचरणं, जो भावइ सो पडिक्कमणं ९१॥

मिथ्या दर्शन ज्ञान अरु, चरन तजे जो कोय।
रतनत्रय जो धारता, प्रतिक्रमण है सोय ९१

अर्थ--जो मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र को सर्वथा त्याग कर सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र की भावना करता है वह प्रतिक्रमण रूप होता है ॥ ९१ ॥

आगे--आत्मा की स्थिति रूपी ध्यान को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

उत्तमअट्ठं आदा, तह्मि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हादु झाणमेव हि, उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं ॥९२॥

जिस थिति से मुनि कम क्षय सो आतम श्रेष्टार्थ।
इस कारण वह ध्यान ही प्रतिक्रमण श्रेष्टार्थ।९२

अर्थ- आत्मा ही उत्तमार्थ है। उसी में स्थित रहकर मुनि कर्मों को नाश करते हैं इसलिये ध्यान ही उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ॥९२॥

आगे सर्व दोष परिहार को ही प्रतिक्रमण कहते हैं।

झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हादु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिक्कमणं ९३

ध्यान लीन साधू करे सर्व दोष परिहार।
वही ध्यान अतिचार का, प्रतिक्रमण निरधार।९३

अर्थ जो ध्यान में लवलीन साधू है वह सर्व दोषों को त्याग देता है, इसलिये ध्यान ही सर्व अतीचारों का प्रतिक्रमण करने वाला है॥ ९३ ॥

आगे—व्यवहार प्रतिक्रमण का स्वरूप कहते हैं।

पडिकमणणामधेये, सुत्ते जह वरिणदं पडिक्कमणं।
तह णादा जो भावइ, तस्स तदा होदि पडिकमणं॥९४

प्रतिक्रमण जो श्रुत कहा, प्रतिक्रमण सो रूप।
उस प्रकार साधन करे, प्रतिक्रमण का भूप।९४

अर्थ—प्रतिक्रमण नाम सूत्र में जैसा प्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है उस को वैसा ही जान कर जो भावता है तब ही प्रतिक्रमण होता है९४

इतिनिश्चयप्रतिक्रमणाधिकारः॥ ५ ॥

अथ निश्चय प्रत्याख्यानाधिकारः॥६॥

आगे—शुभाशुभ भावों के त्याग को ही निश्चय प्रत्याख्यान कहते हैं।

मोत्तूण सयलजप्प, मणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स॥ ९५ ॥

वचन किया तज परिहरे, भाव शुभाशुभ दोय।
अरु ध्यावे निज आतमा, पच्चखान है सोय।९५

अर्थ—जो सर्व वचन जाल को त्याग कर आगामी सर्व शुभ अशुभ भावों (कर्मों) को दूर करके आत्मा ही का ध्यान करता है उसी के ही निश्चय प्रत्याख्यान होता है॥ ९५ ॥

आगे—मैं अनन्त अतुष्टय स्वरूप हूँ ऐसे चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते है।

केवलणाणसहावो, केवलदंसणसहाव सुहमईओ।
केवलसत्तिसहावो, सोऽहं इदि चिंतए णाणी ॥ ९६ ॥

केवल ज्ञान स्वभाव मम, दर्शन सुख मम और।
वीर्य अनन्त स्वभाव मम, बुध चिन्ते शिर मौर।९६

अर्थ—जो केवल ज्ञान स्वभाव है, केवल दर्शन स्वभाव है, परम सुख मई है, तथा केवलि शक्ति स्वभाव है वही मैं हूँ ऐसा ज्ञानी को विचार करना चाहिये ॥ ९६ ॥

आगे—जो सब को जानता है देखता है वही मैं हूँ ऐसे चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं।

णियभावं णवि मुंचइ, परभावं णेव गेरहए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं सोऽहं इदि चिंतये णाणी ॥९७॥

जो निज भाव न छोड़ता, पर को गहे न लेष।
किन्तु सर्व जाने लखे, बुध चिन्ते मम भेष।९७

अर्थ—जो अपने भाव को कभी नहीं छोड़ता तथा किसी भी पर भाव को कभी ग्रहण नहीं करता परन्तु सर्व को जानता है और देखता है सो ही मैं हूँ ऐसा ज्ञानी चिन्तवन करता है ॥ ९७ ॥

आगे—सर्व बन्धों से रहित है सो मैं हूँ, ऐसे चिन्तवन को प्रत्याख्यान कहते हैं।

पयडिट्ठिदिअणुभाग, प्पदेसवंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सोहं इदि चिंतिज्जो, तत्थेव य कुणदि थिरभावं ॥९८॥

बंध प्रकृति परदेश अरु, थिति अनुभाग न आप।
यों चिन्ते अरु थिर रहे, ज्ञानी ज्ञान प्रताप।९८

अर्थ—यह आत्मा निश्चय से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अ र प्रदेशबंधादि बन्धों से जो रहित हैं वही मैं हूँ इस तरह चिन्तवन करता हुआ ज्ञानी उस में अपने स्थिर भाव करता है॥ ९८ ॥

आगे—ममत्व को तजि के निर्ममत्व मैं ठहरता हूँ ऐसा चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं।

ममत्ति परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंवणं च मे आदा, अवसेसं च वोसरे॥ ९९ ॥

ममता तज अब मैं रहूं, निर ममत्व के संग।
आलम्बन निज का करूं, शेष तजूं सब रंग।९९

अर्थ—मैं ममता भाव को त्यागता हूँ तथा आत्मा के निर्ममत्व भाव में ही ठहरता हूँ। निश्चय करके मुझ को आत्मा का ही अवलम्बन है। शेष सर्व को मैं त्यागता हूँ॥ ९९ ॥

आगे--मैं अपने सब गुणों के सङ्ग में हूँ ऐसा चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे॥ १०० ॥

ज्ञान संग मम आतमा, दर्श चरन के संग।
पच्चखान में आतमा, संवर योग सुसंग ॥१००॥

अर्थ—निश्चय करके मेरे ज्ञान में आत्मा है। मेरे दर्शन में आत्मा है प्रत्याख्यान (त्याग) में आत्मा है, तथा मेरे संवर और
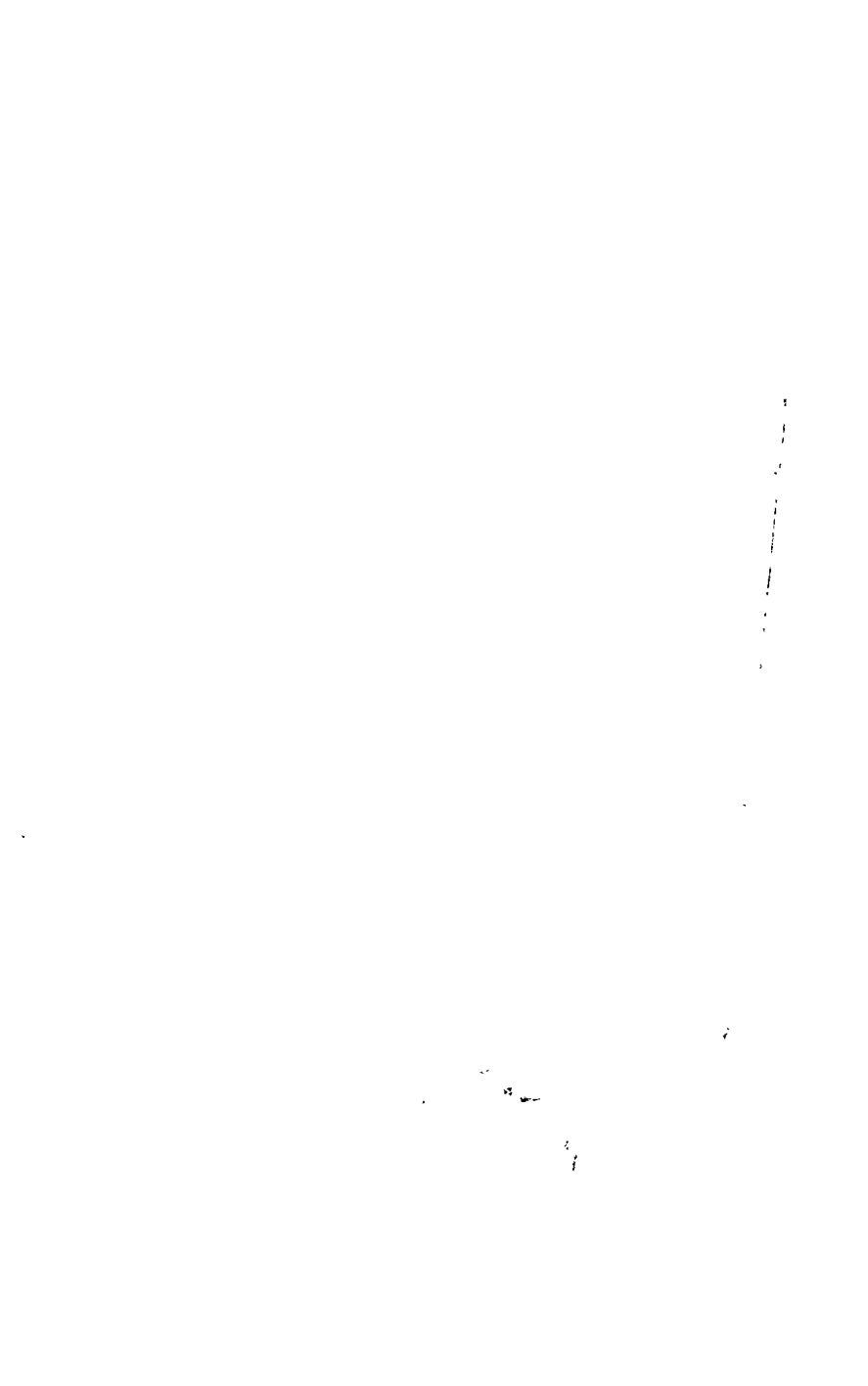
चित्र नं० १३

नियमसार गाथा १०१ का भाव
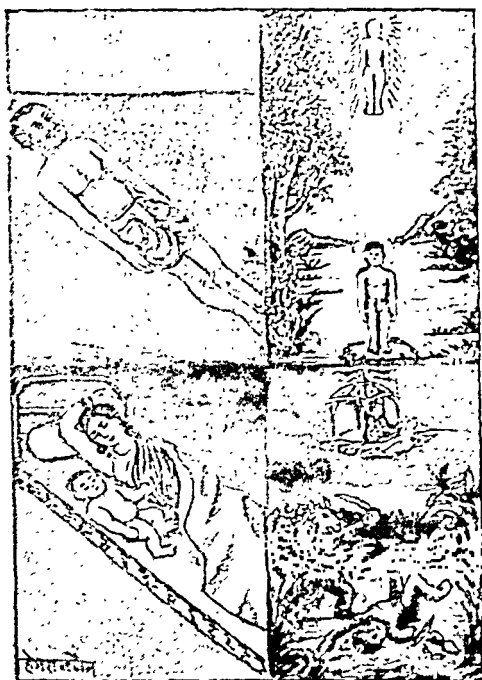
सब अवस्थाओं में अकेला

उपयोग में आत्मा है और मेरे चारित्र में आत्मा है ॥१००॥

आगे—मैं अपनी सर्व पर्यायों में एक ही हूँ ऐसा चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं।

एगो य मरदि जीवो, एगो य जीवदि सयं।
***एगोभुंजदिसुहदुंह, एगो सिज्झदि णीरयो ॥१०१॥**

जीव अकेला ही मरे, जनमें आपहि एक।
भोगे सुख दुख एकला, लहे सिद्ध पद एक १०१॥

अर्थ—जीव अकेला ही मरण को प्राप्त होता है और अकेला ही जन्म लेता है अकेला ही सुख दुख भोगता है और अकेला ही कर्मों को नाश कर निर्वाण को प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥

आगे—मैं नित्य हूँ और राग द्वेष पर अनित्य हैं ऐसे चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं।

एको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे वहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥१०२॥

एक शास्वता आतमा, दर्शन ज्ञान स्वभाव।
इन सिवाय जे अन्य हैं, सब संयोग विभाव १०२॥

अर्थ—निश्चय कर मेरा आत्मा एक अविनाशी है, ज्ञान दर्शन लक्षण का धारी है, मेरे आत्मीकभाव के सिवाय अन्य सर्व भाव मुझ से वाहर हैं तथा सर्व ही भाव संयोग लक्षण (पर द्रव्य के संयोग से उत्पन्न हुए) हैं ॥१०२॥

---

*मूलं—एगस्स जादि मरणं। सं० चीर

आगे—मैं सब अनित्यों को त्याग कर नित्य में स्थिर होता हूं ऐसे चिन्तवन को ही प्रत्याख्यान कहते हैं ।

जंकिंचि मे दुच्चरित्तं, सव्वं तिविहेण वोसरे ।
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं ॥ १०३ ॥

जो कुछ मम दुश्चरित है, त्यागूं मन वच काय ।
सामायिक त्रय विधि करूं, निराकार को ध्याय १०३

अर्थ—जो कुछ मेरा दुष्ट रूप चारित्र है उस सर्व को मैं मन, वचन, काय से त्यागता हूं । तथा तीन प्रकार का सर्व तरह से निराकार जो सामयिक सो करता हूं ॥ १०३ ॥

आगे—मैं समता भाव से वैर भाव व आशा का परिहार करके समाधि चिन्तवन करता हूं ।

सम्मं मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि ।
आसाए वोसरित्ता णं, समाहि पडिवज्जए ॥ १०४ ॥

साम्य भाव सब जीव प्रति, वैर न राखूं लेष ।
आशा सबही परिहरों, समाधि चिन्तूं शेष १०४॥

अर्थ—सर्व प्राणियों से मेरे समता भाव है तथा किसी के भी साथ मेरा वैर भाव नहीं है । निश्चय कर आशा को त्याग कर समाधि भाव को प्राप्त होता हूं ॥ १०४ ॥

आगे—निश्चय प्रत्याख्यान के योग्य जीव का स्वरूप दिखलाते हैं ।

णिक्कसायस्स दांतस्स, सूरस्स ववसायिणो ।
संसारभयभीदस्स, पच्चक्खाणं सुहं हवे ॥ १०५ ॥

जो कषाय इन्द्रिय विजय, सहे परीषह दुक्ख।
भव दुख से भय भीत के, पच्चखान में सुक्ख१०५॥

अर्थ—जो कषाय रहित है, इन्द्रिय दमन करने वाला योद्धा है, उद्यमी है, तथा संसार से भयभीत है, उसी के ही सुखमई यह प्रत्याख्यान होता है ॥ १०५ ॥

आगे—इस प्रकार भेदाभ्यास जो करता है उसी के निश्चय प्रत्याख्यान होता है।

एवं भेदब्भासं, जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं ।
पच्चक्खाणं सक्कदि, धरिदे सो संजदो णियमा १०६॥

करे भेद अभ्यास इम, जीव कर्म के संग।
वही संयमी नियम से, पच्चखान के रंग १०६॥

अर्थ—ऊपर कहे प्रमाण जो कोई जीव कर्मों के भेद के अभ्यास को नित्य करता है, वही संयमी नियम कर के प्रत्याख्यान को धारण कर सकता है ॥ १०६ ॥

इति प्रत्याख्यानाधिकारः ॥ ६ ॥

अथ निश्चयालोचनाधिकारः ॥ ७ ॥

आगे—निश्चय आलोचना का स्वरूप कहते है।

णोकम्मकम्मरहियं, विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं ।
अप्पाणं जो झायदि, समणस्सालोयणं होदि ॥१०७॥

गुण पर्याय विभाव विन, रहित कर्म नो कर्म।
जो ध्यावे निज आतमा, सो आलोचन पर्म१०७॥

अर्थ—जो मुनि आत्मा को कर्म, नोकर्म तथा विभाव गुण पर्यायों कर
के रहित ध्याता है उसी श्रमण के आलोचना होती है ॥१०७॥

आगे—आलोचना के भेदों को दिखलाते हैं।

आलोयणमालुंछण, वियडीकरणं च भाव सुद्धी य।
चउविहमिह परिकहियं, आलोयणलक्खणं समए १०८

आलोचन आलुच्छना, भाव अविक्कृत शुद्ध।
चउ विधि अव लक्षण कहें, आलोचन के बुद्ध१०८

अर्थ—आगम में आलोचना का लक्षण चार प्रकार का कहा गया
है अर्थात् आलोचन, आलुंछन, (पारणामिक) अविकृति
करण, तथा भाव शुद्धि। इन चारों का स्वरूप आगे कहेंगे १०८

आगे—प्रथम भेद का स्वरूप कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्त परिणामं।
आलोयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं १०९॥

जो देखे निज आतमा, धर निज में सम भाव।
सो जानो आलोचना, कहें केवली राव ॥१०९॥

अर्थ—जो समता भाव में अपने परिणाम को धर करके अपने आत्मा
को देखता है उसी के ही आलोचना जानो। ऐसा जिनेन्द्रदेव
का उपदेश है ॥ १०९ ॥

आगे—द्वितीय भेद को कहते हैं।

कम्ममहीरुहमूल, च्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो समभावो, आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं ॥ ११० ॥

कर्म वृक्ष को मूल से, धरि निज में सम भाव ।
सो जानो आलुंछना, कहैं केवली राव ॥११०॥

अर्थ—अष्ट कर्म रूपी वृक्ष के मूल को छेद करने में समर्थ जो अपने ही आत्मा का स्वाधीन और समता भाव रूप परिणाम उसी को आलुंछन (पारणामिक) इस नाम से कहा है ॥ ११० ॥

आगे—तृतीय भेद के स्वरूप को कहते हैं ।

कम्मादो अप्पाणं, भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं ।
मज्झत्थभावणाए, वियडीकरणंतिविण्णेयं ॥ १११ ॥

भिन्न कर्म से आतमा, विमल भाव स्थान ।
जो विराग हो ध्यावता, भाव अविकृत मान ।१११

अर्थ—निश्चय करके कर्मों से भिन्न निर्मल गुण का स्थान जो आत्मा उसको जो मध्यस्थ (वीतराग) भावना में लीन होकर भावता है उसके अविकृतिकरण जानना ॥ १११ ॥

आगे—चतुर्थ भेद के स्वरूप को कहते हैं ।

मदमाणमायलोहवि, वज्जियभावो दु भावसुद्धित्ति ।
परिकहियं भव्वाणं, लोयालोयप्पदरिसीहिं ॥ ११२ ॥

काम क्रोध मद कपट बिन, और लोभ परिहार ।
भाव शुद्धि वह भाव है, जिनमत में निरधार ११२

अर्थ—काम, क्रोध, मान, माया, और लोभ इन कषायों से रहित जो भाव है उसको भाव शुद्धि कहते हैं । लोक और अलोक को जानने

वाले श्री जिनेन्द्रदेव ने भव्य जीवों के लिये ऐसा कहा है ११२

इति निश्चयआलोचनाधिकार ॥ ७ ॥

अथ निश्चयप्रायश्चित्ताधिकारः ॥ ८ ॥

अथ–मासिक पाठ में उन्तीसवां दिवस :—

आगे—निश्चय प्रायश्चित के स्वरूप को दिखलाते हैं।

वदसमिदिसीलसंजम, परिणामो करणणिग्गहो भावो
सो हवदि पायच्चित्तं, अणवरयं चेव कायव्वो ॥११३॥

व्रत तप समिती शीलयुत, इन्द्रिय रोधक भाव।
प्रायश्चित इसको कहें, करो निरन्तर चाव ११३॥

अर्थ—व्रत, समिति, शील और संयम का जो परिणाम तथा इन्द्रियों के रोकने का जो भाव उसका नाम प्रायश्चित है सो ही निरन्तर करना योग्य है॥ ११३ ॥

आगे—क्रोधादि के क्षय करने के उपाय में वर्तने को ही प्रायश्चित कहते हैं।

कोहादिसगब्भावं, खयपहुदीभावणाए णिग्गहणं।
पायच्छित्तंभणिदं, णियगुणचिंता य णिच्छयदो ११४

सब विभाव क्रोधादि में, नाशक वर्तें भाव।
अरु चिन्ते गुणग्रहण में, सो प्रायश्चित राव ११४॥

अर्थ—क्रोधादि अपने विभाव भावों के क्षय करने आदि की भावना में वर्तना तथा अपने आत्मीक गुणों की चिन्ता करना सो निश्चय से प्रायश्चित कहा गया है॥ ११४ ॥

आगे—कषायों के जीतने का उपाय दिखलाते हैं।

कोहं खमया माणं, समद्दवेण ज्जवेण मायं च ।
संतोसेण य लोहं, जयदि खुए चउविहकसाये ॥११५॥

क्रोध क्षमा से जीत जिय, मद मार्दव से जीत ।
छल आर्जव से जीत ले, लोभ तोष से जीत ११५।

अर्थ—क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से माया को आर्जव से तथा लोभ को संतोष से इस तरह चार कषायों को योगी जीतता है ॥ ११५ ॥

आगे—जो आत्मा ज्ञान को धारण करता है उसी के प्रायश्चित्त होना दिखलाते हैं।

उक्किट्ठो जो बोहो, णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं ।
जो धरइ मुणी णिच्चं, पायच्छित्तं हवे तस्स ॥ ११६ ॥

जो अपना उत्कृष्ट है, बोध ज्ञान अरु चित्त ।
उसको जो नित धारता. सो प्रायश्चित वित्त ११६

अर्थ—अपने ही आत्मा का जो उत्कृष्ट बोध, ज्ञान तथा चित्त है उसको जो मुनि नित्य धारण करता है उसके प्रायश्चित होता है ॥ ११६ ॥

आगे—महा मुनियों के एक तप ही प्रायश्चित दिखाते है।

किं वहुणा भणिएण दु, वरतवचरणं महेसिणं सव्वं ।
पायच्छित्तं जाणह, अणेयकम्माण खयहेऊ ॥ ११७ ॥

बहुत कहें क्या तप चरन, महा श्रमण के एक ।
प्रायश्चित को जानना, नासे कर्म अनेक ११७॥

अर्थ—बहुत क्या कहें। महर्षियों का सर्व उत्कृष्ट तपश्चरण एक प्रायश्चित जानो जो अनेक कर्मों के नाश का कारण है ॥११७॥

आगे—सर्व कर्म एक तपश्चरण से ही नाश को प्राप्त होते हैं ऐसे तप को ही प्रायश्चित कहते हैं।

णंताणंतभवेण, समज्जिअसुहअसुहकम्मसंदोहो ।
तवचरणेण विणस्सदि, पायच्छित्तं तव तह्मा ॥११८॥

नंतानंत भवों विषे, किये शुभाशुभ कर्म ।
ते विनसें तप चरन से, प्रायश्चित वह पर्म ११८॥

अर्थ—अनन्तानन्त भवों के द्वारा, जो इस जीव ने शुभ तथा अशुभ कर्मों के समूह को उत्पन्न किया है सो सर्व कर्म जाल तपश्चरण करके नाश को प्राप्त होता है। इस लिये ऐसा तप ही प्रायश्चित है ॥ ११८ ॥

आगे—ध्यान को ही प्रायश्चित कहते हैं।

अप्पसरूवालंवण, भावेण दु सव्वभावपरिहारं ।
सक्कदि कट्टुं जीवो, तम्हा झाणं हवे सव्वं ॥११९॥

आत्मरूप अवलंव कर, ध्यावे तज पर भाव ।
उसी शक्ति से जीव यह, सर्व ध्यान को पाव११९॥

अर्थ—जो जीव अपने आत्मीक स्वरूप के आलम्वन में तन्मय है उसी भाव से सर्व अन्य भावों को त्यागने को समर्थ हो जाता है। इसलिये सर्व प्रायश्चित्तादि ध्यान ही होता है ॥ ११९ ॥

आगे—सर्व पर भावों को त्यागता है उसी के नियम की सिद्धि दिखाते हैं।

सुहअसुहवयणरयणं, रायादीभाववारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा १२०

वचन क्रिया शुभ अशुभ तज, तज रागादिक भाव।
जो ध्यावे निज आतमा, निश्चय नियम स्वभाव १२०

अर्थ—जो कोई शुभ और अशुभ वचनों की रचना को दूर कर तथा राग द्वेषादि भावों को हटा कर आत्मा को ध्याता है उस के ही नियम से नियम होता है ॥ १२० ॥

आगे—निश्चय कायोत्सर्ग का स्वरूप कहते हैं।

कायाइपरदव्वे, थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं ।
तस्स हवे तणुसग्गं, जो झायइ णिव्विअप्पेण ।१२१।

काय आदि पर द्रव्य से, दूर करे थिर भाव।
तिसके कायोत्सर्ग है, जो ध्यावे निज भाव ।१२१।

अर्थ- काय आदि पर द्रव्यों में स्थिर भाव को दूर करके जो विकल्प रहित होकर, अपने आत्मा को ध्याता है उस के कायोत्सर्ग होता है ॥ १२१ ॥

इति निश्चय प्रायश्चित्ताधिकारः ॥८॥

अथ परम समाधि अधिकारः ॥९॥

आगे—परम समाधि होने योग्य जीव का लक्षण दिखाते हैं।

वयणोच्चारण किरियं, परिचत्ता वीयरायभावेण ।
जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥ १२२ ॥

वचन उचारण तज क्रिया, भाव विरागी साधि।
अरु ध्यावें निज आतमा, ताके परम समाधि ।१२२।

अर्थ—जो अपने वीतराग भाव से, वचनों से बोलने की क्रिया को त्याग कर के अपने आत्मा को ध्याता है उस के परम समाधि

होती है ॥ १२२ ॥

आगे—फिर भी परम समाधि होने योग्य जीव का स्वरूप दिखाते हैं।

संजमणियमतवेण दु, धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥ १२३ ॥

संयम तप अरु नियम से, धर्म शुक्ल को साधि।
अरु ध्यावें निज आतमा, ताके परम समाधि ।१२३

अर्थ—संयम, नियम और तप के द्वारा धर्म, ध्यान अथवा शुक्ल ध्यान से जो आत्मा को ध्याता है उस के ही परम समाधि होती है ॥ १२३ ॥

आगे—समता बिना सब काय क्लेश निरर्थक दिखलाते हैं।

किं काहदि वणवासो, कायकलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी, समदारहियस्स समणस्स १२४॥

कहा होय बन के बसे, अनशन काय कलेश।
श्रमण मौन अरु श्रुत सहित, समता विन इक भेष१२४

अर्थ—जो श्रमण समता से रहित है, उसको वनवास, अथवा काय क्लेश, व नाना प्रकार के उपवासों का करना व शास्त्र पठन तथा मौन व्रत यह सर्व ही क्या कर सकते हैं? अर्थात् मोक्ष के साधन को करने में असमर्थ हैं ॥ १२४ ॥

आगे—जितेन्द्रिय के ही सामायक स्थाई दिखलाते हैं।

विरदो सव्वसावज्जे, तिगुत्तीपिहिदिंदिओ।
तस्स समाइगं ठाइ, इदि केवलिसासणे ॥ १२५ ॥

जो विरक्त सब पाप से, इन्द्रियजित युत गुप्त।
सामायक तिस के रहे, कहैं केवली मुक्त ॥१२५॥

अर्थ—जो सर्व आरंभ अर्थात सावद्य क्रियाओं से विरक्त हो तीन गुप्तियों को धार करके, अपनी इन्द्रियों को सङ्कोचता है, उसी के ही सामायिक स्थाई होता है ऐसा केवली भगवान के आगम में कहा गया है ॥ १२५ ॥

आगे—मध्यस्थ के ही सामयिक स्थाई दिखलाते हैं।

जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामायगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १२६ ॥

है समता सब जीव से, जे त्रस थावर काय ।
सामायिक तिसके रहे, कहें केवली राय ॥१२६॥

अर्थ—जो सर्व त्रस और स्थावर प्राणियों में समता भाव रखता है, उसी के ही सामायिक स्थाई होती है। ऐसा केवली के आगम में कहा है ॥ १२६ ॥

आगे—निज दृष्टि वाले के ही सामायिक स्थाई दिखलाते हैं।

जस्ससण्णिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १२७ ॥

संयम तप अरु नियम में, जिसके आतम पास ।
सामायिक तिसके रहे, कहें केवली खाश ॥१२७॥

अर्थ—जिस के संयम पालते, नियम करते व तप धरते एक आत्मा ही निकटवर्ती है, उसी के सामायिक स्थाई होती है। ऐसा केवली के आगम में कहा है ॥ १२७ ॥

आगे—राग द्वेष के अभाव में ही सामायिक स्थाई दिखलाते हैं।

जस्स रागो दु दोसोदु, विगडिं ण जणेति दु ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १२८ ॥

जिन कें राग न द्वेष के, बने न विकृत भाव ।
सामायिक तिनके रहे, कहें केवली राव ॥१२८॥

अर्थ—जिसकें राग, द्वेष विकार पैदा नहीं होते हैं उसी के सामायिक स्थाई होता है ऐसा केवली के आगम में कहा है ॥ १२८ ॥

आगे—अशुभ ध्यान के अभाव में सामायिक स्थाई दिखलाते हैं ।

जो दु अट्टं च रुद्दं च, झाणं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामायिगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १२९ ॥

आर्त रौद्र के ध्यान को, नित्य हटावे कोय ।
सामायिक तिनके रहे, यह जिनवर मत वोय।१२९

अर्थ—जो नित्य आर्त और रौद्र ध्यानों को हटाता है उस के सामायिक व्रत स्थाई होता है। ऐसा केवली भगवान के आगम में कहा है ॥ १२९ ॥

आगे—जो पुन्य पाप के भावों को हटाता है उसके ही सामायिक स्थाई होता है ।

जो दु पुण्णं च पावं च, भावं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १३० ॥

पुण्य पाप के भाव को, नित्य हटावे कोय ।
समायिक तिनके रहे, यह जिनवर मत वोय ।१३०

अर्थ—जो नित्य पुण्य पाप के भावों को त्यागता है उस के सामायिक व्रत स्थाई होता है ऐसा केवली के आगम में कहा है ॥ १३० ॥

आगे—नव कषाय के विजयी के ही सामायिक स्थाई होता है

जो दु हस्सं रइं सोगं, अरतिं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १३१ ॥

जो दु गंछा भयं वेदं. सव्वं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामायगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १३२ ॥

हास्य शोक रति अरति को, नित्य हटावे कोय ।
सामायिक तिनके रहे, यह जिनवर मत बोय १३१

वेद जुगुप्सा और भय, नित्य हटावे कोय।
सामायिक तिनके रहे, यह जिनवर मत बोय१३२

अर्थ—जो हास्य, रति, शोक, अरति, जुगुप्सा, भय, तीन प्रकार वेद, ऐसे नौ कषायों को नित्य दूर रखता है उसके ही यह सामयिक स्थाई होती है, ऐसा श्री केवली के शासन में कहा है १३१-१३२

आगे—धर्म शुक्ल ध्यानों को ध्याने वाले के ही सामयिक स्थाई दिखलाते हैं।

जो दु धम्मं च सुक्कंच, झाणं झाएदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥ १३३ ॥

धर्म शुक्ल युत ध्यान को, नित्य ध्यावता होय ।
सामायिक तिनके रहे, यह जिनवर मत बोय १३३

अर्थ—जो नित्य धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को ध्याता है उस के सामायिक स्थाई होता है। ऐसा केवली के आगम में कहा है ॥ १३३ ॥

इति परम समाधि अधिकारः ॥ ९ ॥

अथ परम भक्त्याधिकार: ॥१०॥

आगे—रतनत्रय के आराधक के निवृत्तिभक्ति होती है।

सम्मत्तणाणचरणे, जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती, होदित्ति जिणेहिं पण्णत्तं १३४

रतनत्रय भक्ती करे, मुनि अरु श्रावक कोय।
तिनके निवृति भक्ति है, यह जिनवर मत वोय १३४

अर्थ—जो श्रावक या श्रमण (परम दिगम्बर मुनि) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यच्चारित्र में भक्ति करता है उस के निवृत्ति रूप अर्थात संसार से छुड़ाने वाली भक्ति होती है। ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान के आगम में कहा है ॥ १३४ ॥

आगे—व्यवहार सिद्ध भक्ति का स्वरूप कहते हैं।

मोक्खंगयपुरिसाणं, गुणभेदं जाणिऊण तेसिंपि।
जो कुणदि परमभत्तिं, ववहारणयेण परिकहियं १३५

मोक्ष प्राप्त जे पुरुष हैं, उनके गुण सब जान।
परम भक्ति तिन की करे, यह व्यवहार पिछान १३५

अर्थ—उन मोक्ष प्राप्त पुरुषों के गुणों के भेदों को जानकर जो आत्मा उन गुणों में परम भक्ति करता है उस के व्यवहार नय से सिद्ध भक्ति होना कही गई है ॥ १३५ ॥

आगे—निश्चय भक्ति का स्वरूप कहते हैं।

मोक्खपहे अप्पाणं, ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ, असहायगुणं णियप्पाणं ॥१३६॥

थाप मोक्ष मग आपको, करे निर्वृती भक्ति ।
ते जिय लें असहाय गुण, जो निज आतम शक्ति १३६

अर्थ—जो जीव निश्चय करके अपने आत्मा को मोक्ष के मार्ग में स्थापन कर मोक्ष की भक्ति करता है वही जीव इस भक्ति से पर सहाय रहित गुणों को धरने वाला ऐसा जो अपना आत्मा उसका लाभ करता है ॥ १३६ ॥

आगे—निश्चय योग भक्ति के योग्य जीव का स्वरूप कहते हैं ।

रायादीपरिहारे, अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू ।
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य कहं हवे जोगो १३७॥

रागादिक तज जे रमें, निज आतम में कोय ।
योग भक्ति तिनके सदा, इतरन के नहिं होय १३७॥

अर्थ—जो साधु रागादि दोषों को त्याग करके अपने आत्मा को योग में उद्योगी करता है वही साधु योग भक्ति युक्त होता है । अन्य के योग कैसे हो सकता है ॥ १३७ ॥

आगे—और भी निश्चय योग भक्ति के योग्य जीव का स्वरूप दिखलाते हैं ।

सव्वविअप्पाभावे, अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू ।
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य कहं हवे जोगो॥१३८॥

सब विकल्प तज के रमे, निज आतम में कोय ।
योग भक्ति तिन के सदा, इतरन के नहिं होय १३८

अर्थ—जो कोई साधु सर्व विकल्पों के अभाव में अपने आत्मा को

युक्त करता है उस योग के भक्ति होती है अन्य मुनि के यह योग कैसे होगा ? अर्थात नहीं होगा ॥ १३८ ॥

आगे—निश्चय योग का स्वरूप दिखलाते हैं।

विवरीयाभिणिवेसं, परिचत्ता जोण्ह कहियतच्चेसु ।
जो जुंजदि अप्पाणं, णियभावो सो हवे जोगो १३९॥

विपरीताभिनिवेश तज, कहे तत्व जिन लोग।
तहां रमावे आपको, वही भाव है योग ॥ १३९ ॥

अर्थ—जो विपरीत अभिप्राय को छोड़ करके जैन शासन में कहे हुवे तत्वों में अपने आत्मा को लगादेता है वही आत्मा का निज भाव योग कहलाता है ॥ १३९ ॥

आगे—तीर्थंकरों ने भी इस ही प्रकार योग भक्ति की है ऐसा दिखलाते हैं

उसहादिजिणवरिंदा, एवं काऊण जोगवरभत्तिं ।
णिव्वुदिसुहमावण्णा, तह्मा धरु जोगवरभत्तिं ॥१४०॥

ऋषभ आदि जिन वीर तक, करी योग की भक्ति।
उससे पाया मोक्ष सुख, वही करो तुम शक्ति १४०

अर्थ—जो ऋषभ तीर्थङ्कर से आदि लेय श्री महावीर जिनेन्द्र पर्यन्त २४ तीर्थङ्कर हुये हैं उन्होंने इस प्रकार से योग की उत्कृष्ट भक्ति करके मोक्ष के सुख को प्राप्त किया है। इसलिये तुम भी इस योग की श्रेष्ठ भक्ति को धारण करो ॥ १४० ॥

इति परम भक्त्याधिकारः ॥ १० ॥

अथ निश्चयावश्यकाधिकारः ॥ ११ ॥

आगे—स्वाधीन के आवश्यक कर्म का होना दिखाते हैं।

जो ण हवदि अण्णवसो, दु कम्मं भणंति आवासं।
कम्मविणासणजोगो, णिव्वहिमग्गोत्ति पिज्जुत्तो १४१

जो न रहे मुनि अन्य वश, तहँ आवश्यक कर्म ।
कर्म विनाशक योग यह, कहा मोक्ष मग पर्म १४१

अर्थ—जो दूसरे के वश नहीं रहता है, उस के आवश्यक कर्म होता है। यही योग कर्मों को नाश करने में समर्थ मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहा गया है ॥ १४१ ॥

आगे—आवश्यक कर्म के फल को दिखाते है।

ण वसो अवसो अवसस्स, कम्म मा वासयंति वोधव्व।
जुत्तित्ति उवाअंति य, णिरवयवो होदि णिज्जेत्ति १४२॥

अन्य न वस सो अवस लखि, आवश्यक तहँ कर्म।
इस उपाय इस रीति से, काय रहित हो पर्म।१४२

अर्थ—जो किसी के आधीन नहीं है वह स्वाधीन है। स्वाधीन के ही आवश्यक कर्म होता है। यही युक्ति है, यही उपाय है तथा यही कायरहित (मुक्ति) होने का मार्ग है ॥१४२॥

आगे—अशुभोपयोगी के आवश्यक कर्म को निषेधते हैं।

वट्टदि जो सो समणो, अण्णवसो होदि असुहभावेण।
तम्हातस्स दु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥१४३॥

जो मुनि वर्ते अन्य वश, अशुभ भाव युत होय।
उसके आवश्यक करम, कहो कौन विधि होय१४३

अर्थ--जो श्रमण अर्थात मुनि अपने अशुभ भाव के द्वारा आत्मा के सिवाय अन्य पदार्थ के वश हो जाता है इस कारण से उसके आवश्यक कर्म नहीं होता है ॥ १४३ ॥

आगे—शुभोपयोगी के भी आवश्यक कर्म को निषेधते हैं।

जो चरदि संजदो खलु, सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तह्मा तस्स दु कम्मं, आवासयलक्खणं ण हवे १४४॥

जो मुनि वर्तै भाव शुभ, ते हु अन्य वश होय।
उसके आवश्यक करम, कहोकौनविधिहोय १४४

अर्थ—जो संयमी मुनि शुभ भाव में प्रवर्तन करता है वह भी अन्य के आधीन हो जाता है। इसलिये उसके आवश्यक कर्म नहीं होता ॥ १४४ ॥

आगे—पर द्रव्य गुण पर्यायों को चिन्तवन करता है उसके भी आवश्यक कर्म को निषेधते हैं।

दव्वगुणपज्जयाणं, चित्तं जो कुणइ सोवि अण्णवसो।
मोहांधयारववगय, समणा कहयंति एरिसयं ॥१४५॥

द्रव गुण पर्यय चिन्तवें, रहैं अन्य वश सोय।
मोह रहित जे महामुनि, कहैं जिनागम जोय१४५

अर्थ—जो साधु छह द्रव्यों के गुण और पर्यायों के चिन्तवन में अपने चित्त को रखता है, वह भी अन्य के वश है, पराधीन है, ऐसा मोह के अन्धकार से दूरवर्ती महामुनियों ने कहा है १४५॥

आगे—निज स्वरूप को ध्याने वाला ही स्वाधीन होता है उस के आवश्यक कर्म का होना दिखाते हैं।

परिचत्ता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं।
अप्पवसो सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं१४६

अन्य भाव तज ध्यावता, निर्मल आप स्वभाव।
होय स्ववस फिर उसी में, आवश्यकका भाव १४६

अर्थ—जो साधु पर भाव को त्याग कर, निर्मल स्वभाव धारी आत्मा को ध्याता है वही निश्चय से आत्मवश (स्वाधीन) होता है, उसी के आवश्यक कर्म हुआ ऐसा कहते हैं ॥ १४६ ॥

आगे—आवश्यक कर्म की प्राप्ति का उपाय दिखाते हैं।

आवासं जइ इच्छसि, अप्पसहावेसु कुणदि थिर भावं।
तेण दु सामण्णगुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स ॥ १४७ ॥

जो आवश्यक तू चहे, कर निज में थिर भाव।
तिसकर पावे जीव यह, सामायिक गुण राव१४७

अर्थ—यदि तू आवश्यक कर्म को चाहता है तो तू आत्म स्वभाव में स्थिर भाव को कर। इसी कर के जीव के सामायिक गुण सम्पूर्ण होता है ॥ १४७ ॥

आगे—आवश्यक हीन मुनि को भ्रष्ट चरित्र कहते हैं।

आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।
पुव्वुत्तकमेण पुणो, तह्मा आवासयं कुज्जा ॥ १४८ ॥

जो आवश्यक हीन मुनि, सो है भ्रष्ट चरित्र।
इससे पूरब क्रम सहित, कर आवश्यक वित्त१४८

अर्थ—जो श्रमण (साधु) आवश्यक कर्म नहीं करता है वह अपने चारित्र से भ्रष्ट है। इसलिये पहिले कहे हुए क्रम से ही आवश्यक कर्म करना चाहिये ॥ १४८ ॥

आगे—आवश्यक हीन को मिथ्या दृष्टि सिद्ध करते हैं।

आवासएण जुत्तो, समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासयपरिहीणो, समणो सो होदि बहिरप्पा ॥१४९॥

जो आवश्यक युक्त मुनि, सो सम दृष्टी जान।
अरु आवश्यक हीन को, मिथ्या दृष्टी मान१४९॥

अर्थ—जो मुनि आवश्यक कर्म कर के सहित है वही अन्तरङ्ग आत्मा है और जो आवश्यक क्रियाओं से रहित है वह मुनि बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है ॥ १४९ ॥

आगे—जो शुभाशुभ का जाप करता है उसे बहिरात्मा सिद्ध करते हैं।

अंतर बाहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ. सो उच्चइ अंतरंगप्पा । १५० ॥

अंतर बाहर जप जपे, सो मिथ्याती जान।
जो न जपे शुभ अशुभ को,सो सम दृष्टी मान१५०

अर्थ—जो अन्तरङ्ग और बाह्य जाप अर्थात् वचन रचना में वर्तन करता है परन्तु स्वरूप चिन्तवन नहीं करता वह बहिरात्मा है किन्तु जो इन जापों में नहीं रहता उसको अन्तरात्मा कहते हैं ॥ १५० ॥

अथ—मासिक पाठ में तीसवां दिवसः—

आगे—जो धर्म शुक्ल ध्यान में रहता है उसे सम्यग्दृष्टि सिद्ध करते हैं।

जो धम्मसुक्कझाणम्हि, परिणदो सोऽवि अंतरंगप्पा।
झाणविहीणो समणो, वहिरप्पा इहि विजाणीहि ॥१५१

धर्म शुक्ल में जे रहें, ते समदृष्टी जान।
ध्यान हीन जे श्रमण हैं, ते मिथ्याती मान १५१॥

अर्थ—जो साधु धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यानों में परिणमन करता है वही अन्तरात्मा है। तथा जो मुनि ध्यान से रहित है सो वहिरात्मा है ऐसा जानो ॥ १५१ ॥

आगे—इस ही आचरन से वीतराग चारित्र की सिद्धि दिखाते हैं।

पडिकमण पहुदि किरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्सचारित्रं।
तेणदु विराग चरिये, समणो अब्भुट्ठिदो होदि ॥१५२॥

प्रतिक्रमण निश्चय चरन, करे क्रिया जो कोय।
वही श्रमण उस चरन से, निज स्वरूप थिर होय१५२

अर्थ—प्रतिक्रमण आदि निश्चय चारित्र रूप क्रिया को करता हुआ जो रहता है। वही श्रमण इस निश्चय चारित्र के द्वारा वीतराग चारित्र में स्थिर होता है ॥ १५२ ॥

आगे—वचन मई प्रतिक्रमणादि को स्वाध्याय समान सिद्ध करते है।

वयण मयं पडिकमणं, वयणमयं पच्चक्खाणणियमंच।
आलोयण वयण मयं, तं सव्वंजाण सज्झाओ ॥१५३॥

प्रतिक्रमण जो वचन मय, नियम और पच खान।
वचन मयी अलोचना, है स्वाध्याय समान॥१५३॥

अर्थ—वचन मई प्रतिक्रमण, वचन मई प्रत्याख्यान, तथा नियम और

वचन मई आलोचना ये सर्व स्वाध्याय में गर्भित हैं ऐसा जानो ॥ १५३ ॥

आगे—ध्यान में ही प्रतिक्रमणादि को प्रतीत कराते हैं ।

जदि सक्कदि कादुंजे, पडि कमणादि करेज्जझाणमयं ।
सत्ति विहीणो जो जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं ॥१५४॥

यदि करने की शक्ती कर, प्रती क्रमण है ध्यान ।
हीन शक्ति यदि होय तो, करि जों लों श्रद्धान १५४

अर्थ—हे भाई यदि तू करने की शक्ति रखता है तो ध्यान मई प्रतिक्रमणादिकों को कर । और जो तेरी शक्ति न हो तो तब तक ऐसा श्रद्धान तो करना ही चाहिये ॥ १५४ ॥

आगे—ऐसे ध्यान मई प्रतिक्रमणादि को परम योगीश्वर नित्य साधते हैं

जिणकहियपरम सुत्ते, पडिकमणादियपरीक्खऊणफुडं ।
मोणव्वएण जोई, णिय कज्जं साहये णिच्चं ॥१५५॥

परम सूत्र जिनवचन से, प्रती क्रमण को सोधि ।
मौन धार मुनि साधता, निज कारज को बोधि१५५

अर्थ—जिनेन्द्र कथित परम सूत्रों से प्रतिक्रमण आदि का स्वरूप भले प्रकार परीक्षा करके जो योगी प्रगटपने मौन व्रत के साथ धारण करता है वही साधु नित्य अपने कार्य को साधता है ॥१५५॥

आगे—स्वपर के मध्य वचन विवाद का निषेध करते हैं ।

णाणा जीवा णाणा, कम्मं णाणा विहं हवे लद्धी ।
तह्मावयण विवादं, सग परसमएहिं वज्जिज्जो ॥१५६॥

नाना जिय नाना करम नाना लब्धि पिछान
इससे निज पर धर्म में, वचन विवाद न ठान॥१५६॥

अर्थ—नाना प्रकार के जीव हैं, नाना प्रकार के कर्म हैं नाना प्रकार जीवों की लब्धियां होती हैं इसलिये अपने और पर के समयों (धर्मों) से वचनों का विवाद मिटाना योग्य है ॥ १५६ ॥

आगे—दृष्टान्त द्वारा निज दृष्टि का बोध कराते हैं।

लध्दूणं णिहिएक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्तें।
तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेइ चइत्तु पर तत्तिं ॥१५७॥

जिमि निरधन धन भोगते, गूढ़ थान में भाग ।
तैसे ज्ञानी ज्ञान निधि, भोगे पर को त्याग१५७॥

अर्थ—जैसे कोई दरिद्री धन को पाकर उसका फल अपनी जन्म भूमि में अत्यन्त गुप्त पने से भोगता है, ऐसे ही ज्ञानी ज्ञान निधि को पाकर पर द्रव्यों के समूहों का त्याग कर भोगता है ॥१५७॥

आगे—इस ही रीति से केवल ज्ञान की प्राप्ति दिखाते हैं।

सव्वे पुराण पुरिसा, एवं आवासयं य काऊण।
अपमत्तपहु दिठाणं, पडि वज्जय केवली जादा ॥१५८॥

आवश्यक इस रीति से, किया पुरुष जो ख्यात ।
सप्तम से द्वादश तलक,गुण चढ़ि केवलि प्राप्त१५८।

अर्थ—सर्व ही प्राचीन महात्माओं ने इस ही रीति से आवश्यक कर्म को करिके अप्रमत्त से ले क्षीण मोह गुणस्थानों में प्राप्त होकर केवली पद को प्राप्त किया है ॥ १५८ ॥

॥ इति निश्चयावश्यकाधिकारः ॥ ११ ॥

अथ शुद्धात्मशक्तिअधिकारः ॥ १२ ॥

आगे—केवली भगवान के युगपद दर्शन ज्ञान का वर्तना दिखाते हैं।

जुगवं वट्टइणाणं, केवल णाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयर पयास तापं, जह वट्टइ तह मुणेयव्वं ॥१५९॥

केवल ज्ञानी वर्तते, युगपत दर्शन ज्ञान।
जैसे दिन कर के रहे, उष्ण तेज इक थान१५९॥

अर्थ—जैसे सूर्य का प्रकाश और आताप एक ही साथ वर्तन करता है, वैसे ही केवली भगवान के केवल ज्ञान और केवल दर्शन एक ही साथ होते हैं, ऐसा जानना ॥ १५९ ॥

आगे—केवली भगवान को स्वपर ज्ञायक सिद्ध करते हैं।

जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणएण केवली भयवं।
केवल णाणीजाणदि, पस्सदिणियमेण अप्पाणं ॥१६०॥

लखि जाने व्यवहार से, केवल ज्ञानी सर्व।
अरु निश्चय से केवली, लखि जाने निज दर्व१६०

अर्थ—केवली भगवान सब पदार्थों को जानते देखते हैं यह कथन व्यवहार नय कर है। निश्चय कर केवल ज्ञानी अपने आत्म स्वरूप को ही जानते और देखते हैं ॥ १६० ॥

आगे—केवल ज्ञानी अपने को ही जानते हैं ऐसा कोई कहे उसे निर्दोष सिद्ध करते हैं।

अप्पसरूव पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भयवं।
जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होई ॥ १६१ ॥

निज स्वरूप जिनवर लखें, लखें न लोका लोक।
ऐसा यदि कोई कहे, क्या दूषण है टोक ॥१६१॥

अर्थ—केवली भगवान आत्मस्वरूप को देखते हैं लोक और अलोक को नहीं देखते हैं, जो कोई निश्चय नय से इस प्रकार कहे उस को क्या दूषण दिया जा सकता है ? कुछ नहीं ॥ १६१

आगे—केवल ज्ञानी पर को ही जानते हैं ऐसा कोई कहे उसे निर्दोष सिद्ध करते हैं।

लोय लोयं जाणइ, अप्पाणं णेव केवली भयवं।
जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होई ॥१६२॥

निज स्वरूप नहि जिन लखे, देखे लोका लोक।
ऐसा यदि कोई कहे, क्या दूषण है टोक ॥१६२॥

अर्थ—केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं परन्तु अपने को नहीं जानते हैं। यदि कोई व्यवहार से ऐसा कहे तो उसको क्या दूषण दिया जा सकता है ? कुछ नहीं ॥ १६२ ॥

आगे—जिस तरह अज्ञानी आत्मा को स्वपर प्रकाशक मानता है उस को दिखाते हैं।

णाणं परप्पयासं, दिट्ठी अप्पपयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो, होदित्ति हि मण्णसे जदिहि१६३

अन्य प्रकाश ज्ञान है, दर्शन आतम प्रकाश।
आतम स्वपर प्रकाश है, माने कोई खाश१६३॥

अर्थ—यदि कोई आत्मा को निश्चय से स्वपर प्रकाशी है और ऐसा मानता हुआ कहता है कि ज्ञान पर प्रकाशक ही है तथा दर्शन आत्मप्रकाशक ही है उस पर विचारते हैं॥ १६३ ॥

आगे—यदि ज्ञान अन्य प्रकाशक माना जावे तो दूषण दिखाते है।

णाणं परप्पयासं, तइया णाणेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं, दंसणमिदि वण्णिदं तह्मा १६४

अन्य प्रकाशक ज्ञान यदि, तो दर्शन से भिन्न।
इससे यह निर्णय हुआ, दर्शन लखे विभिन्न१६४

अर्थ—यदि ज्ञान दूसरे ही पदार्थों को प्रकाश करता है तो ज्ञान से दर्शन भिन्न हुआ। कारण दर्शन पर द्रव्य को देखने वाला नहीं है॥ १६४ ॥

आगे—यदि आत्मा अन्य प्रकाशक माना जावे तो दूषण दिखाते हैं।

अप्पा परप्पयासो, तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगओ, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा १६५

पर परकाशक आत्म यदि, तो दर्शन से भिन्न।
इससे यह निर्णय हुआ, दर्शन लखे विभिन्न१६५।

अर्थ—यदि आत्मा पर को प्रकाश करने वाला है तो आत्मा से दर्शन भिन्न ही रहेगा। कारण कि दर्शन पर द्रव्य गत नहीं है ॥१६५॥

आगे—व्यवहार नय की सफलता को दिखाते है।

णाणं परप्पयासं, ववहारणयेण दंसणं तम्हा।
अप्पा परप्पयासो, ववहारणयेण दंसणं तम्हा ॥१६६॥

अन्य प्रकाशक ज्ञान ज्यों, त्यों दर्शन व्यवहार।
अन्य प्रकाशक आत्म ज्यों, त्यों दर्शन व्यवहार।

अर्थ--व्यवहार नय से ज्ञान पर को प्रकाशने वाला है इसलिये दर्शन भी पर प्रकाशक है। तथा व्यवहार नय से जैसे आत्मा पर प्रकाशक है, तैसे दर्शन भी पर प्रकाशक हैं॥ १६६ ॥

आगे—निश्चय नय की सफलता को दिखाते हैं।

णाणं अप्पपासं णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा ।
अप्पा अप्पपयासो, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा१६७

आप प्रकाशक ज्ञान ज्यों, त्यों दर्शन नय शुद्ध ।
आप प्रकाशक आतम ज्यों,त्यों दर्शन नय शुद्ध१६७

अर्थ—निश्चयनय से ज्ञान आत्मा का प्रकाशक है इसलिये दर्शन भी आत्म प्रकाशक है। निश्चय से आत्मा अपने आत्मा का प्रकाश कर्ता है। इसलिये दर्शन भी आत्मा का प्रकाश करनेवाला है १६७

आगे—जो ज्ञान स्वपर को यथार्थ जाने उस ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

मुत्तममुत्तं दव्वं, चेयणमियरं सगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चक्खमणिंदियं होई॥ १६८ ॥

मूर्त अमूर्तिक द्रव्य जे, जड़ चेतन निज सर्व ।
वही ज्ञान इन्द्रय बिना, प्रगट लखे सब दर्व१६८।

अर्थ—जो ज्ञान मूर्तीक अमूर्तीक द्रव्य ऐसे चेतन तथा अचेतन पदार्थों को तथा अपने को और सर्व को देखता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष और इन्द्रिय रहित होता है॥ १६८ ॥

आगे—जो स्वपर को यथार्थ न जाने उनको परोक्ष दृष्टि सिद्ध करते हैं।

पुव्वत्तसयलदव्वं, णाणागुणपज्जएण संजुत्तं ।
जो णय पेच्छइ सम्मं, परोक्खदिट्ठी हवे तस्स ॥१६९

नाना गुण पर्याय युत, पूर्व कहे सब दर्व ।
जो यथार्थ नहि देखता, परोक्ष दृष्टी सर्व ॥१६६॥

अर्थ—पूर्व में कहे गए सम्पूर्ण द्रव्यों को नाना गुण और पर्यायों करके सहित जो कोई भले प्रकार नहीं देखता है उसके परोक्ष दृष्टि होती है ॥ १६९ ॥

आगे—जो ज्ञान निज को न जाने तो दूषण दिखाते हैं।

णाणं जीवसरूवं, तह्मा जाणेइ अप्पगं अप्पा ।
अप्पाणं णवि जाणदि, अप्पादो होदि विदिरित्तं१७०

ज्ञान जीव का रूप है, जाने आपहि आप ।
जो जाने नहि आपको, तो नहिं एक मिळाप१७०

अर्थ—ज्ञान जीव का स्वरूप है इसलिये आत्मा निश्चय से अपने आत्म स्वरूप को जानता है यदि ज्ञान अपने आत्मा को नहीं जानता है तो ज्ञान आत्मा से अलग हो जायगा ॥ १७० ॥

आगे—गुण गुणी में भेद का अभाव दिखाते हैं।

अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो ।
तम्हा सपरपयासं, णाणं तह दंसणं होदि ॥ १७१ ॥

जीव ज्ञान है ज्ञान जिय, इमि संदेह न पर्श ।
इससे स्वपर प्रकाश है, ज्ञान उसी विधि दर्श१७१

अर्थ—आत्मा को ज्ञान जानो और ज्ञान को आत्मा मानो इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है, इसलिये ज्ञान, स्व और पर को प्रकाशने वाला है तैसे ही दर्शन भी है ॥ १७१ ॥

गाथा १५६ से १६६ तक प्रकरण मिलाने को क्रम बदला — सं॰ वीर.

आगे—केवली भगवान के इच्छा का अभाव दिखाते हैं।

जाणंतो पस्संतो, ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो ।
केवलिणाणी तम्हा, तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥१७२

इच्छा पूर्वक केवली, जानें देखें नाहि !
बंध रहित इससे रहें, जिनवर केवल माहि१७२॥

अर्थ—केवली भगवान के जानना देखना इच्छा पूर्वक नहीं होता है इस कारण से केवल ज्ञानी को बन्ध रहित कहा गया है ॥१७२॥

आगे—ज्ञानी के बन्ध का अभाव दिखाते हैं।

परिणामपुव्ववयणं, जीवस्स य बंधकारणं होई ।
परिणामरहियवयणं, तम्हा णाणिस्स णहि बंधो १७३॥
ईहापुव्वं वयणं, जीवस्स य बंधकारणं होई ।
ईहारहियं वयणं, तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो ॥१७४॥

भाव सहित जिय के वचन, बंध हेतु पहिचान ।
ज्ञानी वचन न भाव युत, इससे बंध न मान ॥१७३।
इच्छा युत प्राणी वचन, बंध हेतु पहिचान ।
ज्ञानी वच इच्छा रहित, इससे बंध न मान१७४॥

अथ—मन के परिणमन पूर्वक जो वचन जीव के निकलते हैं वे बन्ध के कारण होते हैं। परन्तु जो वचन मन के परिणमन के विना निकलते हैं वे बन्ध के कारण नहीं हैं। इस से सम्यग्ज्ञानी के बन्ध नहीं होता। जो वचन जीव के इच्छापूर्वक होंगे वे वचन बन्ध के कारण होवेंगे, परन्तु जो वांछा रहित वचन हैं सो बन्ध के कारण नहीं हैं। इसलिये सम्यग्ज्ञानी के वन्ध

नहीं है ॥ १७४ ॥

आगे—इच्छापूर्वक देह क्रियाकाहोनाकेवलीभगवानके निषेध दिखाते हैं।

ठाणणिसेज्जविहारा, ईहा पुव्वं ण होइ केवलिणो।
तम्हा ण होइ वंधो, साकट्ठं मोहणीयस्स ॥ १७५ ॥

देह क्रिया जिन राज के, इच्छा पूर्वक नाहि।
इससे वंध अभाव है, वंध मोह के माहिं ॥१७५॥

अर्थ—तिष्ठना, वैठना, तथा विहारकरनाकेवली भगवान के इच्छापूर्वक नहीं होते, इसलिये उनके वन्ध नहीं होता। मोह कर्म सहित जीव के वन्ध होता है ॥ १७५ ॥

आगे—आयु के क्षय से शेष कर्मों का क्षय दिखाते है।

आउस्स खयेण पुणो, णिण्णासो होइ सेसपयडीणं।
पच्छा पावइ सिग्घं, लोयग्गं समयमेत्तेण ॥ १७६ ॥

आयू क्षय से होय क्षय, शेष प्रकृति का नाश।
फिर पीछे लोकाग्र को, एक समय में वास॥१७६।

अर्थ—आयु कर्म के नाश होते ही शेष कर्मों की सर्व प्रकृतियों का नाश हो जाता है, फिर यह जीव शीघ्र ही एक समय मात्र में लोक के अग्रभाग में जाकर विराजता है ॥ १७६ ॥

आगे—सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखाते हैं।

जाइजरमरणरहियं, परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं, अक्खय मविणासमच्छेयं ॥१७७॥

जन्म जरा अरु मरण विन, कर्म रहित अति शुद्ध।
अक्षय अछेद विनाश विन, नंत चतुष्टय बुद्ध।१७७

अर्थ—जन्म, जरा, मरण से रहित अष्ट कर्मों से दूरवर्ती परम शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्य, स्वभाव धारी, क्षय रहित, विनाश बिना तथा छेद रहित जो तत्व हैं वही परमात्मा है ॥ १७७ ॥

आगे—पुनरागमन का निषेध करते हैं।

अव्वावाहमणिंदिय, मणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं ।
पुणरागमणविरहियं, णिच्चं अचलं अणालम्बं ॥ १७८ ॥

बाधा इन्द्रिय पुण्य अघ, इन बिन अनुपम चीन।
पुनरागमन न लोक में, नित्य अचल स्वाधीन १७८

अर्थ—वह परमात्मा अव्याबाध अर्थात बाधा रहित है अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों की जहाँ गम्य नहीं, अनुपम अर्थात् उपमारहित है। पुण्य और पाप से दूर है व पुनः संसार में आगमन से रहित है नित्य है, अविचल है तथा आलम्ब रहित अर्थात् स्वाधीन है ॥ १७८ ॥

आगे—निर्वाण में सुख दुखादि का निषेध दिखाते हैं।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं, णवि पीड़ा णेवदिज्जदे वाहा।
णवि मरणं णवि जणणं, तच्छेव य होइ णिव्वाणं १७९

जहां न सुख अरु दुःख है, पीड़ा खेद न जान ।
जहां जन्म अरु मरण नहिं, तहां होय निर्वाण १७९।

अर्थ—जहाँ न तो कोई दुःख है, न सुख है, न पीड़ा है, और न कोई बाधाएं हैं, न जहाँ मरण है, न जन्म है वहीं निर्वाण है १७९

आगे—निर्वाण में उपशर्गादि का निषेध दिखाते हैं।

णवि इंदिय उवसग्गा, णवि मोहो विम्हियो ण णिद्दाय
ण य तिण्हा णेव छुहा, तच्छेव हवदि णिव्वाणं ॥ १८० ॥

इन्द्रिय मोह न उपसरग, विस्मय नींद न थान ।
तृषा क्षुधा नहिं है जहां, तहां समझ निर्वाण १८०॥

अर्थ—न तो जहां इन्द्रियां हैं, न उपसर्ग हैं, न कुछ मोह है, न आश्चर्य है, न निद्रा है न तृषा है और न क्षुधा है वही निर्वाण है १८०

आगे—निर्वाण में धर्म शुक्ल ध्यानों का निषेध दिखाते हैं।

णवि कम्मं णोकम्मं, णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
णवि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव होइ णिव्वाणं ॥ १८१ ॥

जहां कर्म नो कर्म नहि, चिन्ता अशुभ न ध्यान।
धर्म शुक्ल जहँ ध्यान नहि, तहां कहा निर्वान१८१

अर्थ—न तो जहाँ द्रव्य कर्म है, न जहाँ नोकर्म है, न चिन्ता है, न आर्त, रौद्र ध्यान है तथा वहाँ धर्म और शुक्ल ध्यान भी नहीं है; ऐसी अवस्था ही में निर्वाण है ॥ १८१ ॥

आगे—सिद्धों के गुणों को दिखाते हैं।

विज्जदि केवलिणाणं, केवलसोक्खं च केवलं विरियं ।
केवलदिट्ठि अमुत्तं, अत्थित्तं सप्पदेसत्तं ॥ १८२ ॥

केवल सुख केवल दरश, केवल वीर्य स्वरूप ।
केवल ज्ञान प्रदेश युत, बिन मूरत सत रूप१८२

अर्थ—उन सिद्ध भगवान के केवल ज्ञान, केवल सुख, केवल वीर्य, केवल दर्शन, अमूर्तीकपना, अस्तित्वपना (सप्रदेशीपना) अर्थात् असंख्य प्रदेशी होते हैं ॥ १८२ ॥

आगे—सिद्ध जीव और निर्वाण में एकता दिखाते हैं।

णिव्वाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिव्वाणमिदि समुदिट्ठा।
कम्म विमुक्को अप्पा, गच्छइ लोयग्गपज्जत्तं ॥१८३॥

इक निर्वाणहि सिद्ध है, सिद्ध वही निर्वाण।
कर्म मुक्त जिय का गमन, लोक अंत तक मान १८३

अर्थ—निर्वाण ही सिद्ध है, तथा सिद्ध जीव ही निर्वाण है ऐसा कहा गया है। जो आत्मा कर्मों से रहित होता है वह लोक के अग्र भाग तक जाता है ॥ १८३ ॥

आगे—धर्मास्तिकाय से परे गमन नहीं यह दिखाते हैं।

जीवाण पुग्गलाणं, गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थं।
धम्मत्थिकाय भावे, तत्तो परदो ण गच्छंति ॥ १८४ ॥

पुद्गल जीवों का गमन, धर्म द्रव्य लों मान।
धर्म द्रव्य अस्तित्व विन, आगे गमन न जान १८४

अर्थ—जहाँ तक धर्मास्तिकाय द्रव्य है वहाँ तक जीव और पुद्गलों का गमन होता है ऐसा जानो। धर्मास्तिकाय के अभाव से ऊपर कोई नहीं जा सकता ॥ १८४ ॥

आगे—यदि पूर्वापर विरोध भासे तो श्रुतज्ञ उसकी पूर्ति करें।

णियमं णियमस्स फलं, णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीये।
पुव्वावरयविरोहो, अवणीय पूरयंतु समयण्हा १८५॥

नियम नियम फल में कहो, प्रवचन भक्ती धार।
यदि विरोध पूर्वा परा, लेउ श्रुतज्ञ सम्हार॥१८५॥

अर्थ—नियम और नियम का फल प्रवचन की भक्ति कर कहे गये हैं। यदि कहीं पूर्वा पर विरोध भासे तो आगम के ज्ञाता उसको

दूर कर उसकी पूर्ति करें ॥ १८५ ॥

आगे—जिन धर्म की भक्ति को दृढ़ करते हैं ।

ईसाभावेण पुणो, केई णिंदंति सुंदरं मग्गं ।
तेसिं वयणं सोचा, भत्तिं मा कुणह जिणमग्गे १८६॥

कोई ईर्षा भाव कर, निंदे मार्ग यथेष्ट ।
तो उन के सुन कर वचन, तजो न जिनमग श्रेष्ट१८६

अर्थ—तथा जो कोई जीव ईर्षा भाव कर सुन्दर मार्ग को भी निन्दते हैं, तो उनके वचनों को सुन कर हे शिष्य तू जिन मार्ग में अभक्ति न करना स्थिर रहना ॥ १८६ ॥

आगे—ग्रन्थ को आचार्य पूर्वा पर दोष रहित दिखाते हैं ।

णियभावणा णिमित्तं, मएकदं णियमसारणा मसुदं ।
बुद्धा जिणोवदेसं, पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं ॥ १८७ ॥

निज भावनि के हेतु में, नियमसार श्रुत कीन ।
जिन शासन न विरोध है, पूर्वा पर लख लीन१८७।

अर्थ—मैं ने यह नियम सार ग्रन्थ अपने आतम भावना के निमित्त पूर्वा पर दोष रहित श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेश को समझ करके किया है ॥ १८७ ॥

इति शुद्धात्म शक्ति अधिकारः ॥१२॥

॥ समप्तोऽयं ग्रन्थः ॥